धारा 105, ग्रंथांक 318

''मैं' हूँ आत्मा'' गीताञ्जली

(णिरंजणो सो अहं भणिओ=वही निरजंन 'मैं' कहा गया हूँ)

(भौतिक विश्व से अधिक शक्ति है स्वात्मा में)

(गद्य-पद्यमय)

- आचार्य कनकनन्दी

पुण्य-स्मरण

जस्स ण कोहो माणो माया मोहा य सल्ललेस्साओ।

जाइ जरा मरणं चिय णिरंजणो सो अहं भणिओ।।(19)।। (तत्त्वसार)

अर्थः जिसके न क्रोध है, न मान है, न माया है, न लोभ है, न शल्य है, न कोई लेश्या है और न जन्म, जरा और मरण भी है, वही निरंजन 'मैं' कहा गया हूँ।

स्वप्रेरित अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

गुप्तदानी द्वारा आपके द्वारा हर माह एक ग्रन्थ छप रहे हैं,

ग्रंथांक- 318 संस्करण-प्रथम 2019

प्रतियाँ - 500 मूल्य - 151/- रु.

प्राप्ति स्थान एवं सम्पर्क सूत्र

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त

(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान

द्वारा-श्री छोटूलालजी चित्तौड़ा

चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,

उदयपुर (राज.)-313001/मो. 08233-734502

(2) डॉ. नारायणलाल कछारा

सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान, 55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001

फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622

E-mail:nlkachhara@yahoo.com

सारासार
(आचार्य कन्थुसागर व आचार्य कनकनन्दी स्तुति)

-श्री अण्णासाब खोत
(समनेवाड़ी, कर्नाटक)

सारभूतवो समयसार वो, अरितवरु मुनियादरु।
रागद्वेष के रमिसिदवरु, संसार भ्रमिसुवरु।। (1)।।

ना यारवनु नन्नवरारु, तिळिदवरू वैरागिगळु।
तन्न अरिवु तनगे तिळियदे, बहुरूपि यागुवरू।। (2)।।

काल अनन्त कळेदु होदरू, इल्ल जीवनिवो अरिवु।
येनु आगिदे यलो आत्म ने, निनगेंथ भ्रमेयु।। (3)

निन्नंथवरु परमात्मनादरु, नीनेके बहिरात्मनु।
नोडु वोम्मे परमात्मनागी, अनन्त सुखसारनु।। (4)

यल्ली तिरुगिदरु इल्ल सुख, होरगे वण भ्रमण।
निन्न आत्मनलि अनन्त सुख, माडिको स्मरण।। (5)

माडुतिरुवेबहुकालदिंद, नी जनन मरण।
जनन वेको मरण वेको, नी तिळिदरे इल्ल भ्रमण।। (6)

अणुसंधान केवलज्ञान, सदा अकिंचनरू नीऊ।
श्री कनकनन्दीजी गुरुगळ नमिसि-सदा पूजिसुवेनु।। (7)

इल्ली बंदिदे समवशरण, तीर्थंकर लघुनंदन।
गणधराचार्य कुंथुसागर, धर्म सभेयु पावन।। (8)

उपाध्याय रत्न श्री कनकनन्दीजी अभीक्ष्ण ज्ञानीगळु।
सूक्ष्मदर्शी मर्मस्पर्शी निमगे प्रणामगळु।।

कनक गुरु का स्मरण एवं दिव्य दर्शन का संस्मरण

(चाल-जब तुम आ जाते हो सामने)

कवयित्री-पूर्वी पण्ड्या

शाम सवेरे पूजूँ तुमको, कितना पुण्य स्वरूप है

उनका साथ है ठण्डी छाया बाकी दुनिया धूप है
जब जब भी उन्हें पुकारूँ मैं...3
तस्वीर कनक की निहारूँ मैं...3
कनक गुरु आ जाते मेरे सामने...2
कनक गुरुवर आ जाते मेरे सामने...2
गुरुवर का पावन आशीष, किस्मत को चमका देता
इनकी छाया, इनका साया, जीवन स्वर्ग बना देता
ये बाते सोच विचारूँ मैं
तस्वीर कनक की निहारूँ मैं...कनक गुरु.....
गिरने से पहले ही आकर, गुरुवर मुझे सँभालेंगे
पूरा है विश्वास पूर्वी का, तूफानों से निकालेंगे
निर्मल मन उन पर वारूँ मैं
तस्वीर कनक की निहारूँ मैं... कनक गुरू.....(भीलूडा, 21-3-2019)

अपनी चेतना को परमात्म-चेतना से जोड़ो:

आध्यात्मिक चेतना को हमारी व्यक्तिगत चेतना का विस्तार होना चाहिए। हमें अपनी व्यक्तिगत चेतना के सुदृढ़ आधार पर खड़े होने के बाद आध्यात्मिक चेतना का विकास करना चाहिए। बिन्दु को सर्वप्रथम बहुत निश्चित होना चाहिए और उसके बाद उसे समय वृत्त के साथ तादात्म्य स्थापित करना चाहिए। अत्यन्त स्पष्ट बिन्दुत्व-बोध के बिना वृत्त का अनुभव सम्भव नहीं है। जब ''मैं हूँ'' तभी ''भगवान्'' है। ''मैं समस्त समस्याओं से रहित आत्मा हूँ''; इस ''मैं'' को बलवान बनाना होगा। दूसरे ''मैं'' को, सीमित ''मैं'' को, जो निरन्तर समस्याएँ पैदा करता है, दूर करना होगा। हमें अपनी चेतना को बनाए रखना है, लेकिन हमारी चेतना का केन्द्र मिथ्या अहंकार से हटाकर वास्तविक आत्मा में स्थापित करना चाहिए। हमें सदा अपनी उच्चतर चेतना में बद्धमूल रहना चाहिए। कई बार हम अपने व्यक्तिगत चेतना-बोध में प्रतिष्ठित हुए बिना अनन्त में तैरना चाहते हैं। कोई भी ऐसा अवसर नहीं होना चाहिए जब हम अपनी चेतना में बद्धमूल न हों। हमारी जड़ें कहीं न कहीं गहरी होनी चाहिए। जब हम अपनी जड़ों को मिथ्या आधार से हटाएँ तो हमें तत्काल अपनी सच्ची आत्मा में बद्धमूल हो जाना चाहिए और स्वयं को आधारहीन स्थिति में नहीं रखना चाहिए। **(स्वामी यतीश्वरानन्द)**

विषयानुक्रमणिका

अ.क्र.	विषय	पृष्ठ क्रमांक
1.	सारासार	02
2.	कनक गुरु का स्मरण एवं दिव्य दर्शन का स्मरण	02
	'मैं हूँ आत्मा' गीताञ्जली	04
1.	वन्दन तुझे हे! उत्तम अन्तरात्मा	05
2.	हित सत्य व 'परम सत्य' हेतु मेरा 'शब्द' ज्ञान	16
3.	तू क्या पढ़ाई/ (स्वाध्याय) करता रे!?	17
4.	बहुविध श्रेष्ठ व्यक्तित्व के धारी गुरुवर (साधु-उपाध्याय-आचार्य)	48
5.	मैं ही मेरा सर्वस्व हूँ	63
6.	स्व-आत्म वैभव प्रति मेरा गौरव (स्वाभिमान)	71
7.	सर्वोच्च विकास का लक्ष्य होता है केवल आध्यात्मिक जीव में	79
8.	सबसे क्लिष्ट-ज्येष्ठ-श्रेष्ठ उपलब्धियाँ	97
9.	निस्पृहता की पूर्णता हेतु मेरी साधना	106
10.	मेरे आत्म विकास के सूत्र	120
11.	मेरी निवृत्ति व मेरी प्रवृत्ति	144
12.	एकान्त-मौन से मुझे प्राप्त बहुविध लाभ	155
13.	मैं ही मेरे द्वारा मुझे पूर्णतः देखूँ	190
14.	स्व आत्मा का विश्वरूप दर्शन	221
15.	निर्मोही (सुज्ञानी) V/S मोही (कुज्ञानी)	227
16.	शुद्धात्मा वाचक है 'अहं' (मैं)	228

''मैं हूँ आत्मा'' गीताञ्जली

णत्थि कलासंठाणं मग्गण गुणठाण जीवठाणाइं।
ण य लद्धि बंधठाणा णोदय ठाणाइया केई।।(20)।।तत्त्वसार

अर्थः निरंजन आत्मा के कोई कला नहीं है, कोई संस्थान नहीं है, कोई मार्गणास्थान नहीं है, कोई गुणस्थान नहीं है, और न कोई जीवस्थान है, न कोई लब्धिस्थान है, न कोई बंधस्थान है और न कोई उदयस्थान आदि हैं।

फास रस रूव गंधा सद्दादीया य जस्स णत्थि पुणो।
सुद्धो चेयणभावो णिरंजणो सो अहं भणिओ।।(21)।।

अर्थः और जिसके स्पर्श, रस, गंध, रूप और शब्द आदिक नहीं है वह शुद्ध चेतन भाव रूप 'मैं' निरंजन कहा गया हूँ।

वन्दन तुझे हे! उत्तम अन्तरआत्मा
(नवदेवता स्वरूप भी होते अन्तरात्मा)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः 1.भातुकली... 2. सायोनारा... 3. क्या मिलिए...)

वन्दन तुझे हे! अन्तर आत्मा, साधक तुम हो परम आत्मा।
आचार्य-उपाध्याय व श्रमण, आप हो उत्कृष्ट अन्तर आत्मा।।
अन्तर आत्मामय तीनों परमेष्ठी, परमात्मा है दोनों परमेष्ठी।
अन्तर आत्मा ही बनते परमात्मा, अन्यथा न बनते परमात्मा।। (1)
आप तो साधक साध्य परमात्मा, साधक बिन न होता साध्य।
आप हो कारण-कार्य परमात्मा, कारण बिन न होता है कार्य।।
आप ही साधना का फल परमात्मा, अतएव आप भावी परमात्मा।
परमात्मा के आप भूत स्वरूप, वर्तमान में आप साधक रूप।। (2)
परमात्मा के आप बाल्य-अवस्था, परमात्मा प्रौढ़-अवस्था।
परमेष्ठी में अतएव आप हो गर्भित, नवदेवता में आप हो गर्भित।।
मंगल उत्तम शरण भूत भी, साहू मंगल-उत्तम-शरण तुम ही।
षष्टम से ले द्वादश गुणस्थान तक, उत्कृष्ट धर्मध्यान से शुक्ल ध्यान तक।। (3)

आप की उत्कृष्ट आत्मसाधना से, घाती क्षय से बनते सकल परमात्मा।
सकल परमात्मा में न होती साधना, उपचार मात्र से होता शुक्ल ध्यान।।
अयोग केवली तथा निकल परमात्मा, आप के समान न करते साधना।।
आपकी साधना का फल वे भोगते, 'सूरी कनक' अतः आपको पूज्य मानते।। (4)
नवदेवता अतः आप में गर्भित, ऐसे आप हो गरिमा मण्डित।
कुज्ञानी मोही आपको न जानते, जीवन्त तीर्थं को वे हेय मानते।।
मोक्षमार्ग के जीवन्त स्वरूप आप, रत्नत्रय के साधक आप।
मोक्षमार्ग प्रदर्शक जीवन्त हो आप, 'सूरी कनक' से वन्दित आप।। (5)

भीलूड़ा, दि. 12/03/2019 रात्रि 08:53

संदर्भ-

बहिरात्मा-अन्तरात्मा-परमात्मा का स्वरूप व परमात्मा प्राप्ति के उपाय

बहिरन्तः परश्चेति त्रिधात्मा सर्वदेहिषु।
उपेयात्तत्र परमं मध्योपायाद्बहिस्त्यजेत्।।(4)।।स.तं

(चाल-आत्मशक्ति...)

बहिरात्मा व अन्तरात्मा-परमात्मा हर जीव में विद्यमान।
अन्तरात्मा के माध्यम से बहि त्यागकर बनना है परमात्मा।।

समीक्षा-अनादि कालीन कर्मबन्ध से, संसारी जीव है बहिरात्मा।
किन्तु विद्यमान है हरजीव में, अन्तरात्मा व परमात्मा।। (1)
यथा सुवर्ण पाषाण में अशुद्ध, अल्पशुद्ध व पूर्णशुद्ध विद्यमान।
तपन-गलन-ताडन आदि से, क्रमशः शुद्ध बने सुवर्ण।।
षोलह बानी शुद्ध बनता सुवर्ण, एक बानी से प्रारंभ होकर।
तथाहि जीव बनते हैं सिद्ध, चौदह गुणस्थान पार कर।। (2)
यथा लम्बी रेखा बनती है प्रथम बिन्दु से अन्तिम बिन्दु जोड़ से।
मध्य के सभी बिन्दु मिलने के बाद, रेखा बने पूर्ण रूप से।।
साध्य रूपी शुद्धात्मा बनने हेतु, साधन है अन्तर आत्मा।

बिना साधन से साध्य की, न होती सिद्धि अतएव चाहिए साधना।। (3)

सन्दर्भ-भिन्नात्मानमुपास्यात्मा परो भवतितादृशः।
वत्तिर्दीपं यथोपास्यं भिन्ना भवति तादृशि।। (स.त 97)

अपने आत्मा से भिन्न अरिहन्त, सिद्ध परमात्मा की उपासना, आराधना करके आत्मा उनके समान परमात्मा बन जाता है। जैसे दीपक से भिन्न बत्ती दीपक की उपासना करके यानी साथ रहकर दीपक के समान प्रकाशमान बन जाती है।

येन भावेन तद्रूपं ध्यायेतमात्मानमात्मवित्।
तेन तन्मयता याति सोपाधिः स्फटिको यथा।।

जिस भाव से जिस प्रकार यह आत्मा का ध्यान करता है उस स्वरूपमय हो जाता है। जैसे स्फटिक मणि विभिन्न रंगो के सम्पर्क से उस वर्ण रूप परिणमन करता है।

परिणमते येनात्मा भावेन स तेन तन्मयो भवति।
अर्हत्ध्यानविष्टो भवार्हन् स्यात् स्वयं तस्मात्।।

यह आत्मा जिस भाव से परिणमन करता है वह उस स्वरूपमय हो जाता है। अर्हत् के ध्यान सहित ध्याता स्वयं अर्हत् रूप हो जाता है।

योग्योपादानयोगेन दृषदः स्वर्णता मता।
द्रव्यादिस्वादि संपत्तावात्मनोष्यात्मता मता।।(2)।।

As gold in the ore is held to become pure gold on the intervention of the real causes of purification, in the same manner on the attainment to self-nature the impure (unemanicipated) Soul is also regarded as pure spirit.

जिस प्रकार सुवर्ण परिणमन करने योग्य उपादान से युक्त सुवर्ण पाषाण योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अर्थात् तापन, ताडन, घर्षण, छेदन आदि को प्राप्त करके शुद्ध सुवर्ण बन जाता है उसी प्रकार भव्यजीव भी भव्यात्मा भी स्वद्रव्यादि चतुष्टय को प्राप्त करके निर्मल चैतन्य परमात्मा बन जाता है। भव्य जीव सुस्वद्रव्य, सुस्वक्षेत्र, सुस्वकाल, सुस्वभाव रूपी चतुष्टय को प्राप्त करके शुद्ध आत्म स्वभाव को प्राप्त कर लेता है। 'सु' शब्द प्रशंसावाची/प्रशस्तवाची है। उसका अर्थ यह है कि प्रकृत कार्य के लिए जिस द्रव्यादिक की आवश्यकता है उसकी परिपूर्णता है।

समीक्षाः-योग्य सुवर्ण पाषाण भी जब तक योग्य सुवर्णकार, अग्नि आदि निमित्त को प्राप्त नहीं करता है तब तक शुद्ध नहीं बनता है, उसी प्रकार भव्य भी जब तक गुरु उपदेश योग्य काल, उत्तम शरीर उत्तम भाव आदि को प्राप्त नहीं करता है तब तक मोक्ष को प्राप्त नहीं कर पाता है। परन्तु जिस प्रकार अंध सुवर्ण पाषाण को कितना भी शुद्ध करने पर वह शुद्ध सुवर्ण नहीं बनता है, भटरा मूंग को कितना भी सीजानेपर वह सीजती नहीं है, उसी प्रकार जो अभव्य होता है वह बाह्य निमित्त को प्राप्त करके भी भगवान् नहीं बन पाता है।

यत्रभावः शिवं दत्ते द्यौः कियद्दूरवर्तिनी।
यो नयत्यासु गव्यूतिं क्रोशार्धे किं स सीदति।। (4)

The soul that is capable of conferring the divine status when meditated upon, how for can the heavens be from him? can the man who is able to carry a load to a distance of two koses feel tired when carrying it only half a kos?

गुरुपदेशमासाद्य ध्यायमानः समाहितैः।
अनन्तशक्तिरात्मायं भुक्तिं मुक्ति च यच्छति।।(96)।।
ध्यातोऽर्हसिरूपेण चरमांगस्य मुक्तये।
तद्धयानोपात्तपुण्यस्य स एवान्यस्य भुक्तये।।(97)।।

पुनः विनेय अर्थात् शिष्य प्रश्न करता है कि आत्मा की भक्ति के बिना केवल व्रतादि से चिर भावित मोक्ष सुख नहीं मिलता है किन्तु व्रतों से संसार के सुख सिद्ध हो जाते हैं। संसार के सुख प्राप्त होने पर चिद्रूप स्वरूप आत्मा में भक्ति विशुद्ध भाव और अन्तरंग अनुराग नहीं होगा और यह आत्मा में भक्ति ही मोक्ष के लिए कारण है। व्रत होते हुए और संसार के सुख सद्भाव होते हुए भी मोक्ष के लिए उत्तम साधन स्वरूप सुद्रव्यादि साध्य अभी दूर हैं। अतः मध्य में मिलने वाले स्वर्गादि सुख व्रतादि के द्वारा ही साध्य है। इस प्रकार प्रश्न होने पर आचार्य उसका उत्तर देते है कि वह भी नहीं है। व्रतादि का आचरण निरर्थक नहीं होता है। उसी प्रकार आत्म भक्ति आदि जो तेरे द्वारा की जाती है वह भी असाधु अर्थात् अयोग्य नहीं है। इसे ही स्पष्ट करते हैं-

जिसे आत्मा के विषय में प्रणिधान-अर्थात् भक्ति होने पर शिव अर्थात् मोक्ष

प्राप्त होता है वही आत्म भक्ति से भव्यों के लिए स्वर्ग क्या दूर हो सकता है! आत्मध्यान, आत्मभक्ति, आत्मअनुराग के फलस्वरूप प्राप्त पुण्य से यदि मोक्ष सुख मिल सकता है तब स्वर्ग सुख क्या नहीं मिलेगा? अर्थात् अवश्य स्वर्गसुख उसके लिए निकट है, मिलने योग्य है। तत्त्वानुशासन में कहा भी है-

जो गुरु के उपदेश को प्राप्त करके आत्मध्यान को समाहित चित्त से करता है उसे आनन्द शक्ति सम्पन्न यह आत्मा मुक्ति और भुक्ति को प्रदान करता है जो चरम शरीरी है जब वह स्वयं को अरिहंत-सिद्ध रूप से ध्यान करता है तब उसके पुण्य से मोक्ष मिलता है तथा अन्य अचरम शरीर को स्वर्ग सुखादि मिलता है।

उपर्युक्त विषय को दृष्टान्त के द्वारा स्पष्ट कर रहे हैं। यथा-जो भार वाहक जिस भार को लेकर 2 कोश (4 मील) प्रमाण दूरी को शीघ्र पार कर लेता है वह क्या उस भार को 1/2 कोश लेने में थक जायेगा अर्थात् नहीं थकेगा। सिद्धान्त है कि महाशक्ति में छोटी शक्ति निहित होती है।

होतिं सुहावसव-संवर-णिज्जरामर सुहाई विउलाई।
ज्झाण वरस्स फलाइं सुहाणुबंधीणि धम्मस्स।।(56)।।
जह वा घण संघात खणेण परणाहा विलिज्जति।
ज्झाणप्प वणोवहया तह कम्म घणा विलिज्जाति।।(57)।।

अर्थः-शंका-इस धर्म ध्यान का क्या फल है?

समाधानः-अक्षपक जीवों को देव पर्याय सम्बन्धी विपुल सुख मिलना उसका फल है और गुण श्रेणी में कर्मों की निर्जरा होना भी उसका फल है, तथा क्षपक जीवों के तो असंख्यात गुण श्रेणी रूप से कर्म प्रदेशों की निर्जरा होना और शुभ कर्मों के उत्कृष्ट अनुभाग का होना उसका फल है। अतएव जो धर्म में अनुप्रेत है वह धर्मध्यान है, यह बात सिद्ध होती है।

इस विषय में गाथाएँ-

उत्कृष्ट धर्म ध्यान में शुभ आस्रव संवर निर्जरा और देवों के सुख में शुभानुबन्धी विपुल फल होते हैं। अथवा जैसे मेघपटल तड़ित होकर क्षण मात्र में विलीन हो जाते हैं वैसे ही ध्यान रूपी पवन से उपहत होकर कर्ममेघ भी विलीन हो जाते हैं। (ध.पु.)

मोह सुव्वसग्गो पुण धम्मज्झाण फलं, सकसायत्तेणेणं धम्मज्झाणिणो सुहम्

सांपराइयस्स चरिम समए मोहणीयस्स सव्वसमुवलभ्भादो तिण्णं घादि कम्माणं णिम्मूल विणास फलमे पयत्तविदक्क अविचारज्झाणं मोहणीय विणासो पुण धम्मज्झाण फलं सुहम सांपराय चरिम समए तस्स विणासुवलंभो।

अर्थः-मोह का सर्वोपशमन करना धर्म ध्यान का फल है; क्योंकि कषाय सहित धर्मध्यानी के सूक्ष्म एवं सांपराय गुणस्थान के अन्तिम समय में मोहनीय कर्मों की सर्वोपशमना देखी जाती है। तीन घाती कर्मों का निर्मूल विनाश करना एकत्व वितर्क अविचार ध्यान का फल है। परन्तु मोहनीय का विनाश करना धर्मध्यान का फल है क्योंकि सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान के अन्तिम समय में उसका विनाश देखा जाता है। (ध.पु.)

प्राथमिकानां चिन्तामिति करणार्थ विषय दुर्ध्यान वचनार्थं च परंपरया मुक्ति कारणमर्हदादि पर द्रव्यं ध्येयम् पश्चात्चित्ते स्थिरीभूते साक्षान्मुक्ति कारणं स्व शुद्धात्मतत्त्वमेव ध्येयं नास्त्येकांतः एवं साध्य साधक भावं ज्ञात्वा ध्येय विषये विषादो न कर्तव्यः इति। (परमात्म प्रकाश अध्याय 2, गाहाटीका 33, ब्रह्मदेव)

अर्थः-ध्यान के प्राथमिक साधकों को चित्त के स्थिर करने के लिये और विषय कषाय स्वरूप दुर्ध्यान से बचने के लिये परम्परा मुक्ति के कारण स्वरूप अरिहन्तादि ध्यान करने के योग्य है। अर्थात् ध्येय हैं। पश्चात् चित्त स्थिर होने पर साक्षात् मुक्ति का कारण जो निज शुद्धात्म तत्त्व है वही ध्यावने योग्य है। पर द्रव्य होने से अरिहन्तादि ध्यावने योग्य नहीं है, यह एकान्त से ठीक नहीं है। अतः सविकल्प अवस्था में अरिहन्तादि उपादेय ही है। इस प्रकार साध्य साधन जानकर ध्यावने योग्य वस्तु में विवाद नहीं करना। पंचपरमेष्ठी का ध्यान साधक है, और आत्मध्यान साध्य है, यह निःसंदेह जानना।

सम्यक्त्व को जाना तो ऐसा जाना?

(सत्य-विश्वास-आत्म विश्वास से सहित जीव सम्यक्त्वी-चतुर्थ गुणस्थानवर्ती)

(चाल-एक लड़की को देखा तो...)

सम्यक्त्व को जाना तो ऐसा पाया...आत्म श्रद्धान/(सत्य श्रद्धान) सहित जीवों को जाना...
चारों गति में संज्ञी (पंचेन्द्रिय जीव) सम्यक्त्वी संभव...मनुष्य तिर्यञ्च नारकी देव संभव...(1)
अनंतानुबंधी क्रोध माना माया लोभ...मिथ्यात्व के उपशमादि से होता सम्यक्त्व...
देवशास्त्र गुरु व द्रव्य तत्त्व पदार्थ...श्रद्धान होता है स्व-शुद्धात्मा तक...(2)
अष्टअंग सहित अष्टमद रहित...सप्तव्यसन व सप्तभय रहित...
संवेग-वैराग्य-आस्तिक-अनुकंपा युक्त...सनम्र सत्यग्राही अष्टमल रहित...(3)
सम्यक्त्व सहित ही होता सुज्ञान...दोनों सहित ही होता सदाचरण...
यहाँ से ही मोक्षमार्ग होता प्रारंभ...अरिहन्त सिद्ध में होता मोक्षमार्ग पूर्ण...(4)
सम्यक्त्वी होते दश प्राण युक्त...चारों संज्ञाओं से होते संयुक्त...
त्रसकाय व तीनों वेद से युक्त...इक्कीस कषाय व तीन सुज्ञान युक्त...(5)
असंयमी होते हैं वे छहों लेश्या युक्त...भव्य वे होते तीन दर्शन युक्त...
संज्ञी वे होते तीन सम्यक्त्व युक्त...छहों उपयोग सहित बारह ध्यान युक्त...(6)
छियालीस (46) आस्रव से वे सहित होते...छब्बीस लाख जाति में वे होते...
साढ़े एक सौ छह लाख ($106^{1/2}$) कुल कोटि युक्त...आहारक द्वय से भी होते संयुक्त...(7)
वे श्रावक से लेकर साधु बनकर...यथायोग्य गति के अनुसार...
कर्म नाशकर अवश्य वे मोक्ष पाते...'कनक' सूरी संक्षेप से काव्य में लिखे...(8)

सन्दर्भ-

अविरत-सम्यग्दृष्टि

इस गुणस्थान से वास्तविक मोक्ष का मंगलाचरण होता है अंतरंग-बहिरंग समस्त कारणों के सद्भाव से मिथ्यात्व एवं अनंतानुबंधी चतुष्क का उपशम, क्षयोपशम, क्षय से यथाक्रम उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है जो कि मोक्षफल के लिए बीजभूत है। जिस प्रकार बीज के अभाव से बीज की उत्पत्ति, वृद्धि नहीं हो सकती है। सम्यग्दर्शन एक अंक प्रमाण है और ज्ञान चारित्र दो शून्य के समान है। जैसे स्वतंत्र शून्य का कोई मूल्य नहीं है परन्तु एक के आगे जोड़ने पर 100 संख्या हो जाती है। वर्तमान शून्य में विशेष मूल्य है जिसके कारण एक मूल्य बढ़कर सौ हो गया। यदि सौ पूर्ण मोक्षमार्ग है तो स्वतंत्र एक संख्या रूपी सम्यग्दर्शन मोक्षमार्ग नहीं है, दश स्थान स्थित शून्य रूपी सम्यग्ज्ञान पूर्ण मोक्षमार्ग नहीं है तथा तृतीय स्थान स्थित

शून्य रूपी चारित्र मोक्षमार्ग नहीं है परन्तु सम्यग्दर्शन रूप एक के आगे सम्यग्ज्ञान रूप शून्य जोड़ने पर दश तथा सम्यक् चारित्र रूप शून्य जोड़ने पर सौ हो जाता है जो कि पूर्णमोक्षमार्ग है।

आयदणं चेदिहरं, जिणपडिमा दंसणं च जिणबिंबं।

भणियं सुवीयरायं, जिणमुद्दा णाणमदत्थं।।(3)।।

अरहंतेण सुदिट्ठं, जं देवं तित्थमिह य अरहंतं।

पावज्ज गुणविसुद्धा, इय णायव्वा जहाकमसो।।(4)।।बोधपा.

आयतन, चैत्यगृह, जिनप्रतिमा, दर्शन, रागरहित जिनबिंब, जिनमुद्रा, आत्मा के प्रयोजनभूत ज्ञान, देव, तीर्थ, अरहंत और गुणों से विशुद्ध दीक्षा ये ग्यारह स्थान जैसे अरहंत भगवान् कहे हैं वैसे यथाक्रम जानने योग्य हैं।

मय राय दोस मोहो, कोहो लोहो य जस्स आयत्ता।

पंच महव्वयधारी, आयदणं महरिसी भणियं।।(5)।।

मद, राग, द्वेष, मोह, क्रोध और लोभ जिसके आधीन हो गये हैं और जो पाँच महाव्रतों को धारण करता है ऐसा महामुनि आयतन कहा गया है।

सिद्धं जस्स सदत्थं, विसुद्धझाणस्स णाणजुत्तस्स।

सिद्धायदणं सिद्धं, मुणिवरवसहस्स मुणिदत्थं।।(6)।।

जो विशुद्ध ध्यान तथा केवलज्ञान से युक्त हैं ऐसे जिस मुनि श्रेष्ठ के शुद्ध आत्मा की सिद्धि हो गयी है उस समस्त पदार्थों को जानने वाले केवलज्ञान को सिद्धायतन कहा गया है।

बुद्धं जं बोहतो, अप्पाणं चेदयाइं अण्णं च।

पंचमहव्वसुद्धं, णाणमयं जाण चेदिहरं।।(7)।।

जो आत्मा को ज्ञानस्वरूप तथा दूसरे जीवों को चैतन्यस्वरूप जानता है ऐसे पाँच महाव्रतों से शुद्ध और ज्ञान से तन्मय मुनिको हे भव्य! तू चैत्यगृह जान।

चेइयबंधं मोक्खं, दुक्खं सुक्खं च अप्पयं तस्स।

चेइहरं जिणमग्गे, छक्कायहियंकरं भणियं।।(8)।।

बंध मोक्ष दुःख और सुख का जिस आत्मा को ज्ञान हो गया है वह चैत्य है, उसका घर चैत्यगृह कहलाता है तथा जिनमार्ग में छहकाय के जीवों का हित करनेवाला संयमी मुनि चैत्यगृह कहा गया है।

सपरा जंगमदेहा, दंसणणाणेण सुद्धचरणाणं।

णिग्गंथ वीयरागा, जिणमग्गे एरिसा पडिमा।।(9)।।

दर्शन ओर ज्ञान से पवित्र चारित्रवाले निष्परिग्रह मुनियोंका जो अपना तथा दूसरे का चलता फिरता शरीर है वह जिनमार्ग में प्रतिमा कहा गया है।

जं चरदि सुद्धचरणं, जाणइ पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं।

सा होइ वंदणीया, णिग्गंथा संजदा पडिमा।।(10)।।

दंसण अणंत णाणं, अणंतवीरिय अणंतसुक्खा य।

सासयसुक्ख अदेहा, मुक्का कम्मट्ठबंधेहिं।।(11)।।

णिरुवममचलमखोहा, णिम्मिविया जंगमेण रूवेण।

सिद्धठाणम्मि ठिया, वोसरपडिमा धुवा सिद्धा।।(12)।।

जो अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतवीर्य और अनंतसुख से सहित हैं, शाश्वत अविनाशी सुखसहित हैं, शरीररहित हैं, आठ कर्मों के बंधन से रहित हैं, उपमारहित हैं, चंचलरहित हैं, क्षोभरहित हैं, जंगमरूप से निर्मित हैं और लोकाग्रभागरूप सिद्धस्थान में स्थित हैं ऐसे शरीररहित सिद्ध परमेष्ठी स्थावर प्रतिमा हैं।

दंसेइ मोक्खमग्गं सम्मत्तं संजमं सुधम्मं च।

णिग्गंथं णाणमयं, जिणमग्गे दंसणं भणियं।।(13)।।

जो सम्यक्त्व, संयमरूप, उत्तमधर्मरूप, निर्ग्रंथरूप एवं ज्ञानमय मोक्षमार्ग को दिखलाता है ऐसे मुनिमार्ग को दिखलाता है ऐसे मुनि के रूप को जिनमार्ग में दर्शन कहा है।

जह फुल्लं गंधमयं, भवदि हु खीरं घियमयं चावि।

तह दंसणं हि सम्मं, णाणमयं होइ रूवत्थं।।(14)।।

जिस प्रकार फूल गंधमय और दूध घृतमय होता है उसी प्रकार दर्शन अंतरंग में सम्यग्ज्ञानमय है और बहिरंग में मुनि, श्रावक और आर्यिका के वेषरूप है।

जिणबिंब णाणमयं, संजमसुद्धं सुवीयरागं च।

जं देह दिक्खसिक्खा, कम्मक्खयकारणे सुद्धा।।(15)।।

जो ज्ञानमय है, संयम से शुद्ध है, वीतराग है तथा कर्मक्षय में कारणभूत शुद्ध दीक्षा और शिक्षा देता है ऐसा आचार्य जिनबिंब कहलाता है।

तस्स य करह पणामं, सव्वं पुज्जं च विणय वच्छल्लं।

जस्स च दंसण णाणं, अत्थि धुवं चेयणाभावो।।(16)।।

जिसके नियम से दर्शन, ज्ञान और चेतनाभाव विद्यमान है उस आचार्यरूप जिनबिंबको प्रणाम करो, सब प्रकार से उसकी पूजा करो और शुद्ध प्रेम करो।

तववयगुणेहिं सुद्धो, जाणदि पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं।

अरहंतमुद्द एसा, दायारी दिक्खसिक्खा य।।(17)।।

जो तप, व्रत और उत्तरगुणों से शुद्ध हैं, समस्त पदार्थों को जानता देखता है तथा शुद्ध सम्यग्दर्शन धारण करता है ऐसा आचार्य अर्हन्मुद्रा है, यही दीक्षा और शिक्षाको देनेवाली है।

दढसंजममुद्दाए, इंदियमुद्दाकसायदढमुद्दा।

मुद्दा इह णाणाए जिणमुद्दा एरिसा भणिया।।(18)।।

दृढ़तासे संयम धारण करना सो संयम मुद्रा है, इन्द्रियों को विषयों से सन्मुख रखना सो इन्द्रियमुद्रा है, कषायों के वशीभूत न होना सो कषायमुद्रा है, ज्ञान के स्वरूप में स्थिर होना सो ज्ञानमुद्रा है। जैन शास्त्रों में ऐसी जिनमुद्रा कही गयी है।

संजमसंजुत्तस्स य, सुझाणजोयस्स मोक्खमग्गस्स।

णाणेण लहदि लक्खं, तम्हा णाणं च णायव्वं।।(19)।।

संयमसहित तथा उत्तम ज्ञानयुक्त मोक्षमार्ग का लक्ष्य जो शुद्ध आत्मा है वह ज्ञान से ही प्राप्त किया जाता है इसलिए ज्ञान जानने योग्य है।

जइ णवि कहदि हु कक्खं, रहिओ कंडस्स वेज्झयविहीणो।

तह णवि लक्खदि लक्खं, अण्णाणी मोक्खमग्गस्स।।(20)।।

जिस प्रकार धनुर्विद्या के अभ्यास से रहित पुरुष बाण के लक्ष्य अर्थात् निशाने को प्राप्त नहीं कर पाता उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष मोक्षमार्ग के लक्ष्यभूत आत्मा को नहीं ग्रहण कर पाता है।

णाणं पुरिसस्स हवदि, लहदि सुपुरिसो वि विणयसंजुत्तो।

णाणेण लहदि लक्खं लक्खंतो मोक्खमग्गस्स।।(21)।।

ज्ञान पुरुष अर्थात् आत्मा में होता है और उसे विनयी मनुष्य ही प्राप्त कर पाता है। ज्ञान द्वारा यह जीव मोक्षमार्ग का चिंतन करता हुआ लक्ष्य को प्राप्त करता है।

मइधणुहं जस्स थिरं, सदगुण बाणा सुअत्थि रयणत्तं।

परमत्थबद्धलक्खो, ण वि चुक्कदि मोक्खमग्गस्स।।(22)।।

जिस मुनि के पास मतिज्ञानरूपी स्थिर धनुष है, श्रुतज्ञानरूपी डोरी है, रत्नत्रयरूपी बाण है और परमार्थरूप शुद्ध आत्मस्वरूप में जिसने निशाना बाँध रखा है ऐसा मुनि मोक्षमार्ग से नहीं चूकता है।

सो देवो जो अत्थं, धम्मं कामं सुदेइ णाणं च।

सो देइ जस्स अत्थि हु, अत्थो धम्मो य पव्वज्जा।।(23)।।

देव वह है जो जीवों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का कारणभूत ज्ञान देता है। वास्तव में देता भी वही है जिसके पास धर्म, अर्थ, काम तथा दीक्षा होती है।

धम्मो दयाविसुद्धो, पव्वज्जा सव्वसंगपरिचत्ता।

देवो ववगयमोहो, उदययरो भव्वजीवाणं।।(24)।।

धर्म वह है जो दया से विशुद्ध है, दीक्षा वह है जो सर्व परिग्रह से रहित है और देव वह है जिसका मोह दूर हो गया हो तथा जो भव्य जीवों का अभ्युदय करने वाला हो।

वयसम्मत्तविसुद्धे, पंचेदियसंजदे णिरावेक्खे।

ण्हाऊण मुणी तित्थे, दिक्खासिक्खासुण्हाणेण।।(25)।।

जो व्रत और सम्यक्त्वी से विशुद्ध है, पंचेन्द्रियों से संयत है अर्थात् पाँचो इंद्रियों को वश करनेवाला है और इस लोक तथा परलोकसंबंधी भोग-परिभोग से निःस्पृह है ऐसे विशुद्ध आत्मारूपी तीर्थ में मुनि को दीक्षा-शिक्षारूपी उत्तम स्नान से पवित्र होना चाहिए।

जं णिम्मलं सुधम्मं, सम्मत्तं संजमं तवं णाणं।

तं तित्थं जिणमग्गे, हवेइ जदि संतभावेण।।(26)।।

यदि शांतभाव से निर्मल धर्म, सम्यग्दर्शन, संयम, तप, और ज्ञान धारण किये जायें तो जिनमार्ग में यही तीर्थ कहा गया है।

''हित सत्य'' व ''परम सत्य'' हेतु मेरा 'शब्द' ज्ञान
(लौकिक परे आध्यात्मिक शब्द ज्ञान)
(हिन्दी भाषी प्राय: जो शब्द गलत जानते/मानते प्रयोग करते हैं!)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल: 1.रात कली एक...2.आत्मशक्ति...)

धन्य हे! मेरा भाव जगा है, सत्य के हेतु (मैं) सतत/(सर्वत्र) जगा हूँ।
त्याग के हठाग्रह सङ्कीर्ण भाव, परम सत्य हेतु शोधरत हूँ।। (स्थायी)...
शब्द अर्थ से ले भावार्थ तक, लौकिक से ले आत्मिक तक।
गुण से लेकर पर्याय तक, अनेकान्त से ज्ञानार्थे प्रयत्न करूँ।।
शब्द ब्रह्म है मेरा निमित्तभूत, प्रयोजन मम परमब्रह्म सत्य।
वाच्य-वाचक व दृष्टान्त-दृाष्टान्त, व्यवहार-निश्चय से ज्ञात करूँ।। (1)...
'द्रव्य' शब्द से केवल जड़/(धन) न मानूँ, सर्व षट्द्रव्यों को द्रव्य मानूँ।
'गुण' (शब्द) से केवल जीवों के गुण न मानूँ, सर्व षट्द्रव्यों के गुण मानूँ।।
पर्याय (शब्द) से केवल भौतिक दशा न मानूँ, शुद्ध-अशुद्ध द्रव्यों की दशा मानूँ
'सत्य' (शब्द) से केवल वचन सत्य न मानूँ, समस्त अस्तित्व को सत्य मानूँ।। (2)...
निश्चय से परम सत्य मेरा मैं/(आत्म) को मानूँ, सर्व शुद्ध द्रव्य (भाव) को परम सत्य मानूँ।
लौकिक से वैज्ञानिक ज्ञात सत्य को, यथायोग्य आंशिक सत्य मैं मानूँ।।
'वीर्य' (शब्द) से केवल धातु न मानूँ, आत्मा के अनन्तवीर्य को परम मानूँ।
'लिङ्ग' (शब्द) से केवल त्रिलिङ्ग न मानूँ, 'तर्क' से ले 'चिह्न' आदि मानूँ।। (3)...
'योनि' (शब्द) से केवल स्त्री-योनि न मानूँ, चौरासीलक्ष योनियों को भी मानूँ।
'सुख' (शब्द) से मात्र सांसारिक सुख न मानूँ, आत्मोत्थ अनन्त सुख को यथार्थ मानूँ।।
'भोग' (शब्द) से केवल इन्द्रिय भोग न मानूँ, आत्मिक सुखभोग को यथार्थ मानूँ
भौतिक सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि-सिद्धि, इससे परे भी आध्यात्मिक (मैं) मानूँ...(4)...
'स्वाध्याय' (शब्द) से केवल 'वाचना' न मानूँ, स्व-अध्ययन को यथार्य मानूँ।
'त्याग' (शब्द) से केवल बाह्य त्याग न मानूँ, चौबीस परिग्रह त्याग यथार्थ मानूँ।।
'आत्मा' शब्द को न स्त्रीलिङ्ग मानूँ, वाच्य-वाचक से पुरुष मानूँ।।

परम पुरुष होता है आत्मा 'अहं','स्व','निज','मैं' (शब्द) से आत्मा को जानूँ...(5)...
'दर्शन' केवल न होता चक्षु से देखना, आत्मदर्शन को प्रमुख मानूँ।
चार प्रकार के भी होते हैं दर्शन, मतिश्रुतावधि व केवल दर्शन।।
क्रोध-मान-माया-लोभ आदि, विभाव को स्वभाव न मानूँ।
तन-मन-इन्द्रिय को आत्मा/(मैं) न मानूँ, चैतन्य द्रव्य को आत्मा मानूँ।।...(6)...
तथाहि 'आत्मविश्वास' आत्मज्ञान-ध्यान, आत्मविकास आत्मकल्याण मानूँ।
'धर्म' केवल रूढ़ि-दिखावा न मानूँ, वस्तुस्वभाव से आत्म स्वभाव मानूँ।।
इन्द्रिय-मन व यन्त्रों से ज्ञात, सत्य-तथ्य परे भी परम सत्य मानूँ।
कानून-राजनीति से भौतिक विज्ञान, आंशिक सत्य मानूँ परम सत्य न मानूँ।।...(7)...
देखा देखी सुनासुनी व पन्थ-मत, रूढ़ि-परम्परा-सङ्कीर्णता-अन्धश्रद्धान।
भेड़ भेड़ियाचाल व ढोंग-आडम्बरों को, निष्पक्ष सत्यग्राहिता से परीक्षण करूँ।।
समता शान्ति-गुणग्रहिता से, सत्य को मानूँ असत्य को न मानूँ।
वाद-विवाद कलह विसम्वाद परे, स्व-पर-विश्वहित हेतु 'कनक' सत्य ही मानूँ...(8)...

भीलूड़ा, दि-15/3/2019, रात्रि 08.55 व प्रात:

तू क्या पढ़ाई/(स्वाध्याय) करता रे! ?
(ज्ञानार्जन की संस्कृति एवं विकृति)
(जीविकार्जन से ले जीवन निर्माण (निर्वाण) हेतु ज्ञानार्जन)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल: 1.बता मेरे यार सुदामा रे...2.दुनिया में रहना है तो...)

तू क्या पढ़ाई/(स्वाध्याय) करता रे!...तू तो स्वयं को पढ़ा ही नहीं!....
स्व को पढ़ना स्वाध्याय है/(रे!)...स्व को जानना स्वज्ञान है/(रे!)...
स्व विश्वास ही आत्मविश्वास!...स्वध्यान ही आत्मध्यान!...
स्व-विकास ही आत्मविकास!...स्व निर्माण से परिनिर्वाण!...(1)....
इस हेतु स्व को जान तू पहले!...परप्रकाशी पूर्व स्वप्रकाशी बनो!...
बुझा दीप न अन्य को जलाए!...निर्धन अन्य को न धन दे!...
अक्षर स्व अविनाशी आत्मा!...इसे पढ़ने हेतु बनो साक्षर!...

शब्द ब्रह्म से परं ब्रह्म जानो!...इसे केन्द्र कर स्वाध्याय करो!...(2)
क्रम व्यवस्थित स्व-पर ज्ञान करो!...हिताहित विवेक प्राप्त करो!...
तन मन इन्द्रिय आत्मा जानो!...आत्मविकास हेतु तनादि जानो!...
''शरीरमाध्यम खलु धर्म साधनं''...तदनुकूल मन इन्द्रिय करो!...
इस हेतु तनादि सुयोग्य करो!...तन मन अक्ष को वश में करो!...(3)...
इस हेतु ज्ञान व्यवस्थित करो!...स्वाध्याय मनन चिन्तन करो!...
शोध-बोध व प्रयोग करो!...इन्द्रिय मन से भी ज्ञान करो!...
परीक्षण निरीक्षण अनुसन्धान करो!...अन्धविश्वासी नकलची छोड़ो!...
हठाग्रह दुराग्रह मूढ़ता छोड़ो!...सङ्कीर्णता कट्टरता दम्भ छोड़ो!...(4)...
सनम्र सत्यग्राही उदार बनो!...प्रगतिशील व्यापक बनो!...
समता शान्ति शुचिता वरो!...स्व-पर-विश्वहित हेतु भाव करो!...
आडम्बर ढोंग पाखण्ड छोड़ो!...ईर्ष्या घृणा तृष्णा विभाव छोड़ो!...
ज्ञानानन्द रस पान तू करो!...'कनक' शुद्ध बुद्ध आनन्द बनो!...(5)....
अन्यथा तेरे सभी ज्ञानार्जन!...तोतारटन्त या टेपरिकार्ड सम!...
लौकिक ज्ञान से तो जीविकार्जन!...तथाहि धार्मिक ज्ञान भी मानो!...
लौकिक से भी धार्मिक ज्ञान हेय!...विषमता विद्वेषकारी जो ज्ञान!...
जीविकार्जन हेतु लौकिक ज्ञान!...जीवन निर्माण (निर्वाण) हेतु धार्मिक ज्ञान!...(6)...
पन्थ मत भेदभाव कर!...ईर्ष्या तृष्णा घृणा द्वेष कर!...
हठाग्रह दुराग्रह सङ्कीर्ण!...आतंकवाद उत्पादक जो ज्ञान!...
आत्मपतनकारी जो ज्ञान!...दीन हीन अहं दम्भ कर!...
ऐसा होता जो धार्मिक ज्ञान!...लौकिक ज्ञान से भी हीन!...(7)...

भीलूड़ा (राज.), दि-9/3/2019, रात्रि 8.45

अपनी लर्निंग स्टाइल को समझना एग्जाम की बेहतर तैयारी में मदद करेगा

एक स्टूडेंट के तौर पर आपको हमेशा कुछ सीखने यानी लर्न करने की जरूरत पड़ती है, लेकिन क्या आपने कभी सोचा है कि लर्निंग का तरीका क्या होना

चाहिए? दरअसल कॉलेज स्टूडेंट्स के साथ यह एक बड़ी समस्या है कि वे स्टडी की खराब आदतों का शिकार होते हैं जैसे किसी टॉपिक को याद करने के लिए उसके नोट्स बार-बार पढ़ना या एग्जाम से एक रात पहले टॉपिक्स को रटना। अगर आप भी लर्निंग से जुड़ी इन समस्याओं का सामना कर रहे हैं, तो अपना लर्निंग स्टाइल पहचानकर आप ऐसी तकनीक की मदद ले सकते हैं जो आपके सीखने की गुणवत्ता को बेहतर बना सकती है। अगर आपने अभी लर्निंग स्टाइल्स के बारे में सुना ही नहीं है, तो भी आप आसानी से यह अंदाजा लगा सकते हैं कि आपकी लर्निंग स्टाइल कौनसी है। मसलन आपको यह जरूर मालूम होगा कि आपके लिए किसी टॉपिक को सुनकर सीखना मुश्किल है जबकि देखकर आप उसे बहुत आसानी से सीख सकते हैं। कई बार बैठकर किताब पढ़ना उतना कारगर साबित नहीं हो पाता जितना कि ऑडियोबुक सुनना। वास्तव में ये विशेषताएं ही आपकी लर्निंग स्टाइल्स को परिभाषित करती हैं।

विज़ूअल लर्नर

पिक्चर्स इमेजेज और शेप्स के माध्यम से सीखना आसान है।

ट्यूटोरियल्स को सुनते वक्त डूडलिंग और ड्रॉइंग करके आप टॉपिक्स को बेहतर तरीके से याद सकते हैं।

अपने काम में रंगो, लेआउट और माइंड मैप्स का उपयोग करें। शब्दों की जगह पिक्चर्स काम में लें।

ओरल लर्नर

आप ऑडियो यानी आवाज व संगीत के इस्तेमाल को प्राथमिकता देते है।

सीखते समय आवाज, तुकबंदी और संगीत का इस्तेमाल करना उपयोगी होगा।

किसी टॉपिक को विजुअलाइज करने या मदद के लिए साउंड रिकॉर्डिंग्स का उपयोग करें और खाली समय में सुने।

किसी टॉपिक को याद करने के लिए लय और तुकबंदी का इस्तेमाल करें या इन्हें किसी गीत के हिस्से में ढाल सकते हैं।

कोई सेक्शन पूरा कर लेने के बाद उसे किसी व्यक्ति के सामने या फिर आईने के सामने खड़े होकर दोहराएंगे तो उसे बेहतर रूप से याद रख पाएंगे।

क्वर्स काम में लें।

वर्बल लर्नर

आप बोलते व लिखते वक्त शब्दो का इस्तेमाल करते हैं।

उन तकनीको का उपयोग कीजिए जिनमें बोलना व लिखना शुमार हो। जो भी याद करें उसे अपने शब्दों में फिर से लिखें।

शब्द आधारित तकनीकों जैसे स्क्रिप्टिंग का भरपूर इस्तेमाल करें। अपनी स्क्रिप्ट्स को टेप या डिजिटल ऑडियो रिकॉर्डर (जैसे एमपी3 प्लेयर) पर रिकॉर्ड कर बाद में रिव्यू करें।

तेज आवाज में कंटेंट पढ़ते वक्स इसे नाटकीय और विविधतापूर्ण बनाएं। हो सके तो किसी गाने का रूप दें।

लॉजिकल लर्नर

आप तर्क, विचार और प्रोसेस का इस्तेमाल पंसद करते हैं।

जो भी सीखें उसके मुख्य पॉइंट्स को एक क्रम में लिखते रहें। जब भी कोई नया पॉइट जोड़े, तो पूरी लिस्ट को फिर से पढ़ें। साथ ही जो याद करें, उसका स्टेप-बाय-स्टेप सीक्वेंस बनाएं।

अपने लर्निंग मटीरियल को ग्राफ और चार्ट की सहायता से याद करने की कोशिश करें।

अपने टॉपिक्स को किसी पैटर्न, रिलेशनशिप या किसी संबंध के साथ जोड़कर याद करें।

फिजिकज लर्नर

आप शरीर और हाथों से स्पर्श करके सीखना पसंद करते है।

वॉक करते हुए पढ़े। हो सके तो अपनी आवाज रिकॉर्ड करें और ड्राइविंग या डिनर के दौरान सुनें।

लिखकर और ड्रॉइंग बनाकर सीखें। स्किल्स सीखने के लिए रोल प्ले करना मददगार होगा।

सॉलिटरी लर्नर

आप अकेले काम करना चाहते हैं और सेल्फ स्टडी को प्राथमिकता देते हैं।

सेल्फ स्टडी करके आप खुद को अकेले सीखने के लिए तैयार करते हैं।

अपने लक्ष्यों को अपनी मान्यताओं और मूल्यों के साथ जोड़ें। इसके साथ ही टॉपिक्स में व्यक्तिगत रूचि पैदा करें।

विजुअलाइज करके सीखने की कोशिश करें। आपके लिए मॉडलिंग की तकनीक खास मददगार साबित हो सकती है।

रचनात्मक रहकर कोई भी भूमिका निभाएं। आपके विचारों का आपके प्रदर्शन और आपकी सुरक्षा पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

सोशल लर्नर

आपकी कोशिश समूह या ग्रुप में रहकर सीखने की होती है।

किसी ऑनालाइन फोरम डिस्कशन में हिस्सा लें।

जो पढ़ते हैं, उस पर अपने दोस्तों और परिवार के साथ बात करें। हो सके तो उनके साथ इस टॉपिक पर क्विज भी खेलें।

जो याद किया हो उसका प्रेजेंटेशन बनाएं और उसे किसी के समाने रखें। इससे टॉपिक्स बेहतर तरीके से याद हो पांएगे।

वाइटबोर्ड और मार्कर लें। इसके इस्तेमाल से एक काल्पनिक क्लास को वह सब पढ़ाने की कोशिश करें जो आपने पढ़ा हो।

अपने मटीरियल को बोलकर पढ़ें। घर में कोई सुनने वाला हो तो उसे सुनाएं और फिर उनसे मटीरियल पढ़ने को कहें।

ये हैं मेमोरी बूस्ट करने के खास टिप्स

एग्जाम आते ही स्टूडेंट्स के लिए भी तनावपूर्ण समय शुरू हो जाता है। यदि शुरू से ही पढ़ाई पर ठीक से ध्यान दिया जाए तो एग्जाम में होने वाले तनाव को घटाया जा सकता है, पर यदि किन्हीं कारणों से ऐसा संभव नहीं हो तो भी मनोवैज्ञानिकों द्वारा बताई गई कुछ बेहद ही आसान सी सलाहों को अपनाकर भी एग्जाम्स में स्ट्रेस घटा सकते हैं और स्टूडेंट्स अच्छे मार्क्स हासिल कर सकते हैं।

अलर्ट रहें

अपने मस्तिष्क का पूरा-पूरा प्रयोग करें। उदाहरण के लिए आप पढ़ाई करने बैठें

और मन इधर-उधर भटक रहा है तो कभी भी ढंग से पढ़ाई नहीं कर पाएंगे। या तो अपनी सभी इच्छाएं पूरी करने के बाद पढ़ाई करने बैठें ताकि मन न भटके या पढ़ाई करते समय आप पूरी तरह से अलर्ट होने चाहिए।

जानकारी को समझें

किसी भी चीज को याद करने का सबसे अच्छा तरीका यही है कि आप जो भी सीख रहे हैं, उसे समझ लें। एक बार आपने यदि किसी चीज को ढंग से समझ लिया तो फिर आप उस टॉपिक को कभी नहीं भूलेंगे। समझने के लिए आप उस जानकारी को संक्षेप में लिखें। उसे बार-बार बोल कर पढ़ें।

पर्याप्त नींद लें

मेमोरी के लिए पर्याप्त नींद लेना आवश्यक हैं। बहुत से स्टूडेंट्स एग्जाम्स की तैयारी के दौरान कम से कम सोने का प्रयास करते हैं। यह एक गलत आदत हैं। शरीर की ही तरह हमारे दिमाग को भी आराम की जरूरत होती है। पर्याप्त नींद नहीं मिलने से दिमाग थक जाता है और एकाग्रता भी कम होती है।

मेमनिक्स का प्रयोग करें

मेमनिक्स का अर्थ है किसी जानकारी को दृश्य चित्रों, वाक्यों अथवा रूचिकर छंदो में लिख लें। उदाहरण के लिए इंद्रधनुष के रंगों को VIBGYOR (वॉयलेट, इंडियो, ब्लू, ग्रीन, येलो, ऑरिज और रेड) लिख कर याद कर सकते हैं। आपको खुद क्रिएटिव शब्द तैयार करने होंगे।

मनोरंजन पर भी ध्यान दें

एग्जाम्स में सारा ध्यान पढ़ाई पर ही नहीं देना चाहिए, बल्कि कुछ देर मनोरंजन भी करना चाहिए। आप पंसदीदा गेम खेल सकते हैं। छत पर टहल सकते हैं या कुछ भी ऐसा कर सकते हैं जो आपको बहुत पसंद हो। इससे दिमाग और शरीर को काफी आराम मिल जाता है।

दिमागी एक्सरसाइज करें

हमारे दिमाग को भी व्यायाम की जरूरत होती है। नियमित रूप से मानसिक व्यायाम (ऐसा कार्य जिसमें दिमाग को जोर लगाना पड़े) करें। मानसिक व्यायाम से दिमाग के न्यूरॉन्स नए कनेक्शन बनाते हैं और अलर्टनेस आती है। इससे आपकी

मेमोरी तो बढ़ती ही है, साथ में मस्तिष्क संबंधी बीमारियों का भी खतरा कम होता है।

ध्यान करें

ध्यान मस्तिष्क को एकाग्र करता है। इसलिए स्टूडेंट्स को ध्यान करने की सलाह दी जाती है। इसके लिए एक ड्राइंग पेपर पर एक इंच के व्यास का काला गोला बना लें। इसे दीवार पर टांक दें और सीधा बैठकर पांच से दस मिनट तक इसे एकटक देखते रहें।

ज्यादा से ज्यादा दोहराएं

आपने जिस भी टॉपिक को याद किया है, उसे याद करने के बाद आंखे बंद करके दोहराएं। आप जब रात को सोएं या सुबह उठें, उस समय एक बार मन ही मन फिर से दोहरा लें। इस तरह याद किया हुआ पाठ आपको एग्जाम्स में तुरंत याद आ जाता है और आप उसे सही से लिख पाते हैं।

स्वस्थ जीवनशैली अपनाएं

एक स्वस्थ जीवनशैली विकसित करें। स्वस्थ, संतुलित आहार लें, नियमित व्यायाम करें। स्वस्थ जीवनशैली दिमाग में रक्त और ऑक्सीजन की मात्रा को बढ़ाती है। व्यायाम आपके फील-गुड हॉर्मोन एंडोर्फिन को भी बढ़ाता है, जो आपके मूड को बेहतर बनाता है।

एग्जाम में सफलता के खास तरीके

आपको जल्दबाजी में सवालों के जबाव लिखने से बचना चाहिए। जो याद है, उसे बेहद सधे शब्दो में उत्तरपुस्तिका में उतारना चाहिए। प्रश्नपत्र हल करते समय का ख्याल रखना चाहिए। जिन प्रश्नों के उत्तर आते हैं, उन्हें पहले अच्छी तरह से पूर्ण कर लेना चाहिए। जो प्रश्न समझ में नहीं आ रहें है, उनका उत्तर देने का प्रयास करना चाहिए। शुरू में ही कठिन प्रश्नों में उलझने से बचना चाहिए।

शॉर्ट नोट्स बनाएं

जानने की कोशिश करें कि आपको किस तरह से याद रहता है। यदि लिखकर चीजें अच्छी तरह से याद रहती हैं तो लिख-लिखकर विषय को याद रखने की कोशिश करें। यदि आप बोलकर याद रख पाते हैं तो बोल-बोलकर पढ़ें। आपको मेमोरी बढ़ाने के लिए शॉर्ट नोट्स भी तैयार करने चाहिए।

तेजी से पढ़े

आपको तेजी से पढ़ने का अभ्यास करना चाहिए क्योंकि जब धीरे-धीरे पढ़ते है तो दिमाग भटकने लगता है। आप जिस विषय को याद करना चाहते है, उसे उंगलियों की मदद से तेजी से पढ़ते जाएं। इससे आप एकाग्र रहेंगे और आपको रीविजन के लिए भी समय मिल जाएगा।

कॉन्सेप्ट्स क्लीयर करें

आपने जो कुछ भी पढ़ा है, उसके बारे में अपने दोस्तों के साथ डिस्कशन करने की कोशिश करें। आपने जो कुछ भी याद किया है, उसे किसी को सुनाने की कोशिश करें। आप जो कुछ भी समझा है, उसे अपने अन्य साथियों को भी समझाने की कोशिश करें। इससे आपके कॉन्सेप्ट्स क्लीयर होंगे।

घबराने की जरूरत नहीं है

एग्जाम्स को लेकर स्टूडेंट्स इस सोच में रहते है कि पता नहीं पेपर में क्या आएगा और क्या नहीं। जान लें कि आपने पूरे साल पढ़ाई की है और उस पढ़ाई का एक बार एग्जाम हो रहा है। इसलिए पेपर जैसा भी आएगा, पढ़े हुए विषय में से ही आएगा।

-सुनील शर्मा

शुद्ध आध्यात्मिक गुणों की विकृति की दुष्परिणति

(क्षुद्र जीव से पापी मनुष्य तक में श्रेष्ठता का संघर्ष)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः-आत्मशक्ति...)

क्षुद्र जीव से पापी तक में जो मैंने किया शोध-बोध।
उससे मुझे अनेक शिक्षायें मिले जिससे मुझे मिले आत्मबोध।। (ध्रुव)
निश्चय से हर जीव है प्रभु विभु-कर्त्ता-धर्त्ता-भोक्ता।
अनन्तज्ञान दर्शनसुखवीर्यादि युक्त अस्तित्व वस्तुत्व सहित।।
किन्तु अनादि से अष्टकर्म या अनन्तानन्त कर्मों से परतंत्र।
जिससे अशुद्ध होकर वे विकृत रूप से करते भाव व्यवहार।। (1)

अतएव ऐसे जीव रागद्वेषमोह काम क्रोध ईर्ष्या तृष्णा से पराभूत।
करते अहंकार ममकार आहार-भय-मैथुन परिग्रह हेतु सभी कार्य।।
प्रभुत्व गुण के विकृत रूप से स्वयं को मानते मैं ही श्रेष्ठ।
क्षुद्र जीव से पापी तक में ऐसे भाव-व्यवहार होते विकृत।। (2)
ऐसी प्रवृत्ति हर जीव प्रजाति से ले मानव जाति में होती है।
अतएव वे स्व-स्व शरीर-शक्ति-जाति आदि को श्रेष्ठ मानते हैं।।
इसके कारण वे अन्य जीवों से ईर्ष्या घृणा से भेदभाव करते।
स्व प्रभुत्व के विस्तार हेतु आक्रमण से ले युद्ध हत्यादि करते।। (3)
ऐसा ही अन्य शुद्ध आत्मिक गुणों का भी होता है विकृत रूप।
जिससे वे स्वयं को ही सच्चे अच्छे ज्ञानी व कर्त्ता-भोक्ता मानते।
ऐसे जीव अन्य सच्चे अच्छे ज्ञानी जीवों को निम्नतर मानते।
जिससे वे उन्हें नाश करते हेतु बहुविध उपाय भी करते।। (4)
इस कारण मानवों में अनेकविध संघर्ष भी हो रहे हैं।
जाति पंथ मत भाषा आदि की श्रेष्ठता हेतु विविध पाप कर रहे हैं।
गृह कलह से ले भरत-बाहुबली रामायण महाभारत युद्ध तक।
स्वार्टा युद्ध से लेकर द्वितीय विश्वयुद्ध आतंकवाद तक।। (5)
ऐसा ही वनस्पति से ले कीट-पतंग पशु पक्षी आदि तक।
देवासुर संग्राम से ले महापुरुषों के उपर उपसर्ग तक।।
इन सब विकृति के त्याग से ही जीव जगत् पायेंगे सुख।
इस हेतु ही 'सूरी कनकनन्दी' विकृति त्याग हेतु करे पुरुषार्थ।। (6)

भीलूडा दि.20.3.2019 रात्रि 9.05

संदर्भ-

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने। (13) मो.शा.

प्रज्ञा Conceit and; अज्ञान Lack of knowledge, sufferings are caused by the operation of ज्ञानावरणीय, knowledge obscuring karmas.

ज्ञानावरण के सद्भाव में प्रज्ञा और अज्ञान परीषह होती है, प्रज्ञा क्षायोपशमिकी है, अर्थात् ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होती है, अन्य ज्ञानावरण के उदय के

सद्भाव में प्रज्ञा का सद्भाव है अतः क्षायोपशमिकी प्रज्ञा अन्य ज्ञानावरण के उदय में मद उत्पन्न करती है, सर्व ज्ञानावरण कर्म का क्षय हो जाने पर मद नहीं होता। अतः प्रज्ञा और अज्ञान परीषह ज्ञानावरण कर्म के उदय से उत्पन्न होती है अर्थात् इन दोनों परीषहों की उत्पत्ति में ज्ञानावरण कर्म का उदय ही कारण है।

केवल ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय होने पर केवलज्ञान होता है केवलज्ञान होने पर किसी भी प्रकार अहंकार नहीं होता है। जो अत्यंत अज्ञानी है, जैसे-एकेन्द्रिय आदि जीव; इनके विशिष्ट क्षयोपशम नहीं होने से तथा तीव्र ज्ञानावरणीय का उदय होने पर विशेष ज्ञान न होने के कारण इनके भी प्रज्ञा और अज्ञान परीषह विशेष नहीं होता है। लोकोक्ति भी है-"**रिक्त चना बाजे घना।**"

भर्तृहरि ने कहा भी है-

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रंजयति।। (13)

नासमझ को सहज में प्रसन्न किया जा सकता है। समझदार को उससे भी सहज में प्रसन्न किया जा सकता है परन्तु जो न समझदार है, न नासमझ है, ऐसे श्रेणी के मनुष्य को ब्रह्मा भी संतुष्ट नहीं कर सकते।

इसीलिये इंग्लिश में कहावत है- A half mind is always dangerous. जो अल्पज्ञ होते हैं वे भयंकर होते हैं।

"The little mind is proud of own condition." संकीर्ण मन एवं कम बुद्धि वाले अधिक अहंकारी होते है। अल्पज्ञ लोग अहंकार से स्वयं को सर्वज्ञ मानकर सत्य को इंकार करते है।

महान् नीतिज्ञ चाणक्य ने बताया है-

मूर्खस्य पंच चिह्नानि गर्वी दुर्वचनी तथा।
हठी चाप्रियवादी च परोक्तं नैव मन्यते।।

मूर्खों के निम्नलिखत पाँच चिह्न है।

(1) अहंकारी होना (2)अपशब्द बोलना(3) हठग्राही (4) अप्रिय बोलना (5) दूसरों के द्वारा कहा हुआ हित सत्य नहीं मानना।

दर्शनमोहांतराययोरदर्शनालाभौ। (14)

अदर्शन Slack belief by; दर्शनमोहनीय right belief deluding, and failure to get alms by अन्तराय obstructive, Karma.

दर्शनमोह और अन्तराय के सद्भाव में क्रम से अदर्शन और अलाभ परीषह होते हैं।

इस सूत्र में अन्तराय ऐसा सामान्य निर्देश है फिर भी सामर्थ्य से विशेष का संप्रत्यय होता है। यद्यपि इस सूत्र में अन्तराय यह सामान्य निर्देश है तथापि यहाँ सामर्थ्य से (अलाभ के ग्रहण से) लाभान्तराय विशेष का ही ज्ञान होता है। अर्थात् अदर्शन परीषह दर्शनमोह के उदय से और अलाभ परीषह लाभान्तराय के उदय से होता है; ऐसा जानना चाहिये। क्योंकि सूत्र में अलाभ का ग्रहण है।

चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाचनासत्कारपुरस्काराः। (15)

अदर्शन Nakedness; Ennui; woman; Sitting or posture; Abuse; Begging; Respect and disrespect sufferings are due to; चारित्रमोहनीय right conduct deluding karmas.

चारित्रमोह के सद्भाव में नाग्न्य, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना और सत्कार-पुरस्कार परीषह होते हैं-

प्रश्न-पुरुषवेद-स्त्रीवेद के उदय निमित्त से होने वाली नाग्न्य, अरति, स्त्री, अक्रोश, याचना, सत्कार-पुरस्कार परीषहों को चारित्रमेहनीय के उदय से मानना ठीक भी है परन्तु निषद्या परीषह भी मोहनीय कर्म के उदय में कैसे हो सकता है?

उत्तर-निषद्या परीषह भी मोहनीय कर्म के उदय से होती है, प्राणी पीड़ा कारण होने से। मोहनीय कर्म के उदय से प्राणी-हिंसा के परिणाम होते हैं अतः प्राणी-हिंसा की परिपालना कारण होने से निषद्या परीषह को भी मोहोदयहेतुक ही समझना चाहिये। अर्थात् अप्रत्याख्यान कषाय के उदय से निषद्या परीषह होती है।

वेदनीये शेषाः। (16)

The rest are caused by वेदनीय Vedaniya Karmas. They are 11 and given in the 11th sutra above.

बाकी के सब परीषह वेदनीय के सद्भाव में होते हैं।

उपर्युक्त प्रज्ञादि परीषहों से अतिरिक्त क्षुत्पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और मल, ये ग्यारह परीषह शेष शब्द से निर्दिष्ट हैं अतः ये ग्यारह परीषह वेदनीय कर्म के उदय में होते है।

साम्राज्यवादी आकांक्षाएँ

प्राचीन रोमनों को पराजित होने का अभ्यास था। इतिहास के ज्यादातर महान् साम्राज्यों के शासकों की ही तरह वे एक के बाद एक लड़ाइयाँ हार सकते थे, तब भी युद्ध में जीतते थे। जो साम्राज्य आघात को झेलकर खड़ा नहीं रह सकता, वह वास्तव में साम्राज्य नहीं है। तब भी रोमनों तक को उस ख़बर को पचाना बहुत मुश्किल था, जो ईसा पूर्व दूसरी सदी के मध्य में उत्तरी आइबीरिया से आ रही थी। प्रायद्वीप के मूल निवासी क़ेल्ट्स से आबाद नूमान्तिया नामक एक छोटे, मामूली-से पहाड़ी नगर से रोमन दासता को अपनी गर्दन से उतार फेंकने का साहस किया था। रोम तब मैसेडोनियाई और सेल्यूसिड साम्राज्यों को पराजित कर चुकने, ग्रीस के गौरवशाली नगर राज्यों को अपने अधीन कर चुकने और कार्थेज को दहकते हुए खण्डहरों में बदल चुकने के बाद समूचे भूमध्यसागरीय बेसिन का निर्विवाद मालिक था। नूमान्तियाइयों के पक्ष में उनके उग्र स्वीधनता-प्रेम और उस भू-भाग के अलावा कुछ भी नहीं था, जहाँ जाकर बसना बहुत असुरक्षित था। तब भी उन्होंने एक के बाद एक फ़ौजों को आत्मसमर्पण करने या शर्मनाक ढंग से पीछे हटने को मजबूर कर दिया था।

अन्ततः 134 ईसा पूर्व में रोमन धैर्य टूट गया। सीनेट ने नूमान्तियाइयों से निपटने के लिए अपने सर्वश्रेष्ठ जनरल सीपियो एमिलियानुस को भेजने का फैसला किया, उसी आदमी को जिसने कार्थेज को तबाह किया था। उसे 30,000 से ज्यादा सैनिकों की विशाल सेना सौंपी गई। सीपियों के मन में नूमान्तियाइयों के लड़ाकूपन और दिलेरी की बड़ी इज्जत थी। उसने अनावश्यक लड़ाई में अपने सैनिकों को बरबाद ना करना बेहतर समझा। इसके बजाय उसने नूमान्तिया को चारों तरफ़ से क़िले की दीवार से घेरकर बाहरी दुनिया के साथ इस नगर का सम्पर्क अवरुद्ध कर दिया। भूख ने उसकी मदद की। एक साल से ज़्यादा समय बीतने के बाद खाद्य सामग्री समाप्त हो गई। जब नूमान्तियाइयों ने पाया कि सारी उम्मीदें समाप्त हो चुकी हैं,

तो उन्होंने अपने नगर को जला दिया। रोमन वृत्तान्त के मुताबिक़, उनमें से ज्यादातर लोगों ने खुद को खत्म कर डाला, ताकि उन्हें रोमनों का गुलाम ना बनना पड़े।

नूमान्तिया बाद में स्पेनियों की आज़ादी और साहस का प्रतीक बन गया। डॉन कि होते के लेखक मिगेल दे सर्वान्तीस ने द सीज ऑफ़ नूमान्तिया नामक त्रासदी लिखी थी, जिसका अन्त नगर की तबाही के साथ, लेकिन स्पेन की भावी महानता की परिकल्पना के साथ भी होता है। कवियों के इसके उग्र रक्षकों की प्रशंसा में गीत लिखे और चित्रकारों ने कैनवासों पर इस घेराबन्दी का भव्य चित्रण किया। 1882 में इसके खण्डहर 'राष्ट्रीय स्मारक' घोषित किए गए और वे स्पेनी देशभक्तों का तीर्थस्थल बन गए। 1950 और 1960 के दशकों में स्पेन की सर्वाधिक लोकप्रिय कॉमिक पुस्तकें सुपरमैन और स्पाइडरमैन के बारे में नहीं होती थी, बल्कि वे एल जाबातो नाम कल्पित प्राचीन आइबेरियाई योद्धा के साहसिक कारनामों के क़िस्से बताती थीं जो रोमन आततायियों के ख़िलाफ लड़ा था। प्राचीन नूमान्तियाई आज दिन तक वीरता और देशभक्ति के मामलें में स्पेन के आदर्श माने जाते हैं और उन्हें देश के नौजवानों के समक्ष अनुकरणीय आदर्शों के रूप में पेश किया जाता है।

तब भी स्पेनी देशभक्त नूमान्तियाइयों की सराहना स्पेनी भाषा में करते हैं-एक रोमांस भाषा, जो सीपियो की लैटिन की वंशज है। नूमान्तियाई सेल्टिक भाषा बोलते थे, जो अब मर चुकी है और लुप्त हो चुकी है। सर्वान्तीस ने द सीज़ ऑफ नूमान्तिया नाटक लैटिन लिपि में लिखा था और यह नाटक ग्रीको-रोमन कलात्मक आदर्शों का अनुसरण करता है। नूमान्तिया की कोई नाट्य कलाएँ नहीं थीं। नूमान्तियाई वीरता की सराहना करने वाले स्पेनी देशभक्त आम तौर से रोमन कैथेलिक चर्च (इसमें पहले शब्द को नज़रअन्दाज ना करें) के भी वफ़ादार अनुयायी होते हैं-वह चर्च, जिसके मुखिया का सिंहासन अभी भी रोम में है और जिसका ईश्वर लैटिन में सम्बोधित किया जाना पसन्द करता है। इसी तरह, आधुनिक स्पेनी विधि (लॉ) की उत्पत्ति रोमन विधि में है, स्पेनी राजनीति रोमन बुनियादों पर खड़ी है और स्पेनी पाककला और स्थापत्य आइबेरिया के सेल्टों की विरासत से कहीं ज्यादा रोमन विरासतों की ऋणी है। खण्डहरों के अलावा नूमान्तिया का वाक़ई कुछ भी शेष नहीं रह गया है। यहाँ तक कि उसकी गाथा भी हम तक रोमन इतिहासकारों की बदौलत पहुँची है। यह

गाथा भी उस रोमन श्रोता वर्ग की रुचियों के मुताबिक़ गढ़ी गई थी, जो आज़ादी-पसन्द बर्बरों के किस्सों का आनन्द लेते थे। नूमान्तिया पर रोम की जीत इतनी सम्पूर्ण थी कि विजेताओं ने पराजितों की स्मृति तक को अपना बना लिया।

यह हमारी तरह की कहानी नहीं है। हम शोषितो-दलितों को जीतते हुए देखना पसन्द करते हैं, लेकिन इतिहास में कोई न्याय नहीं होता। अतीत की ज़्यादातर संस्कृतियाँ आगे-पीछे किसी बेहरम साम्राज्य की सेनाओं की शिकार हुई हैं, जिसने उन्हें गुमनामी के अँधेरों के धकेल दिया। साम्राज्यों का भी अन्ततः पतन होता है, लेकिन वे अपने पीछे अक्सर एक समृद्ध और टिकाऊ विरासत छोड़ जाते हैं। इक्कीसवीं सदी के लगभग सारे समाज किसी ना किसी साम्राज्य की सन्तानें हैं।

साम्राज्य क्या है?

साम्राज्य एक राजनैतिक व्यवस्था है, जिसके दो महत्त्वपूर्ण लक्षण होते हैं। पहला, इस पद की अर्हता हासिल करने के लिए आपको अच्छी ख़ासी संख्या में ऐसे विभिन्न समाजों पर शासन करना होता है, जिनमें हरके की अलग संस्कृति, पहचान और उसका स्वतन्त्र अधिकार-क्षेत्र होता है। ठीक-ठीक कितने समाज? दो या तीन पर्याप्त नहीं है। बीस या तीस बहुत ज़्यादा है। साम्राज्यवाद की दहलीज़ इनके बीच कही होती है।

दूसरा, सरहदों का लचीलापन और सम्भावित रूप से असीमित भूख साम्राज्यों की विशेषता होती है। वे अपनी बुनियादी बनावट और पहचान में कोई तब्दीली लाए बग़ैर अधिक से अधिक राष्ट्रों और इलाक़ों को निगल और पचा सकते हैं। आज के अँग्रेज़ी राज्य की पर्याप्त स्पष्ट सरहदे हैं, जिनका विस्तार इस राज्य की बुनियादी संरचना और पहचान में तब्दीली लाए बग़ैर नहीं किया जा सकता। एक सदी पहले धरती का लगभग कोई भी स्थान अँग्रेजी साम्राज्य का हिस्सा बन सकता था।

सांस्कृतिक विविधता और प्रभुसत्ता के क्षेत्र का लचीलापन साम्राज्यों को ना सिर्फ अनूठा चारित्र प्रदान करते हैं, बल्कि वे उन्हें इतिहास में केन्द्रीय भूमिका भी प्रदान करते हैं। ये दो विशेषताएँ ही है, जिनकी बदौलत साम्राज्य विविध जातीय समूहों और विविध पारिस्थितिकीय क्षेत्रों को एक राजनैतिक छतरी के नीचे संगठित कर सके और इस तरह मानव प्रजातियों और पृथ्वी ग्रह के बड़े से बड़े हिस्सों का

आपस में मिलाने में कामयाब हो सके।

इस बात को विशेष रूप से रेखांकित किया जाना चाहिए कि कोई भी साम्राज्य पूरी तरह से अपनी सांस्कृतिक विविधता तथा लचीली सीमाओं से परिभाषित होता है, ना कि अपने उद्गमों, शासन के अपने ढंग, अपने अधिकार-क्षेत्र के विस्तार या अपनी आबादी की संख्या से। किसी साम्राज्य का युद्ध में विजय प्राप्त कर उभरना आवश्यक नहीं है। एथीनियाई साम्राज्य के जीवन की शुरुआत एक स्वैच्छिक संघ के रूप में हुई थी और हैब्सबॅर्ग साम्राज्य का जन्म वैवाहिक गठबन्धन से हुआ था, चालाकीपूर्ण वैवाहिक गठबन्धनों की एक शृंखला के माध्यम से। ना ही किसी साम्राज्य का किसी निरंकुश सम्राट द्वारा शासित होना ही अनिवार्य है। अँग्रेजी साम्राज्य, जो इतिहास का सबसे बड़ा साम्राज्य था, एक लोकतन्त्र से शासित था। अन्य लोकतान्त्रिक (या कम से कम गणतान्त्रिक) साम्राज्यों में आधुनिक डच, फ्रांसीसी, बेल्जियाई और अमेरिकी साम्राज्यों के साथ-साथ नोवगोराड, रोम, कार्थेज और एथेंज के पूर्वआधुनिक साम्राज्य शामिल है। आकार भी वास्तव में मायने नहीं रखता। साम्राज्य बहुत अदने हो सकते हैं। एथीनियाई साम्राज्य अपने सर्वोच्च शिखर पर आज के ग्रीस के आकार और आबादी के मुक़ाबले बहुत छोटा था। एज़्टेक साम्राज्य आज के मैक्सिको से भी छोटा था। तब भी दोनों साम्राज्य थे, जबकि आधुनिक ग्रीस और मैक्सिको नहीं है, क्योंकि जहाँ एथेनियाई और एज़्टेक साम्राज्यों ने दर्जनों बल्कि सैकड़ों भिन्न राजतन्त्रों को अपने अधीन बनाया हुआ था, वही मैक्सिको या ग्रीस ने वैसा नहीं किया है। एथेंस कोई एक सैकड़ा ऐसे राज्यों पर अपनी प्रभुता का रौब जमाता था, जो पहले स्वाधीन रहे थे, जबकि एज़्टेक साम्राज्य, अगर हम उसके महसूल सम्बन्धी दस्तावेज़ों पर भरोसा कर सके, तो 371 अलग-अलग क़बीलों और समाजों पर शासन करता था।

इस तरह के भाँति-भाँति की चीज़ों के इंसानी मिश्रण (ह्यूमन पॉटपुरी) को एक शालीन आधुनिक राज्य के अधिकार-क्षेत्र में ठूँस लेना कैसे मुमकिन हुआ? यह मुमकिन हो सका क्योंकि अतीत में दुनिया में बहुत सारे अलग-अलग जन-समूह थे, जिनमें से हरेक की थोड़ी-थोड़ी आबदियाँ थीं और वे आज के आम जनसमुदायों के मुक़ाबले बहुत छोटे इलाक़ों में रहती थीं। भूमध्यसागरीय क्षेत्र और जॉर्डन नदी के

बीच की भूमि ने (जो आज महज दो जनसमुदायों की महत्त्वकांक्षाओं को तुष्ट करने के लिए जूझती है) बाइबल के समय में बहुत आसानी से दर्जनों राष्ट्रों, क़बीलों, छोटी-मोटी बादशाहतों और नगर राज्यों को अपने में समाहित किया हुआ था।

साम्राज्य मानवीय विविधता में जबरदस्त कमी के लिए एक प्रमुख कारण थे। साम्राज्यवादी स्टीमरोलर ने धीरे-धीरे बहुत सारे जन-समुदायों (जैसे कि नूमान्तियाई जन-समुदाय) की अनूठी विशेषताओं को ख़त्म कर दिया और उन समुदायों से नए और ज़्यादा बड़े समूह गढ़ दिए।

अशुभ साम्राज्य?

हमारे समय में 'साम्राज्यवादी' राजनैतिक गालियों के शब्दकोशों में सिर्फ़ 'फ़ासिस्टों' के बाद दूसरे नम्बर पर आते हैं। साम्राज्यों की समकालीन आलोचनाएँ आम तौर से दो रूप लेती हैः

1. साम्राज्य कारगर नहीं होते। अन्ततः, बड़ी संख्या में जीते गए मुल्क़ों पर कारगर ढंग से शासन करना सम्भव नहीं है।

2. अगर यह मुमकिन भी हो, तो ऐसा किया नहीं जाना चाहिए, क्योंकि साम्राज्य विनाश और शोषण के अशुभ यन्त्र हैं। हर मुल्क़ को आत्मनिर्णय का हक़ है और उसे कभी भी किसी दूसरे मुल्क़ की हुकूमत के अधीन नहीं होना चाहिए। ऐतिहासिक दृष्टि से, पहला कथन साफ़-साफ़ बेवकूफ़ी है और दूसरे के साथ गहरी समस्या है।

वास्तविकता यह है कि साम्राज्य पिछले 2,500 सालों से राजनैतिक व्यवस्थापन का संसार का सबसे सामान्य रूप रहा है। इन ढ़ाई सहस्राब्दियों के दौरान ज़्यादातर मनुष्य साम्राज्यों में रहे हैं। साम्राज्य शासन का बहुत स्थिर रूप भी है। विद्रोहों को कुचलना ज़्यादातर साम्राज्यों के लिए ख़तरनाक ढंग से आसान रहा है। आम तौर से उनका पतन विदेशी आक्रमणों या शासक वर्ग के भीतर आई दरारों की वजह से ही हुआ है। उलटे, जीते गए जनसमुदायों के खुद को अपने साम्राज्यवादी अधिपतियों से आजाद कर लेने के कोई बहुत अच्छे कीर्तिमान नहीं रहे हैं। ज़्यादातर जनसमुदाय सैकड़ों सालों तक गुलामी झेलते रहे हैं। आम तौर से, वे विजेता साम्राज्य द्वारा धीरे-धीरे पचा लिए जाते रहे हैं, जब तक कि उनकी विशिष्ट संस्कृतियाँ बेजान नहीं हुई।

उदाहरण के लिए, जब 476 ईसवी में पश्चिमी रोमन साम्राज्य आक्रमणकारी जर्मन जनजातियों के हाथों पराजित हो गया, तो नूमान्तियाइयों, अवेर्नियाइयों, हेल्वीशियाइयों, सामनाइटों, ल्यूसिटेन्यिाइयों, उम्ब्रियाइयों, इंट्रॉस्केनियनों और उन सैकड़ों अन्य विस्मृत समाजों, जिन्हें रोमनों ने सदियों पहले जीता था, में से कोई भी समाज रोमन साम्राज्य के शव की आँतों से उस तरह प्रकट नहीं हुआ जैसे जोनह विशाल मत्स्य के उदर से प्रकट हो गया था। इनमें से कोई भी समाज नहीं बचा था। जो लोग स्वयं को इन देशों के नागरिकों के रूप में पहचानते रहे थे, जो इन देशों की भाषा बोला करते थे, उनके देवताओं को पूजा करते थे और उनकी लोककथाएँ और किंवदन्तियाँ सुनाया करते थे, उनके वंशज अब रोमनों की तरह सोचते, बोलते और उपासनाएँ करते थे।

बहुत सारे प्रकरणों में, एक साम्राज्य के विनाश का शायद ही यह अर्थ रहा है कि उस साम्राज्य की अधीनस्थ जातियाँ स्वतन्त्र हो गई। इसके बजाय, पुराने साम्राज्य के ध्वस्त हो जाने या पीछे हट जाने से ख़ाली हुई जगह को एक नया साम्राज्य भर देता था। यह स्थिति मध्य पूर्व में जितनी ज़ाहिर रही है, उतनी अन्यत्र कहीं नहीं रही। इस क्षेत्र के ताज़ा राजनैतिक समूह-कमोबेश मज़बूत सरहदों वाली अनेक स्वाधीन राजनैतिक सत्ताओं के बीच शक्ति-सन्तुलन का कोई समानान्तर उदाहरण पिछली अनेक सहस्राब्दियों में कभी भी देखने में नहीं आया। मध्य पूर्व ने ऐसी स्थिति को अन्तिम बार ईसा पूर्व आठवी सदी में अनुभव किया था-लगभग 3,000 साल पहले।

ईसा पूर्व आठवीं सदी में नव असीरियाई साम्राज्य के उदय से लेकर बीसवीं सदी ईसवी के मध्य में अंग्रेजी और फ्रांसीसी साम्राज्यों के ध्वस्त होने तक मध्य पूर्व रिले रेस के बैट न की भाँति एक साम्राज्य से दूसरे साम्राज्य के हाथों में जाता रहा। और जब तक अँग्रेज और फ्रांसीसी इस बैटन को छोड़ते, तब तक असीरियायियों द्वारा जीती गई अर्मेनियाई, अमोनाइट, फ़ीनीशियाई, फिलिस्तीनी, मोआबाइट, इडोमाइट और अन्य जातियाँ बहुत पहले लुप्त हो चुकी थीं।

यह सच है कि आज के यहूदी, अर्मेनियाई और जॉर्जियाई किसी हद तक यह उचित दावा करते हैं कि वे प्राचीन मध्य पूर्वी समाजों की सन्तानें हैं, लेकिन यह ऐसे अपवाद हैं, जिनके सामान्य स्थिति पर कोई अन्तर नहीं पड़ता और ये दावे किंचित

अतिरंजित भी हैं। कहना ना होगा कि, उदाहरण के लिए, आधुनिक यहूदियों के राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक आचरण जुडीया की प्राचीन हुकूमत से कहीं ज्यादा उन साम्राज्यों के ऋणी हैं, जिनके अधीन वे पिछली दो सहस्राब्दियों तक रहे हैं। अगर किंग डेविड अचानक आज के यरुशलम के अति-पारम्परिक सायनागौग में जा पहुँचे, तो यह लोगों को पूर्वी यूरोपीय वेशभूषाएँ धारण किए, जर्मन बोली (यीदिश) में बतियाते और एक बेबिलोनियाई मज़मून (टेल्मॅड) के अर्थ को लेकर अन्तहीन काम करते देखकर भौंचक्का रह जाएगा। प्राचीन जुडीया में ना तो सायनागाँग थे, ना टेल्मॅड के ग्रन्थ थे और ना ही टोरा के पट्टे थे।

एक साम्राज्य को खड़ा करने और उसे क़ायम रखने के लिए आमतौर से विशाल आबादियों का क्रूर नरसंहार और बचे रह गए लोगों में से एक-एक का निर्दयतापूर्ण दमन ज़रूरी होता था। एक मानक साम्राज्यवादी टूलकिट में युद्ध, गुलाम बनाना, देशनिकाला और जातिसंहार शामिल थे। जब रोमनों ने 83 ईसवी में स्कॉटलैंड पर हमला किया था, तो उन्होंने स्थानीय सेलेडोनियाई जनजातियों के उग्र प्रतिरोध का सामना किया था और प्रतिक्रिया में उस देश को पूरी तरह नष्ट कर दिया था। रोमन शान्ति-प्रस्तावों के जवाब में क़बीले के सरइदार कैलगाकस ने रोमनों को दुनिया के गुण्डे की संज्ञा दी थी और कहा था, ''वे लूटमार, नरसंहार और डकैती को साम्राज्य का झूठा नाम देते हैं, वे मरुस्थल तैयार करते हैं और उसे शान्ति का नाम देते हैं।''

लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि साम्राज्य अपने पीछे कुछ भी मूल्यवान नहीं छोड़ जाते। सारे साम्राज्यों को काला साबित करना और साम्राज्यवादी विरासत को नकारना मानव संस्कृति के ज़्यादातर हिस्से को अस्वीकार करना होगा। साम्राज्यवादी कुलीन जीत का धन सेनाओं और किलों में ही नहीं लगाते थे, बल्कि उसे दर्शन, कला, न्याय और जनकल्याण पर भी खर्च करते थे। मानव की सांस्कृतिक उपलब्धियों का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा अपने अस्तित्व के लिए पराजित आबादियों के शोषण का ऋणी है। रोमन साम्राज्य द्वारा पैदा किए गए लाभ और समृद्धि ने सिसरो, सेनेका और सेंट ऑगस्टाइन को सोचने और लिखने के लिए मोहलत और साधन मुहैया कराए, मुग़लों द्वारा हिन्दुस्तानी प्रजा के शोषण से इकट्ठा किए गए धन के बग़ैर ताजमहल का निर्माण ना हो सका होता और हैब्सबर्ग साम्राज्य द्वारा स्लाविक, हंगेरियाई और

रोमानियाई-भाषी प्रान्तों पर किए गए शासन से हुए मुनाफ़ों से हैडन की तनख़्वाहों और मोत्सार्ट के कमीशनों का भुगतान किया गया था। कैलगाकस के भाषण को भविष्य की पीढ़ियों के लिए किसी सेलेडोनियाई लेखक ने बचाकर नहीं रखा था। इसे हम रोमन इतिहासकार टैलिटस की बदौलत जानते हैं। वस्तुतः इसे शायद खुद टैसिटस ने गढ़ा था। ज़्यादातर अध्येता आज इस बारे में एकमत हैं कि टैसिटस ने ना सिर्फ़ इस भाषण को गढ़ा था, बल्कि उसने अपने खुद के मुल्क के बारे में उच्चवर्गीय रोमनों की धारणा के प्रवक्ता के रूप में बरते जाने के उद्देश्य से सेलेडोनियाई कबीले के सरदार कैलगाकस को भी काल्पनिक तौर पर गढ़ा था।

यहाँ तक कि अगर हम अभिजात्य संस्कृति और उन्नत कला से परे जाकर जनसाधारण की दुनिया पर ही ध्यान केन्द्रित करें, तो हम अधिकांश आधुनिक संस्कृतियों में साम्राज्यवादी विरासतों को पाते हैं। आज हममें से ज़्यादातर लोग उन साम्राज्यवादी भाषाओं में बोलते, सोचते और सपने देखते हैं, जो हमारे पूर्वजों पर तलवार के बल पर थोपी गई थी। पूर्वी एशिया के ज्या़दातर लोग हीन साम्राज्य की भाषा में सोचते और सपने देखते हैं। अलास्का के बैरो प्रायद्वीप से लेकर मैगेलन के जलडमरूमध्य तक के लगभग सारे निवासी, उनका उद्गम जो भी रहा हो, चार साम्राजयवादी भाषाओं-स्पेनी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी या अँग्रेंजी-में से कोई एक भाषा बोलते हैं। आज के मिस्रवासी अरबी बोलते हैं, अपने को अरब मानते हैं और खुद को पूरे मन से उस अरब साम्राज्य के साथ जोड़कर देखते हैं, जिसने सातवीं सदी में मिस्र को जीता था और उन विद्रोहों को तलवार की ताक़त पर कुचला था, जो उसकी हुकूमत के खिलाफ़ भड़के थे। दक्षिण अफ्रीका में लगभग एक करोड़ जुलू उन्नीसवी सदी के वैभवशाली जूलू युग को याद करते हैं, भले ही उनमें से ज़्यादातर उन जनजातियों के वंशज हैं, जो जुलू साम्राज्य के ख़िलाफ़ लड़ी थीं और जिन्हें रक्तरंजित सैन्य अभियानों के मार्फ़त उस साम्राज्य में समाविष्ट किया गया था।

ये आपके अपने हित में है

जिस प्रथम साम्राज्य के बारे में हमें पक्की जानकारी मिली है, वह सारगोन द ग्रेट (2250 ईसा पूर्व) का अक्कादि आई साम्राज्य था। सारगोन ने अपने कॅरियर की शुरुआत उस किश के राजा के रूप में की थी, जो मेसोपोटामिया का एक छोटा-सा

नगर राज्य था। कुछ ही दशकों के भीतर वह ना सिर्फ़ अन्य मेसोपोटामियाई नगर राज्यों को जीतने में कामयाब रहा, बथ्लक मेसोपोटामियाई केन्द्र-स्थल से बाहर के बड़े राज्यों को भी उसने जीत लिया। सारगोन डींग हाँकता था कि उसने सारी दुनिया पर विजय पा ली है। वास्तव में, उसके प्रभुत्व का विस्तार फ़ारस की खाड़ी से लेकर भूमध्यसागर तक था, और उसमें आज के ज़माने के इराक़ और सीरिया के ज़्यादातर भागों के साथ-साथ आधुनिक ईरान और तुर्की के कुछ टुकड़े भी शामिल थे।

अक्कादिआई साम्राज्य इसके संस्थापक की मौत के बाद ज्यादा समय तक नहीं टिका, लेकिन सारगोन अपने पीछे एक ऐसी प्रभावशाली साम्राज्यवादी भूमिका छोड़ गया, जो शायद ही कभी उपेक्षित रही हो। अगले 1,700 सालों तक असीरियाई, बेबिलोनियाई और हिटाइट राजा सारगोन को एक रोल मॉडल के रूप में अपनाते रहे और वे भी डींगे हाँकते थे कि उन्होंने सारी दुनिया को जीत लिया था। इसके बाद 550 ईसा पूर्व के आस-पास फारस का सायरस द ग्रेट और भी प्रभावशाली डींग के साथ सामने आया।

असीरिया के राजा हमेशा असीरिया के राजा ही बने रहे। तब भी जबकि वे सारी दुनिया पर हुकूमत करने का दावा करते थे, यह बात ज़ाहिर थी कि यह सब वे असीरिया की महिमा की ख़ातिर करते थे और इसे लेकर वे शर्मिन्दा नहीं होते थे। दूसरी तरफ़, सायरस महज़ सारी दुनिया पर हुकूमत करने का दावा ही नहीं करता था, बल्कि ऐसा वह सारे मुल्क़ों की ख़ातिर करता था। यह फ़ारसी कहा करता था कि ''हम आपको आपके हित के लिए जीत रहे हैं''। सायरस चाहता था कि जिन लोगों को उसने अपने अधीन बनाया था, वे उससे प्रेम करें और फ़ारस के मातहत होने के नाते खुद को खुशकिस्मत समझें। अपने साम्राज्य के पूर्ण नियन्त्रण में रह रहे राष्ट्र का अनुमोदन हासिल करने की सायरस की अनूठी कोशिशें की सबसे प्रसिद्ध मिसाल उसका यह फ़रमान था कि बेबिलोनिया में निर्वासित यहूदियों को उनकी जुडीयाई मातृभूमि में लौटने दिया जाए और अपने टेम्पल का निर्माण करने दिया जाए। उसने उन्हें आर्थिक मदद तक देने की पेशकश की थी। सायरस स्वयं को यहूदियों पर हुकूमत करते फ़ारसी शहंशाह के रूप में नहीं देखता था-वह यहूदियों का भी शहंशाह था और इस तरह उनकी बेहतरी के लिए ज़िम्मेदार था।

सारी दुनिया के वाशिन्दों की ख़ातिर सारी दुनिया पर हुकूमत करने का ख़याल चौंकाने वाला था। विकास-प्रक्रिया ने होमो सेपियन्स को, दूसरे सामाजिक प्राणियों की ही भाँति, अज्ञात लोगों से डरने वाला प्राणी बनाया है। सेपियन्स की यह सहज प्रवृत्ति है कि वे मनुष्यता को ''हम'' और 'वे' के दो हिस्सो में बाँटते हैं। हम आपके और मेरी तरह के लोग हैं, जो हमारी भाषा, धर्म और रीति-रिवाजों को साझा करते हैं। हम सब एक दूसरे के प्रति ज़िम्मेदार हैं, लेकिन उनके प्रति ज़िम्मेदार नहीं है। हम उनसे हमेशा से भिन्न रहे हैं और किसी मामले में उनके ऋणी नहीं है। हम उनमें से किसी को भी अपने इलाक़े में नहीं देखना चाहते और उनके इलाक़े में क्या हो रहा है, इसकी हमें रत्ती भर परवाह नहीं है। वे इंसान भी बमुश्किल ही हैं। सूडान के डिंका समाज की भाषा में, 'डिंका' का सीधा मतलब 'लोग' होता है। जो डिंका नहीं हैं, वे लोग भी नहीं है। डिंकाओं के सबसे कट्टर शत्रु हैं नूअर। नूअर भाषा में नूअर शब्द का क्या मतलब है? इसका मतलब है 'असली लोग'। सूडान के रेगिस्तानों से हज़ारों किलोमीटर दूर अलास्का और उत्तर-पूर्वी साइबेरिया की बर्फ़ानी भूमि में यूपिक रहते हैं। यूपिक भाषा में यूपिक शब्द का क्या मतलब है? इसका मतलब है 'वास्तविक लोग'।

अन्य के इस प्रजातीय निषेध के विपरीत, सायरस के समय से ही साम्राज्यवादी विचारधारा समावेशी और व्यापक होती गई। भले ही इसने अक्सर शासकों और शासितों के बीच के नस्लपरक और सांस्कृतिक भेदों पर ज़ोर दिया, तब भी इसने समूची दुनिया की बुनियादी एकता, तमाम देशों और कालों को नियन्त्रित करने वाले मूलभूत नियमों के एकल समूह के अस्तित्व और तमाम मनुष्यों के पारस्परिक दायित्वों को मान्यता दी। मानव-जाति को एक विशाल परिवार के रूप में देखा गया। अभिभावकों के सौभाग्य बच्चों की जिम्मेदारी और कल्याण से जुड़े हैं।

यह साम्राज्यवादी और दृष्टि सायरस और फ़ारसियों के यहाँ से अलेक्जेंडर द ग्रेट तक पहुँची और वहाँ से हेलेनिस्टयाई राजाओं, रोमन सम्राटों, मुसलमान खलीफ़ाओं, हिन्दुस्तान राजवंशों और अन्ततः सोवियत प्रधानों और अमेरिकी राष्ट्रपतियों तक पहुँची। इस परोपकारी साम्राज्यवादी दृष्टि ने साम्राज्यों के अस्तित्व का औचित्य स्थापित किया है और ना सिर्फ़ अधीनस्थ लोगों के विद्रोह को कोशिशों को, बल्कि

स्वाधीन मुल्कों के साम्राज्यवादी विस्तार को प्रतिरोध देने की कोशिशों को भी बेअसर कर दिया।

इस तरह की साम्राज्यवादी दृष्टियाँ फारसी मॉडल से स्वतन्त्र रूप से दुनिया के दूसरे हिस्सों में भी विकसित हुई, जिनमें सबसे उल्लेखनीय हैं मध्य अमेरिका, ऐंडियाई क्षेत्र और चीन। चीन के पारम्परिक राजनैतिक सिद्धान्त के मुताबिक, स्वर्ग (तियान) पृथ्वी की सारी वैध सत्ताओं का स्रोत हैं। स्वर्ग की सत्ता सबसे योग्य व्यक्ति या परिवार को चुनती हैं और उन्हें स्वर्ग का शासनादेश (मैंडेट ऑफ हेवन) प्रदान करती है। इसके बाद यह व्यक्ति या परिवार स्वर्ग के तले के समस्त (तियानज़िया)को के समस्त निवासियों के हितों की ख़ातिर इन मुल्क़ों पर शासन करते हैं। इस तरह एक वैध सत्ता का अर्थ ही यह है कि वह सार्वभौमिक होती है। अगर किसी शासक को स्वर्ग का शासनादेश प्राप्त नहीं है, तो उसमें एक नगर तक पर शासन करने की वैधता का अभाव है। अगर किसी शासक को यह शासनादेश प्राप्त है, तो वह समूची दुनिया में न्याय और समरसता का विस्तार करने के लिए बाध्य है। स्वर्ग का यह शासनादेश एक साथ कई प्रत्याशियों को नहीं दिया जा सकता था, और नतीजतन कोई व्यक्ति एक स्वतन्त्र राज्य से ज़्यादा के अस्तित्व को वैधीकृत नहीं कर सकता था।

संयुक्त चीनी साम्राज्य के प्रथम सम्राट चिंग शी हुआंग्दी डींग हाँकता था कि ''विश्व की छहों दिशाओं की हर चीज़ सम्राट की है...जहाँ कहीं पर भी मनुष्य के पैरों का निशान है, वहाँ ऐसा कोई नहीं है, जो सम्राट की प्रजा नहीं बन चुका था। उसकी दयालुता बैलों और घोड़ों तक भी पहुँचती है। ऐसा कोई नहीं, जिसका कल्याण नहीं हुआ। हर व्यक्ति अपने खुद के छप्पर तले सुरक्षित है...'' चीन के राजनैतिक चिन्तन में, साथ ही चीन की ऐतिहासिक स्मृति में भी, साम्राज्यवादी युगों को इसके बाद से व्यवस्था और न्याय के स्वर्ण-युगों के रूप में देखा गया था। इस आधुनिक पश्चिमी दृष्टिकोण के विपरीत कि एक न्यायसंगत दुनिया स्वतन्त्र राष्ट्र राज्यों से मिलकर बनती है। चीन में राजनैतिक विखण्डन के युगों को अराजकता और अन्याय के अँधेरे युगों के रूप में देखा गया था। चीन के इतिहास के सन्दर्भ में इस समझ के दूरगामी निहितार्थ रहे हैं। जब भी कभी कोई साम्राजय ध्वस्त होता था, यह प्रभावी राजनैतिक सिद्धान्त सत्ताओं को उकसाता था कि वे तुच्छ क़िस्म की स्वतन्त्र रियासतें ना रह जाएँ, बल्कि पुनः एकीकरण का प्रयास करें।

आगे-पीछे ये प्रयास हमेशा सफल होते थे।

जब वे, हम बन जाते हैं

साम्राज्यों ने बहुत-सी छोटी सांस्कृतियों को थोड़ी-सी बड़ी संस्कृतियों में एकीकृत करने में निर्णायक भूमिका निभाई है। एक राजनैतिक तौर पर विखण्डित क्षेत्र के बजाय एक साम्राज्य की सरहदों के भीतर विचारों, लोगों, वस्तुओं और प्रौद्योगिकी का प्रसार ज्यादा आसानी से होता है। अक्सर तो यह स्वयं साम्राज्य ही रहे हैं, जिन्होंने जानबूझकर विचारों, संस्थाओं, रीति-रिवाज़ों और प्रतिमानों का प्रसार किया है। इसकी एक वजह खुद उनकी अपनी ज़िन्दगी को आसान बनाने की रही है। एक ऐसे साम्राज्य पर हुकूमत करना मुश्किल है, जिसमें हर छोटे जनपद के अपने कानून, अपनी लिपियाँ, अपनी भाषाएँ और अपनी मुद्रा हो। मानकीकरण सम्राटों के लिए एक वरदान था।

साम्राज्यों द्वारा एक समान संस्कृति का सक्रिय रूप से प्रसार करने के पीछे एक अन्य और उतनी ही महत्त्वपूर्ण वजह वैधता हासिल करने की रही है। कम से कम सायरस और चिन शी हुआंग्दी के ज़माने से साम्राजय अपने कृत्यों-चाहे वे कृत्य सड़कें बनवाना रहे हों या रक्तपात करना रहे हों-का औचित्य एक ऐसी उत्कृष्ट संस्कृति के प्रसार की ज़रूरत के तौर पर साबित करते रहे हैं, जिस संस्कृति से विजेताओं से ज़्यादा जीते गए लोग अपने हित साध सकें।

ये हित कभी-कभी बहुत महत्त्वपूर्ण होते थे-क़ानून का प्रवर्तन, नगर योजना, नाप-तौल का मानकीकरण, और कभी-कभी आपत्तिजनक होते थे-कर, जबरन सेना में भर्ती, सम्राट की पूजा, लेकिन ज़्यादातर साम्राज्यवादी कुलीन वर्ग इस बात पर गम्भीरतापूर्वक विश्वास करते था कि वह साम्राज्य के समस्त निवासियों के सामान्य कल्याण के लिए काम कर रहा है। चीन का शासक वर्ग अपने देश के पड़ोसियों और उसकी विदेशी प्रजाओं को ऐसे दयनीय बर्बरों की तरह देखते थे, जिन्हें संस्कृति के लाभ मिलने ज़रूरी थे। सम्राट को दुनिया का शोषण करने के लिए नहीं, बल्कि मनुष्यता को शिक्षित करने की ख़ातिर स्वर्ग शासनादेश से नवाज़ा गया था। रोमन भी अपने प्रभुत्व को यह तर्क देते हुए उचित ठहराते थे कि वे बर्बरों को सुख-शान्ति, न्याय और परिष्कार प्रदान कर रहे हैं। जंगली जर्मन और रँगे हुए गॉल तक तक गन्दगी

और अज्ञान में पड़े थे, जब तक कि रोमनों ने उन्हें कानून की मदद से दंश में नहीं कर लिया था, उन्हें सार्वजनिक स्नानागारों में नहलाया नहीं था और दर्शन की मदद से उनका बौद्धिक विकास नहीं किया था। ईसा पूर्व तीसरी सदी में मौर्य साम्राज्य ने अज्ञान में डूबी दुनिया में बुद्ध के उपदेशों के प्रचार को अपनी मुहिम बनाया था। मुसलमान ख़लीफ़ाओं को यह पवित्र आदेश मिला था कि ये पैगम्बर के इलहाम का मुमकिन हो तो शान्तिपूर्वक और अगर ज़रूरी हो तो तलवार की दम पर प्रचार करें। स्पेनी और पुर्तगाली साम्राज्यों ने घोषणा की थी कि वे इंडीज़ और अमेरिका में समृद्धि की तलाश नहीं कर रहे थे बल्कि सच्चे धर्मावलम्बियों की तलाश कर रहे थे। उदारतावाद और मुक्त व्यापार के दोहरे धर्ममतों के प्रचार के अँग्रेजी अभियान के दौरान कभी सूर्यास्त नहीं हुआ था। सोवियत संघ के लोग पूँजीवाद में सर्वहारा की यूरोपियाई तानाशाही की दिशा में इतिहास के अटल अभियान को आसान बनाने को अपने कर्तव्य की तरह देखते थे। बहुत से अमेरिकी लोगों की आज ऐसी दृढ़ मान्यता है कि यह उनकी सरकार का एक अनिवार्य नैतिक दायित्व है कि वह तीसरी दुनिया के देशों तक लोकतन्त्र और मानवाधिकारों के लाभ पहुँचाए, भले ही इन चीजों को उन तक पहुँचाने में क्रूज़ मिसाइलों और एफ-16 का सहारा ही क्यों ना लेना पड़े।

साम्राज्य द्वारा प्रसारित सांस्कृतिक विचार अक्सर पूरी तरह से शासक वर्ग के दिमाग की उपज नहीं होते थे। चूँकि साम्राज्यवादी कल्पना सार्वभौतिक और समावेशी होती थी, साम्राज्यवादी शासक वर्ग के लिए यह अपेक्षाकृत आसान होता था कि वे किसी एक संकीर्ण परम्परा से कट्टरतापूर्वक चिपके रहने के बजाय जहाँ कहीं से भी मुमकिन होता था, वहाँ से विचारों, मापदण्डों और रिवाजों को अपना लेते थे। जहाँ कुछ सम्राटों ने अपनी संस्कृतियों का शुद्धिकरण करने और उस ओर लौटने की कोशिश की, जिसे वे अपनी ज़डों की तरह देखते थे, वहीं ज़्यादातर साम्राज्यों ने ऐसी मिश्रित सभ्यताओं को जन्म दिया, जिन्होंने बहुत कुछ इन साम्राज्यों के अधीनस्थ समाजों से आत्मसात किया था। रोम की साम्राज्यवादी संस्कृति लगभग उतनी ही ग्रीक थी, जितनी वह रोमन थी। साम्राज्यवादी अब्बसिद संस्कृति आंशिक रूप से फ़ारसी, आंशिक रूप से ग्रीक और आंशिक रूप से अरबी थी। साम्राज्यवादी मंगोल संस्कृति चीनी अनुकृति थी। साम्राजयवादी संयुक्त राज्य अमेरिका में केन्याई रक्त वाला

अमेरिकी राष्ट्रपति पीत्जा चबाते हुए अपनी पसन्दीदा फ़िल्म, तुर्कों के ख़िलाफ़ अरब विद्रोह पर केन्द्रित अंग्रेजी एपिक देख सकता है।

यह नहीं कि इस सांस्कृतिक घालमेल ने सांस्कृतिक समावेशीकरण की प्रक्रिया को परास्त लोगों के लिए आसान बना दिया था। साम्राज्यवादी सभ्यता ने विभिन्न विजित समाजों के असंख्य योगदानों को पचा लिया हो सकता है, लेकिन इससे तैयार हुआ मिश्रण तक भी बहुसंख्यक लोगों के लिए विजातीय था। समावेशीकरण की प्रक्रिया अक्सर तकलीफ़देह और मानसिक आघात-पहुँचाने वाली होती थी। एक अन्तरंग और प्रिय स्थानीय परम्परा को त्याग देना आसान नहीं होता, उसी तरह एक नई संस्कृति को समझना और अपनाना मुश्किल और तनाव से भर देने वाला होता है। इससे बेहतर यह है कि जब अधीनस्थ समाज साम्राज्यवादी संस्कृति को अपनाने में कामयाब भी हो जाते थे, तब भी अगर सदियाँ नहीं तो दशकों लग जाते थे, तब कहीं साम्राज्यवादी प्रभु वर्ग इन समाजों को 'हम' के हिस्से के रूप में स्वीकार कर पाता था। जीत और स्वीकृति के बीच की पीढ़ियाँ अलग-थलग और अकेली पड़ जाती थीं। वे अपनी प्रिय स्थानीय संस्कृति से तो पहले ही हाथ धो बैठी होती थीं, लेकिन साम्राज्यवादी दुनिया में उन्हें बराबरी की हिस्सेदारी करने की छूट नहीं होती थी। इसके विपरीत, उनकी अपनाई गई संस्कृति उन्हें बर्बरों के रूप में देखना जारी रखती थी।

नूमान्तिया के पतन की एक सदी बाद रह रहे एक प्रतिष्ठित आइबेरियाई की कल्पना कीजिए। वह अपने माँ-बाप से अपनी मूल सेल्टिक बोली में बातचीत करता है, लेकिन उसने महज़ हल्के-से स्वराघात के साथ शुद्ध लैटिन भी सीख ली हैं, क्योंकि उसे अपना क़ारोबार चलाने और अधिकारियों के साथ व्यवहार के लिए इसकी ज़रूरत पड़ती है। उसे बेहद भड़कीले आभूषणों के प्रति अपनी बीवी का रुझान बहुत अच्छा लगता है, लेकिन वह इस बात से किंचित शर्मिन्दगी महसूस करता है कि वह, अन्य स्थानीय स्त्रियों की ही भाँति, इस सेल्टिक अभिरुचि के अवशेष को बरकरार रखे है-उसे कहीं ज़्यादा अच्छा लगता अगर वह रोमन गवर्नर की बीवी द्वारा पहने जाने वाले आभूषणों की सादगी अपनाती। वह खुद रोमन टयूनिक पहनता है। पशुओं के सौदागर के रूप में उसकी कामयाबी की बदौलत और

रोमन वाणिज्यिक कानून की बारीकियों में अपनी पर्याप्त विशेषता के दम पर उसने रोमन शैली का एक देहाती बँगला भी बनवा लिया है। तब भी, बावजूद इसके कि वह वर्जिल की जॉर्जिक्स की तीसरी पोथी का पाठ कर सकता है, रोमन लोग उसे अभी भी अर्ध-बर्बर मानकर व्यवहार करते हैं। उसे इस बात का हताश अहसास है कि उसे कभी कोई सरकारी नियुक्ति नहीं मिल पाएगी या रंगशाला में वास्तव में कोई ठीक आसन नहीं मिल सकेगा।

उन्नीसवीं सदी के बाद के वर्षों में बहुत-से पढ़े लिखे हिन्दुस्तानियों को उनके अँग्रेज हुक्मरानों ने ऐसा ही सबक़ सिखाया था। एक प्रसिद्ध क़िस्सा एक महत्त्वाकांक्षी हिन्दुस्तानी के बारे में बताता है, जिसने अँग्रेजी के जुबान की बारीकियों में महारत हासिल कर ली थी, पश्चिमी शैली का नाच सीख लिया था और वह छुरी-काँटे की मदद से खाने तक का अभ्यस्त हो चुका था। अपने इन नए तौर-तरीक़ों से लैस होकर वह इंग्लैंड गया, वहाँ उसने यूनिवर्सिटी कॉलेज लन्दन में क़ानून की पढ़ाई की और एक क़ाबिल बैरिस्टर बन गया। तब भी, सूट और टाई पहने, कानून में दीक्षित इस नौजवान को दक्षिण अफ्रीका के अँग्रेजी उपनिवेश की ट्रेन से बाहर फेंक दिया गया था क्योंकि वह उस तीसरे दर्ज़े के डिब्बे, जिसमें उस जैसे 'अश्वेतों' से यात्रा करने की अपेक्षा की जाती थी, में बैठने के बजाय प्रथम श्रेणी के डिब्बे में बैठने की ज़िद कर रहा था। उनका नाम था मोहनदास करमचन्द गाँधी।

कुछ प्रकरणों में सांस्कृतिक मिश्रण और समावेशीकरण की प्रक्रिया ने नवागुन्तकों और पुराने कुलीन वर्ग के बीच के अवरोधों को अन्ततः तोड़ दिया था। जीते गए लोग साम्राज्य को प्रभुत्व की विजातीय व्यवस्था के रूप में देखना बन्द कर चुके थे और विजेता अपने अधीनस्थों को अपनी बराबरी के दर्ज़े पर देखना शुरू कर चुके थे। शासक और शासित दोनों ही 'वे' को 'हम' के रूप में देखने लगे थे। रोम की सारी प्रजा को अन्ततः साम्राज्यवादी हुकूमत की सदियाँ गुज़रने के बाद रोमन नागरिकता प्रदान कर दी गई थी। ग़ैर-रोमन लोग ऊपर उठकर रोमन फ़ौजों के अधिकारी वर्ग के सर्वोच्च पदों तक पहुँच चुके थे और सीनेट में नियुक्त किए जाने लगे थे। 48 ईसवी में सम्राट क्लॉडियस ने सीनेट में उन अनेक ख्यातिप्राप्त गैलिकों को प्रवेश दिया था, जिन्हें, जैसा कि उसने अपने भाषण में उल्लेख किया था, ''रीति-रिवाज़ों, संस्कृति

और वैवाहिक रिश्तों ने हमारे साथ पूरी तरह मिला दिया था।'' नकचढ़े सीनेटरों ने इन पुराने शत्रुओं को रोमन राजनैतिक तन्त्र के केन्द्र में लाने को लेकर विरोध प्रकट किया था। क्लॉडियस ने उन्हें एक असुविधाजनक वास्तविकता का स्मरण कराया था। खुद उनके ज़्यादातर सीनेटोरियल परिवार उन इतालवी जनजातियों के वंशज थे, जो कभी रोमनों के ख़िलाफ़ लड़ी थीं और जिन्हें बाद में रोमन नागरिकता प्रदान कर दी गई थी। यहीं नहीं, सम्राट ने उन्हें यह भी याद दिलाया था कि खुद उनका परिवार सेबाइन वंश का था।

ईसा की दूसरी सदी के दौरान रोम पर आइबेरिया में जन्मे ऐसे अनेक सम्राटों की हुकूमत रही थी, जिनकी रगों में शायद स्थानीय आइबेरियाई रक्त की क्रम से कम कुछ बूँदें प्रवाहित रही होंगी। ट्रेजन, हेड्रियन, एंटोनिनस पायस और मार्कस ऑरीलियँस के शासनों को आम तौर से साम्राज्य के स्वर्ण-युग की रचना करने वाले शासनों की तरह देखा जाता है। इसके बाद, सारे प्रजातीय अवरोध ढहा दिए गए। सम्राट सेप्टीमियस सवेरस (193-211) लीबिया के प्यूनिक वंश का वारिस था। अल्जेबालुस (218-22) एक सीरियाई था। सम्राट फ़िलिप (244-49) को बोलचाल की भाषा में 'फ़िलिप द अरब' के नाम से जाना जाता था। साम्राज्य के नए नागरिकों ने रोमन साम्राज्यवादी संस्कृति को इस उत्साह के साथ अपना लिया था कि स्वयं साम्राज्य के ध्वस्त हो जाने के बाद भी सदियों ही नहीं, बल्कि सहस्राब्दियों तक उन्होंने साम्राज्य की भाषा में बोलना, उस ईसाई ईश्वर में आस्था रखना, जिसे साम्राज्य ने अपने एक लेवेन्ताइन प्रान्त से अपनाया था और साम्राज्य के विधानों पर चलना जारी रखा।

ऐसी ही प्रक्रिया अरब साम्राज्य में भी घटित हुई। अब सत्रहवीं सदी ईसवी में इसकी स्थापना हुई थी, तो यह अरब-मुसलमान शासक वर्ग और उसके अधीनस्थ उन मिस्री, सीरियाई, ईरानी और बर्बरों के बीच के दो-टूक विभाजन पर आधारित था। बर्बर ना तो अरब थे और ना ही मुसलमान। साम्राज्य की बहुत सारी प्रजा ने धीरे-धीरे मुस्लिम धर्म, अरबी भाषा और एक वर्णसंकर साम्राज्यवादी संस्कृति को अपना लिया। पुराना अरब अभिजात्य वर्ग इन नव-धनाढ्यों को गहरे विद्वेष के भाव से देखता था और अपनी विशिष्ट हैसियत और पहचान के खो जाने को लेकर आशंकित था। हताश धर्मान्तरितों ने साम्राज्य और इस्लाम की दुनिया में अपनी

बराबरी की हिस्सेदारी के लिए शोर मचाया। आख़िरकार, उनकी इच्छा पूरी हुई। मिस्रियों, सीरियाइयों और मेसोपोटामियनों को उत्तरोत्तर 'अरबों' के रूप में देखा जाने लगा। वहीं अरब-चाहे वे अरेबिया से आए 'प्रमाणिक' अरब केरहे हों या मिस्र और सीरिया के नए टकसाली अरब रहे हो-उत्तरोत्तर गैर-अरब मुसलमानों, ख़ास तौर से ईरानियों, तुर्कों और बर्बरों के अधीनस्थ होते होते गए। अरब साम्राज्यवादी मुहिम की सबसे बड़ी क़ामयाबी यह थी कि इसने जो साम्राज्यवादी संस्कृति गढ़ी थी, उसे उन बहुत से ग़ैर-अरब लोगों द्वारा पूरे मन से अपना लिया गया, जिन्होंने उसे क़ायम रखना, विकसित करना और प्रसारित करना जारी रखा-तब भी, जबकि मूल साम्राज्य का पतन हो चुका था और एक प्रजातीय समूह के रूप में अरब अपना प्रभुत्व खो चुका था।

चीन में साम्राज्यवादी परियोजना की क़ामयाबी इससे भी ज्यादा सम्पूर्ण थी। 2,000 साल से भी ज़्यादा समय तक प्रजातीय और सांस्कृतिक समूहों को एक घालमेल, जिन्हें पहले बर्बर की संज्ञा दी गई थी, कामयाब तरीक़े से साम्राज्यवादी चीनी संस्कृति में समाहित हो गए और हान चीनी बन गए (उनका यह नाकरण उस हान साम्राज्य के नाम पर हुआ था, जिसने 206 ईसा पूर्व से 220 ईसवी तक चीन पर शासन किया था।) चीनी साम्राज्य की चरम उपलब्धि यह है कि यह अभी भी जीवित और स्वस्थ है, हालाँकि उसे तिब्बत और शरीनज्यांग जैसे इलाकों के अलावा एक साम्राज्य के रूप में देखना मुश्किल है। चीन की 90 प्रतिशत से ज्यादा आबादी स्वयं के द्वारा और दूसरों के द्वारा हान के रूप में देखी जाती है।

उपनिवेशवाद को समाप्त किए जाने की पिछले कुछ दशकों की प्रक्रिया को हम इसी रूप में देख सकते हैं। आधुनिक युग के दौरान यूरोपीय लोगों ने श्रेष्ठ पश्चिमी संस्कृति के प्रसार के नाम पर विश्व के बहुत बड़े हिस्से को जीता था। वे इस क़दर कामयाब रहे थे कि अरबों लोगों ने धीरे-धीरे उस संस्कृति के महत्त्वपूर्ण हिस्सों को अपना लिया। हिन्दुस्तानियों, अफ्रीकियों, अरबों, चीनियों और माओरियों ने फ्रांसीसी, अँग्रेजी और स्पेनी भाषाएँ सीख ली। उन्होंने मानव अधिकारों और आत्मनिर्णय के सिद्धान्तों में विश्वास करना शुरू कर दिया और उन्होंने उदारतावाद, पूँजीवाद, साम्यवाद, नारीवाद और राष्ट्रवाद जैसी विचारधाराओं को अपनाया।

साम्राज्यवादी चक्र

स्तर	रोम	इस्लाम	यूरोपीय साम्राज्यवाद
एक छोटे समूह द्वारा बड़े साम्राज्य की स्थापना की जाती है	रोमन रोमन साम्राज्य की स्थापना करते हैं।	अरब लोग अरब ख़िलाफ़त की स्थापना करते है	यूरोपीय लोगों द्वारा यूरोपीय साम्राज्य की स्थापना की जाती है
साम्राज्यवादी संस्कृति गढ़ी जाती है।	ग्रीको-रोमन संस्कृति	अरब-मुस्लिम संस्कृति	पश्चिमी संस्कृति
अधीनस्थ प्रजा द्वारा साम्राज्यवादी संस्कृति को अपनाया जाता है	अधीनस्थ प्रजा लैटिन, रोमन कानून, रोमन कानून, रोमन राज-नैतिक विचारों इत्यादि को अपनाती है।	अधीनस्थ प्रजा अरबी, इस्लाम इत्यादि को अपना लेती है	अधीनस्थ प्रजा अँग्रेजी और फ्रांसीसी, समाज-वाद, राष्ट्रवाद मानवाधिकार इत्यादि को अपना लेती है
अधीनस्थ प्रजा द्वारा साझा साम्राज्यवादी मूल्यों के नाम पर बराबरी की हैसियत की माँग की जाती है	इलीरियाई, गॉल और प्यूनिक साझा रोमन मूल्यों के नाम पर रोमनों के समान हैसियत की माँग करते हैं।	मिस्रवासी, ईरानी और बर्बर साझा मुस्लिम मूल्यों के नाम पर अरबों के बराबर की हैसियत की माँग करते हैं	हिन्दुस्तानी, चीनी और अफ्रीकी राष्ट्र-वाद, समाजवाद मानवाधिकार जैसे पश्चिमी साझा मूल्यों के नाम पर यूरोपीय लोगों के बराबर की हैसियत की माँग करते है।

साम्राज्य के संस्थापक अपना प्रभुत्व खो देते हैं	एक अनूठे प्रजातीय समूह के रूप में रोमनों का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। साम्राज्य का नियन्त्रण नए बहु-प्रजातीय प्रभु वर्ग के हाथों में आ जाता है	मुस्लिम दुनिया पर अरबों का नियन्त्रण समाप्त हो जाता है और वह बहु-प्रजा-तीय मुस्लिम प्रभु वर्ग के हाथों में आ जाता है	यूरोपीय भूमण्डलीय दुनिया पर अपना नियन्त्रण खो देते हैं और वह नियन्त्रण व्यापक रूप से पश्चिमी मूल्यों और चिन्तन-पद्धति में आस्था रखने वाले बहु-प्रजातीय प्रभु वर्ग के हाथों में आ जाता है
साम्राज्यवादी संस्कृति फलना-फूलना और विकसित होना जारी रखती है	इलीरियाई, गॉल और प्यूनिक अपनाई गई रोमन संस्कृति को विकसित करना जारी रखते हैं	मिस्रवासी, ईरानी और बर्बर अपनाई गई मुस्लिम संस्कृति को विकसित करना जारी रखते हैं	हिन्दुस्तानी, चीनी और अफ्रीकी अपनाई गई पश्चिमी संस्कृति को विकसित करना जारी रखते हैं।

(सेपियन्स से साभार पृ. 221)

न्यूजीलैंड में मस्जिदों पर हमला करने वाला श्वेत सर्वोच्चतावादी है

इंटरनेट पर श्वेत राष्ट्रवाद आईएस से आगे, 600 %. तक बढ़ी पहुँच

2016-17 में 43 प्र. बढ़े सर्वोच्चतावादी हमले

न्यूजीलैंड के क्राइस्टचर्च में 15 मार्च को दो मस्जिदों पर हुए हमले ने दक्षिण-प्रशांत के इस द्वीप की सुरक्षा का भ्रम तोड़ दिया है। हमले ने यह भी साबित किया है कि व्हाइट सुप्रीमेसी यानी श्वेत सर्वोच्चता या प्रभुत्व (श्वेतों को सर्वश्रेष्ठ बताने वाली नस्लभेदी विचारधारा) पश्चिमी दुनिया के लिए उतनी ही खतरनाक बन

चुकी है, जितना कि वो कट्टर इस्लाम के नाम पर हो रहे आतंकवाद को खतरनाक मानती है। क्राइस्टचर्च में 50 लोगों की जान लेने वाले हमलावर ने भी प्रवासियों के खिलाफ चल रहे अंतरराष्ट्रीय अभियान के नाम पर श्वेत राष्ट्रवाद की ही याद दिलाई है और दक्षिण पंथी चरमपंथ फिर चर्चा में आ गया है। आँकड़ें भी बता रहे हैं कि श्वेत सर्वोच्चतावाद में भी तेजी से बढ़ोतरी हुई है।

वाशिंगटन पोस्ट के मुताबिक 2017 में अमेरिकी जाँच एजेंसी एफबीआई ने बताया था कि वह श्वेत सर्वोच्चता और स्थानीय आतंकवादी धमकियों से जुड़े करीब 1000 मामलों की जाँच कर रही है। इस दौरान वह इस्लामिक स्टेट से प्रेरित आतंकवाद के लगभग इतने ही मामलों की जाँच कर रही थी। यूनिवर्सिटी ऑफ मैरीगोल्ड के ग्लोबल टेररिज्म डेटाबेस के मुताबिक 2012 से 2017 के बीच श्वेत-सर्वोच्चतावादी के हमले दोगुने हो गए। वहीं यूरोप में भी मुस्लिम प्रवासियों को लेकर अति-दक्षिणपंथी गुस्सा जताते रहे हैं और कई बार सर्वोच्चतावादियों द्वारा हिंसा की गई। 2016 से 2017 के बीच यूरोप में अति-दक्षिणपंथी हमलों में 43 फीसदी का इजाफा हुआ। चरमपंथियों पर शोध करने वाले जे.एम. बर्गर ने अपने ट्वीट में 2016 के एक अध्ययन का उल्लेख किया है। इसमें लिखा है, '2012 के फॉलोअर्स में 600 प्र. का इजाफा हुआ है। आज वे प्रतिदिन ट्विट और फालोअर्स की संख्या के मामले में आईएसआईएस से आगे है।'

अगले साल से न्यूजीलैंड रिफ्यूजी कोटा 50 फीसदी तक बढ़ाएगा

क्राइस्टचर्च में हुए हमले के बावजूद न्यूजीलैंड ने अपना रुख नहीं बदला है। वहाँ की प्रधानमंत्री जसिंदा अर्डर्न ने कहा है कि वे अगले साल से वार्षिक शरणार्थी कोटा 1000 से बढ़ाकर 1500 तक देंगी। वहीं न्यूजीलैंड की कौमी एकता की भावना से भरी संस्कृति के बावजूद, ऐसा महसूस किया जाता रहा है कि सबकुछ ठीक नहीं चल रहा है। मसलन पिछले पाँच सालों में इस्लामिक वुमन्स काउंसिल ने सरकारी एजेंसियों से मुस्लिम समुदाय के प्रति दुर्भावना और नफरतभरा व्यवहार होने की कई बार शिकायत की है।

9/11 से भी बड़ा था नुकसान

न्यूजीलैण्ड की जनसंख्या 48 लाख है और उसने 15 मार्च को हुए हमले में

50 लोग खोए हैं। जनसंख्या के अनुपात के हिसाब से देखा जाए तो अमेरिका को 9/11 आतंकी हमले में हुए नुकसान की तुलना में न्यूजीलैंड को इस हमले में ज्यादा नुकसान हुआ है। वहीं अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रम्प श्वेत सर्वोच्चतावादियों को 'लोगों का बहुत छोटा समूह' बताते आए हैं। फिर भी मस्जिदों पर हमला करने वाले हमलावर ने भी अपने मेनीफेस्टो में ट्रम्प को श्वेत सर्वोच्चतावादियों की लड़ाई का प्रतीक बताया।

बहुविध श्रेष्ठ व्यक्तित्व के धारी गुरुवर (साधु-उपाध्याय आचार्य)
(धवला सिद्धान्त ग्रन्थ से भी प्रेरित यह काव्य)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः तुम दिल की...)

बहुविध व्यक्तित्व के धारी हो गुरुवर! गुरुगुणों से ही भरीत हो।
रत्नत्रय के साधक हो! साधुवर मोक्ष प्राप्ति का ही लक्ष्य है।। (ध्रु)
आत्मविश्वास आपका प्रथम व्यक्तित्व आत्मज्ञान आपका द्वितीय व्यक्तित्व।
दोनों से युक्त आत्मानुचरण तृतीय तीनों में गर्भित अनेक/(निम्नोक्त) व्यक्तित्व।
तीनों से युक्त आत्मासाधनारत आत्मानुशासन से ले आत्मा की शुद्धता।
ध्यान-अध्ययन से ले शोध-बोधरत स्व पर विश्वकल्याण से सहित।। (1)
पंचमहाव्रतों को धारण करते हो तीन गुप्तियों से सुरक्षित हो।
अठारह हजार शील के साधक चौरासी लाख उत्तर गुणों के साधक।।
सिंह के समान पराक्रमी हो गज के समान स्वाभिमानी-उन्नत।
बैल के समान भद्रप्रकृति मृग के समान सरल हो आप।। (2)
पशु के समान निरीह आहार/(गोचरी) युक्त, पवन सम निःसग-विहार युक्त।
सूर्य सम तेजस्वी तत्त्व प्रकाशक उदधि समान गंभीर भाव धारक।।
सुमेरू सम अविचलीत-अकम्प चन्द्रमा के समान शान्ति दायक।
मणि के सम हो! प्रभापुंज युक्त क्षिति के समान क्षमा से युक्त।। (3)
सर्प के समान अनियतवास आकाश सम निरालम्बी-निर्लेप।
मोक्षमार्ग के अन्वेषक-शोधक हो! लक्ष्यनिष्ठ अदम्य पुरुषार्थी हो।।
अतः रोगद्वेषमोहमद से रिक्त ख्यातिपूजा लाभ वर्चस्व रहित।

समता-शान्ति निस्पृहता युक्त आप के अनुयायी 'सूरी कनक'।। (4)

भीलूडा दि. 25.3.2019 रात्रि 11.18

संदर्भ-

बहिरात्मा से अन्तराम व परमात्मा बनने के उपाय

त्यक्त्वैवं बहिरात्मानमन्मरात्मव्यवस्थितः।
भावयेत्परमात्मानं सर्वसंकल्प वर्जितम्।(तः)।।(27)।।स.तं.

पद्य भावानुवाद-(चालः आत्मशक्ति...)

बहिरात्मा को त्यागकर अन्तरात्मा बनना चाहिये व्यवस्थित।
सर्व संकल्प-विकल्प त्यागकर परमात्मा बनने की भावना करो।। (1)

समीक्षा-

बहिरात्मा है अत्यन्त हेय इसे त्यागना है पूर्ण यत्नपूर्वक।
अन्तरात्मा बनकर परमात्मा बनने हेतु त्यागकर सभी संकल्प-विकल्प।। (2)
ख्याति पूजा लाभ व प्रसिद्धि हेतु भी नहीं करणीय संकल्प-विकल्प।
संकल्प-विकल्प से संक्लेश होता, जिससे परमात्मा प्राप्ति होती दूर।। (3)
निर्विकल्प व निर्विकार होने से, आत्मा की शुद्धि में होती वृद्धि।
आत्मिक शुद्धि की वृद्धि होने से, आत्मिक शक्ति की भी होती वृद्धि।। (4)
इससे ही अन्तरात्मा विकास करता हुआ, अन्त में बनता है परमात्मा।
यह ही है गुणस्थान की वृद्धि, जिससे साधु बनते अरिहंत शुद्धात्मा।। (5)

साधु परमेष्ठी का स्वरूप

दंसणणाणसमग्गंमग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं।
साधयदि णिच्चसुद्धं साहू सो मुणी णमो तस्स।।(54) द्र.सं.

That sage who practises well conduct which is always pure and which is the path of liberation with perfect faith and knowledge is a Sadhu. Obeisance to him.

जो दर्शन और ज्ञान से पूर्ण, मोक्ष का मार्गभूत और सदा शुद्ध ऐसे चारित्र को प्रकट रूप से साधते है, वे मुनि साधु परमेष्ठी हैं उनके अर्थ मेरा नमस्कार हो।

सीय-गय-वसह-मिय-पसु-मारुद-सूरवहि-मंदरिदु-मणी।
खिदी-उरगम्बर-सरिसा परम-पय-विमग्गया साहू। (33)
सकल कर्म भूमीषूत्पन्नेभ्यस्यिकालगोचरेभ्यःसाधुभ्यो नमः। धवला पृ.5

'णमो लोए सव्वसाहूणं' लोक अर्थात् ढ़ाई द्वीपवर्ती सर्व साधुओं को नमस्कार हो। जो अनंत ज्ञानादि रूप शुद्ध आत्मा के स्वरूप की साधना करते हैं उन्हें साधु कहते हैं। जो पाँच महाव्रतों को धारण करते हैं, तीन गुप्तियों से सुरक्षित है, अठारह हजार शील के भेदों को धारण करते हैं और चौरासी लाख उत्तर गुणों का पालन करते हैं वे साधु परमेष्ठी होते हैं।

सिंह के समान पराक्रमी, गज के समान स्वाभिमानी या उन्नत, बैल के समान भद्र प्रकृति, मृग के समान सरल, पशु के समान निरीह, गोचरी वृत्ति करने वाले, पवन के समान निःसंग या सब जगह बिना रुकावट के विचरने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी या सकल तत्त्वों के प्रकाशक, उदधि अर्थात् सागर के समान गंभीर, मन्दराचल अर्थात् सुमेरु पर्वत के समान परीषह और उपसर्गों के आने पर अकम्प और अडोल रहने वाले, चंद्रमा के समान शांतिदायक, मणि के समान प्रभापुंज युक्त, क्षिति के समान सर्व प्रकार की बाधाओं को सहने वाले, उरग अर्थात् सर्प के समान दूसरे के बनाये हुए अनियत आश्रय वसति आदि में निवास करने वाले, अम्बर अर्थात् आकाश के समान निरावलम्बी या निर्लेप और सदाकाल परमपद अर्थात् मोक्ष का अन्वेषण करने वाले साधु परमेष्ठी होते हैं।

ध्येय, ध्याता, ध्यानादि का स्वरूप

जं किंचिवि चिंतंतो णिरीहवित्ती हवे जदा साहू।
लद्धूणय एयत्तं तदाहु तं तस्स णिच्छयंज्झाणं।।(55)

When a Sadhu attaining concentration becomes void of conscious effort by meditating of anything whatever, that state is called real meditation.

ध्येय पदार्थ में एकाग्रचित होकर जिस किसी पदार्थ को ध्यावता हुआ साधु जब निस्पृह वृत्ति सब प्रकार की इच्छाओं से रहित होता है उस समय उसका ध्यान निश्चय ध्यान होता है ऐसा आचार्य कहते हैं।

'तदा' उस काल में। 'आहू' कहते हैं। 'तं तस्स णिच्छयं ज्झाणं' उसको, उसका निश्चय ध्यान (कहते हैं)। जब क्या होता है ''णिरीहवित्ती हवे जदा साहु'' 'जब निस्पृह वृत्तिवाला साधु ध्याता होता है। क्या करता है'? 'ज किंचिव चिंतंतो' जिस किसी ध्येयवस्तु स्वरूप का विशेष चिंतवन करता है। पहिले क्या करके? 'लद्धूण य एयत्तं' उस ध्येय में प्राप्त होकर (ध्येय पदार्थ में एकाग्र चिंता का निरोध करके यानि एकचित्त होकर जिस किसी ध्येय वस्तु का चिंतवन करता हुआ साधु जब निस्पृहवृत्ति वाला होता है, उस समय साधु के उस ध्यान को निश्चयध्यान कहते हैं। विस्तार में वर्णन-गाथा में 'यत् किंचित् ध्येयम्' (जिस किसी भी ध्येय पदार्थ को) इस पद में क्या कहा है? प्रारंभिक अवस्था की अपेक्षा से जो सविकल्प अवस्था है, उसमें विषय और कषायों को दूर करने के लिए तथा चित्त को स्थिर करने के लिए पञ्चपरमेष्ठी आदि परद्रव्य भी ध्येय होते हैं। फिर जब अभ्यास से चित्त स्थिर हो जाता है तब शुद्ध-बुद्ध एकस्वभाव निज शुद्धात्मा का स्वरूप ही ध्येय होता है। 'निस्पृह' शब्द से मिथ्यात्व, तीनों-वेद, हास्य, रति अरिति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया और लोभ इन चौदह अंतरंग परिग्रहोड्ढ से रहित तथा क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, दासी, दास, कुप्य और भाडं नामक दस बहिरंग परिग्रहों से रहित, ध्यान करने योग्य पदार्थों में स्थिरता और निश्चलता को ध्यान का लक्षण कहा है। 'निश्चय' शब्द से अभ्यास प्रारंभ करने वाले की अपेक्षा व्यवहाररत्नत्रय के अनुकूल निश्चय ग्रहण करना चाहिये और ध्यान में निष्पन्न पुरुष की अपेक्षा शुद्धोपयोग रूप विवक्षित शुद्धनिश्चय ग्रहण करना चाहिये। विशेष निश्चय आगे कहा जाने वाला है।

परमध्यान के कारण

मा चिट्ठह मा जंपह मा चिन्तह किंवि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे ज्झाणं।।56

Do not act, do not talk, do not think, so that the soul may be attached to and fixed in itself. This only is excellent meditation.

हे ज्ञानीजनों! तुम कुछ भी चेष्टा मत करो अर्थात् काय के व्यापार को मत करो, कुछ भी मत बोलो और कुछ भी मत विचारो। जिससे कि तुम्हारी आत्मा अपनी आत्मा में तल्लीन स्थिर होवे, क्योंकि जो आत्मा में तल्लीन होता है वहीं परम ध्यान है।

जिस प्रकार स्थिर जल में बड़ा पत्थर डालने पर जल अस्थिर होता है और छोटा पत्थर डालने पर भी जल अस्थिर होता है भले अस्थिरता में अंतर हो उसी प्रकार किसी भी प्रकार के संकल्प विकल्प, चिंतन, कथन, क्रियादि से आत्मा में अस्थिरता/कम्पन्न/चंचलता/क्षोभ हो जाता है। इसलिये श्रेष्ठ ध्यान के लिए समस्त संकल्पादि को त्याग करके आत्मा में ही पूर्ण निश्चल रूप में स्थिर होना चाहिये। अतः आचार्यश्री ने कहा है कि-

'मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किंवि' हे विवेकी पुरुषों! नित्य निरंजन और क्रिया रहित निज शुद्ध आत्मा के अनुभव को रोकने वाला शुभ-अशुभ चेष्टा रूप काय की क्रिया को तथा शुभ-अशुभ-अतंरग-बहिरंग रूप वचन को और शुभ-अशुभ विकल्प समूह रूप मन के व्यापार को कुछ भी मत करो।

'जेण होइ थिरो' जिन तीनों योगों को रोकने से स्थिर होता है। वह कौन? 'अप्पा' आत्मा। कैसे होकर स्थिर होता है? 'अप्पम्मि रओ' स्वाभाविक शुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभाव जो परमात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-आचरण रूप अभेद रत्नत्रयात्मक परम ध्यान के अनुभव से उत्पन्न, सर्व प्रदेशों को आनंददायक ऐसे सुख के अनुभव रूप परिणति सहित स्व-आत्मा में रत, तल्लीन, तच्चित्त तथा तन्मय होकर स्थिर होता है। 'इणमेव पर हवे ज्झाणं' यही जो आत्मा के सुख स्वरूप में तन्मयपना है, वह निश्चय से परम उत्कृष्ट ध्यान है।

उस परमध्यान में स्थित जीवों को जो वीतराग परमानंद सुख प्रतिभासित होता है वही निश्चय मोक्षमार्ग का स्वरूप है। वह अन्य पर्यायवाची नामों से क्या-क्या कहा जाता है, सो कहते हैं। वही शुद्ध आत्म स्वरूप है, वही परमात्मा का स्वरूप है, वही एक देश में प्रकटतारुप विवक्षित एक शुद्ध-निश्चय से निज-शुद्ध-आत्मानुभव से उत्पन्न सुख रूपी अमृत-जल के सरोवर में राग आदि मलों से रहित होने के कारण परमहंस स्वरूप है। परमात्मा ध्यान के भावना की नाममाला में इस एक देश व्यक्ति रूप शुद्ध नय के व्याख्यान को यथासंभव सब जगह लगा देना चाहिए। ये नाम एकदेश शुद्ध निश्चयनय से अपेक्षित है।

वही परब्रह्म स्वरूप है, वही परमविष्णुरूप है, वही परमशिवरूप है, वही परमबुद्धस्वरूप है, वही परमनिजस्वरूप है, वही परम निज-आत्मोपलब्धिरूप

सिद्धस्वरूप है, वही निरंजनस्वरूप है, वही शुद्धात्मदर्शन है, परम अवस्था स्वरूप है, वही परमात्मा-दर्शन है, वही ध्यान करने योग्य शुद्धपारिणामिक-भावरूप है, वही ध्यान भावनारूप है, वही शुद्ध चारित्र है, वही परम पवित्र है, वही अंतरंग तत्त्व है वही परम तत्त्व है, वही शुद्ध आत्म द्रव्य है, वही परम ज्योति है, वही शुद्ध निर्मल स्वरूप है, वही स्वसंवेदन ज्ञान है, वही परमतत्त्वज्ञान है, आत्मानुभूति है, वही आत्मा की प्रतीति है, वही आत्म-संविति आत्म संवेदन है, वही निज आत्मस्वरूप की प्राप्ति है, वही नित्य पदार्थ की प्राप्ति है, वही परम-समाधि है, वही परम-आनंद है, वही नित्य आनंद है, वही स्वभाविक आनंद है, वही सदानंद है, वही शुद्ध आत्म पदार्थ के अध्ययन रूप है, वही परम स्वाध्याय है, वही निश्चय मोक्ष का उपाय है, वही एकाग्र चिंता निरोध है, वही परमज्ञान है, वही शुद्ध उपयोग है, वही परम-योग समाधि है, वही भूतार्थ है, वही परमार्थ है, वही निश्चय ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप-वीर्यरूप निश्चय पंचाचार है, वही समयसार है, वह ही अध्यात्मसार है, वही समता आदि निश्चयषट्-आवश्यक स्वरूप है, वही अभेद रत्नत्रय स्वरूप है वही वीतराग सामायिक है, वही परमशरणरूप उत्तम मंगल है, वही केवल ज्ञानोत्पत्ति का कारण है, वही समस्त कर्मों के क्षय का कारण है, वही निश्चय दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, आराधना स्वरूप है, वही परमात्मा भावनारूप है, वही परम अद्वैत है, वही अमृतस्वरूप परमधर्मध्यान है, वही शुक्लध्यान है, वही राग आदि विकल्परहित ध्यान है, वही निष्कल ध्यान है, वही परम स्वास्थ्य है, वही परम वीतरागता है, वही परम-समता है, वही परम एकत्व है, वही परम भेदज्ञान है, वही परम समरसी भाव है, इत्यादि समस्त रागादि विकल्प-उपाधि रहित, परम आह्लाद एक-सुख लक्षणमयी ध्यान स्वरूप निश्चय मोक्षमार्ग को कहने वाले अन्य बहुत से पर्यायवाची नाम परमात्म तत्त्व ज्ञानियों के द्वारा जानने योग्य होते हैं।

ध्याता और ध्यान सामग्री

तवसुदवदवं चेदा ज्झाणरहधुरंधरो हवे जम्हा।
तम्हा तत्तियणिरदा तल्लद्धीए सदा होई।।(57)।।

As a soul which (practises) penance, (holds), vows and has knowledge of) scriptures, becomes capable of holding the axles of

the chariot of meditation, so to attain that (meditation) be always engaged in these three (i.e. penances, vows and sastras).

क्योंकि तप, श्रुत और व्रत का धारक जो आत्मा है वही ध्यानरूपी रथ की धुरा को धारण करने वाला होता है। इस कारण हे भव्यजनों! तुम उस ध्यान की प्राप्ति के अर्थ निरंतर तप, श्रुत और व्रत इन तीनों में तत्पर हो।

1. अनशन-उपवास करना, 2. अवमौदर्य-कम भोजन करना, 3. वृत्तिपरिसंख्यान-अटपटी आकड़ी करके भोजन करने जाना, 4. रस परित्याग-दूध, दही, घी, तेल, खांड व नमक, इन छहों रसों में से एक दो आदि का त्याग करना, 5. विविक्तशय्यासन-निर्जन और एकांत स्थल में शयन करना, रहना, बैठना, 6. कायक्लेश-आत्मशुद्धि के लिए आतापन योग आदि करना, यह छह प्रकार का बाह्य तप।

1. प्रायश्चित, 2. विनय, 3. वैयावृत्त, 4. स्वाध्याय, 5. व्युत्सर्ग (बाह्य अभ्यन्तर उपाधि का त्याग) और 6. ध्यान, यह छह प्रकार का अंतरंग तप, ऐसे बाह्य तथा आभ्यन्तररूप बारह प्रकार का व्यवहार रूप है। उसी व्यवहार तप से सिद्ध होने योग्य निज-शुद्ध-आत्म-स्वरूप में प्रतपन अर्थात् विजय करने रूप निश्चय तप है। इसी प्रकार आचार व आराधना आदि द्रव्यश्रुत है और उस द्रव्य-श्रुत के आधार से उत्पन्न विकार रहित निज-शुद्ध-संवेदनरूप ज्ञान, भावश्रुत है। तथा हिंसा, अनृत, स्तेय, चोरी, अब्रह्म-कुशील और परिग्रह, इनका द्रव्य व भावरूप से त्याग करना पाँच व्रत हैं। ऐसे पूर्वोक्त तप, श्रुत और व्रत से सहित पुरुष ध्याता-ध्यान करने वाला होता है। तप, श्रुत व व्रत ही ध्यान की सामग्री है। सो ही कहा है-

''वैराग्यं तत्त्वविज्ञानं नैर्ग्रन्थ्य समचित्ता।
परीषहजयश्चेति पञ्चैतै ध्यानहेतवः।।(1)''

तपस्तरलतीव्रार्चिप्रचये पातितः स्मरः।
यै रागरिपुभिः सार्द्ध पतङ्गप्रतिमीकृतः।।(8)।। ज्ञाना.

जिन मुनियों ने तपरूपी तीव्र अग्नि की ज्वाला के समूह में रागादि शत्रुओं के साथ काम को डाल दिया और पतंग के समान भस्म कर दिया।

निःसङ्गत्वं समासाद्य ज्ञानराज्यं समीप्सितम्।

जगत्त्रयचमत्कारि चित्रभूतं विचेष्टितम्।।(9)।।

जिन्होंने निष्परिग्रहपन को अंगीकार करके तीन जगत् में चमत्कार करने वाले तथा आश्चर्यरूप चेष्टावाले ज्ञानरूपी राज्य की वांछा की।

अत्युग्रतपसाऽऽत्मानं पिडयन्तोऽपि निर्दयम्।
जगद्विध्यापयन्त्युच्चैर्ये मोहदहनक्षतम्।।(10)।।

जो मुनि अपने आत्मा को अति तीव्र तप से निर्दयी के समान पीड़ा करते हैं, तो भी मोहरूपी अग्नि से जलते हुए जगत को अतिशयता के साथ बुझाते हैं अर्थात् शांत करते हें।

स्वभावजनिताराङ्कनिर्भरानन्दनन्दिताः।
तृष्णार्चिःशान्तये धन्या येऽकालजलदोद्गमाः।।(11)

जो धन्य मुनि तृष्णारूपी अग्नि की ज्वाला को शान्त करने के लिए अकाल में (ग्रीष्मकाल में) स्वभाव से उत्पन्न, दाहरहित, पूर्ण आनन्द से आनन्दरूप मेघ के उदय के समान हैं।

अशेषसंगसन्यासवंशाज्जितमनोद्विजाः।
विषयोद्दाममातङ्गघटासंघट्टघातकाः।।(12)।।

जो मुनि समस्त परिग्रह के त्याग के कारण मनरूप चंचल पक्षी को जीतने वाले हैं तथा विषयरूपी मदोन्मत्त हस्तियों के संघट्टके (समूह के) घातक हैं।

वाक्यपथातीतमाहात्म्या विश्वविद्याविशारदाः।
शरीराहारसंसारकामभोगेषु निःस्पृहाः।।(13)।।

जिनका वचन पथ से अगोचर माहात्म्य है, जो समस्त विद्याओं में विशारद हैं और शरीर-आहार-संसार-काम-भोगों में निःस्पृह (वांछा रहित) हैं।

विशुद्धबोधपीयुषपानपुण्यीकृताशयाः।
स्थिरेतरजगज्जन्तुकरुणावारिवार्द्धयः।।(14)।।

जिनका चित्त निर्मल ज्ञानरूप अमृत के पान से पवित्र है और जो स्थावर त्रस भेदयुक्त जगत् के जीवों के करुणारूपी जल के समुद्र हैं।

स्वर्णाचल इवाकम्पा ज्योतिःपथ इवामलाः।

समीर इव निःसङ्गा निर्ममत्वं समाश्रिताः।।(15)।।

जो मेरुपर्वत के समान अचल है, आकाशवत् निर्मल हैं, पवन के समान निःसंग हैं और निर्ममता को जिन्होंने आश्रय दिया है।

हितोपदेशर्जन्यैर्भव्यसारङ्गतर्पकाः।

निरपेक्षाः शरीरेऽपि सापेक्षाः सिद्धिसङ्गमे।।(16)।।

वे मुनि हितोपदेशरूप शब्दायमान मेघों से भव्य जीवरूपी चातक या मयूरों को तृप्त करने वाले हैं तथा शरीर में निरपेक्ष हैं, तो भी मुक्ति के संगम करने में सापेक्ष हैं।

इत्यादिपरमोदारपुण्याचरणलक्षिताः।

ध्यानसिद्धेः समाख्याताः पात्रं मुनिमहेश्वराः।।(17)।।

इत्यादिक परम उदार पवित्र आचरणों से चिह्नित, मुनियों में प्रधान, मुनीश्वर ध्यान की सिद्धि के पात्र कहे गये हैं।

तवारोढुं प्रवृत्तस्य मुक्तेर्भवनमुन्नतम्।

सोपानराजिकाऽमीषां पदच्छाया भविष्यति।।(18)।।

आचार्य महाराज कहते हैं कि हे आत्मन्! मुक्तिरूपी मंदिर पर चढ़ने की प्रवृत्ति करते हुए तुझे पूर्वोक्त प्रकार के मुनियों के चरणों की छाया ही सोपान की पंक्ति समान होवेगी।

भावार्थ : जिनको ध्यान की सिद्धि करनी हो, उन्हें ऐसे मुनियों की सेवा करनी चाहिये।

ध्यानसिद्धिर्मता सूत्रे मुनीनामेव केवलम्।

इत्याद्यमलविख्यातगुणलीलावलम्बिनाम्।।(19)।।

सूत्र में (सिद्धान्त में) उपर्युक्त गुणों को आदि लेकर निर्मल प्रसिद्ध गुणों में प्रवर्त्तनरूप क्रीड़ा के अवलम्बन करने वाले केवल मुनियों के ही ध्यान की सिद्धि मानी है। अर्थात् मुक्ति के कारणस्वरूप ध्यान की सिद्धि अन्य के नहीं हो सकती।

निष्पन्दीकृतचित्तचण्डविहगाः पञ्चाक्षकक्षान्तकाः।

ध्यानध्वस्तसमस्तकल्मषविषा विद्याम्बुधेः पारगाः।

लीलोन्मूलितकर्मकन्दनिचयाः कारुण्यपुण्याशया

योगीन्द्रा भवभीमदैत्यदलनाः कुर्वन्तु ते निर्वृतिम्।।(20)।।

अर्थ : पूर्वोक्त गुणों के धारक योगीन्द्र गण हमारे तथा भव्य पुरुषों के निवृत्ति (सुख) रूप मोक्ष को करो। कैसे हैं वे योगीन्द्र! निश्चलरूप किया है चित्तरूपी प्रचण्ड पक्षी जिन्होंने, पंचेन्द्रियरूप वन को दग्ध करने वाले हैं, ध्यान से समस्त पापों का नाश करने वाले हैं, विद्यारूप समुद्र के पारगामी हैं, क्रीड़ामात्र से कर्मों के मूल को उखाड़ने वाले हैं, करुणाभावरूप पुण्य से पवित्र चित्तवाले हैं और संसार रूप भयानक दैत्य को चूर्ण करने वाले हैं।

विन्ध्याद्रिर्नगरं गुहा वसतिकाः शय्या शिला पार्वती

दीपाश्चन्द्रकरा मृगाः सहचरा मैत्री कुलीनाङ्गना।

विज्ञानं सलिलं तपः सदशनं येषां प्रशान्तात्मनां।

धन्यास्ते भवपङ्कनिर्गमपथप्रोद्देशकाः सन्तु नः।।(21)।।

जिन प्रशान्तात्मा मुनि महाराजाओं के विन्ध्याचल पर्वत नगर है, पर्वत की गुफायें वसतिका (गृह) हैं, पर्वत की शिला शय्यासमान हैं, चन्द्रमा की किरणें दीपकवत् हैं, मृग सहचारी हैं, सर्वभूतमैत्री (दया) कुलीन स्त्री हैं, विज्ञान पीने का जल और तप उत्तम भोजन है, वे ही धन्य हैं। ऐसे मुनिराज हमको संसाररूप कर्दम से निकलने के मार्ग का उपदेश देने वाले हों।

रुद्धे प्राणप्रचारे वपुषि नियमिते संवृतेऽक्षप्रपञ्चे

नेत्रस्पन्दे निरस्ते प्रलयमुपगतेऽन्तर्विकल्पेन्द्रजाले।

भिन्ने मोहान्धकारे प्रसरति महसि क्वापि विश्वप्रदीपे

धन्यो ध्यानावलम्बी कलयति परमानन्दसिन्धुप्रवेशम्।।(22)।।

श्वासोच्छ्वास के रुकते हुए, शरीर के निश्चल होते हुए, इन्द्रियों के प्रचार का संवरण होते हुए, नेत्रों की चलन क्रिया के रहित होते हुए, समस्त विकल्परूप इन्द्रजाल का प्रलय होते हुए, मोहान्धकार के दूर होते हुए, और समस्त वस्तुओं को प्रकाश करने वाले तेजःपुंज को अपने हृदय में विस्तारते हुए जो धन्य मुनि ध्यानावलंबी होते हैं, वे ही परमानन्दरूपी समुद्र में प्रवेश करने का अभ्यास करते हैं।

अहेयोपादेयं त्रिभुवनमीदं व्यवसितः।

शुभं वा पापं वा द्वयमपि दहन्कर्म महसा।
निजानन्दास्वादव्यवधिविधुरीभूतविषयः।
प्रतीत्योच्चैः कश्चिद्विगलितविकल्पं विहरति।।(23)।।

अर्थ : अपने स्वाभाविक आनंद के स्वाद से दूर हैं इन्द्रियविषय जिसके, ऐसा कोई मुनि अपने तेज से शुभाशुभ कर्मों का दहन करता हुआ, भले प्रकार प्रतीतिगोचर करके इस अहेयोपादेयरूप त्रिभुवन में विकल्परहित भ्रमण करता है।

ध्यानस्थ हो तब तो निश्चल अवस्था है ही; परन्तु विहार करते हुए भी निश्चल के समान है अर्थात् जगत् में जिसके त्याग करने या ग्रहण करने योग्य कुछ भी नहीं है और विषयों की वाँछा नहीं है वही निर्विकल्परूप होकर कर्मों की निर्जरा करता हुआ विचरता है।

दुःप्रज्ञाबललुप्तवस्तुनिचया विज्ञानशून्याशयाः।
विद्यन्ते प्रतिमन्दिरं निजनिजस्वार्थोद्यता देहिनः।
आनन्दामृतसिन्धुशीकरचयैर्निर्वाप्य जन्मज्वरं
ये मुक्तर्वदनेन्दुवीक्षणपरास्ते सन्ति द्वित्री यदि।।(24)।।

बुद्धि के बल वस्तुसमूह को लोपने वाले (नास्तिक), सत्यार्थ ज्ञान से शून्य चित्तवाले तथा अपने विषयादिके प्रयोजन में उद्यमी ऐसे प्राणी तो घरघर में विद्यमान हैं, परन्तु आनन्दरूप अमृत के समुद्र के कणसमूह में संसाररूप ज्वर के दाह को (अग्नि को) बुझाकर मुक्तिरूपी स्त्री के मुखरूपी चन्द्रमा के विलोकन करने में जो तत्पर हैं, वे यदि हैं तो दो तीन ही होंगे।

यैः सुप्तं हिमशैलशृङ्गसुभगप्रासादगर्भान्तरे
पल्यङ्के परमोपध्यानरचिते दिव्याङ्गनाभिः सह।
तैरेवाद्य निरस्तविश्वविषयैरन्तः स्फुरज्योतिषि
क्षोणीरन्ध्रशिलादिकोटरगतैर्धन्यैर्निशा नीयते।।(25)।।

जिन्होंने पूर्वावस्था में हिमालय के शिखरसमान सुन्दर महलों में उत्कृष्ट उपधान हंसतुलिकादि से रची हुई शैय्या में सुन्दर स्त्रियों के साथ शयन किया था, वे ही समस्त संसार के विषयों के निरस्त करने वाले पुण्यशाली पुरुष अन्तरंग में ज्ञानज्योति के

स्फुरण होने से पृथ्वी में तथा पर्वतों की गुफाओं में एवं शिलाओं पर अथवा वृक्ष के कोटरों में प्राप्त होकर रात्रि बिताते हैं, उन्हें धन्य है।

चित्ते निश्चलतां गते प्रशमिते रागाद्यविद्यामये
विद्राणेऽक्षकदम्बके विघटिते ध्वान्ते भ्रमारम्भके।
आनन्दे प्रविजृम्भिते पुरपतेर्ज्ञाने समुन्मीलिते
त्वां द्रक्ष्यन्ति कदा वनस्थमभितः पुस्तेच्छया श्वापदाः।।(26)।।

हे आत्मन्! तेरे मन में निश्चलता होते हुए, रागादि अविद्यारूप रोगों में उपशमता होते हुए, इन्द्रियों के समूह के विषयों में नहीं प्रवर्तते हुए, भ्रमोत्पादन करने वाले अज्ञानांधकार के नष्ट होते हुए, और आनन्द को विस्तारते हुए आत्मज्ञान के प्रकट होने पर ऐसा कौनसा दिन होगा जब तुझे वन में चारों ओर से मृगादि पशु चित्रलिखित मूर्ति अथवा सूखे हुए वृक्ष के ठूंठ के समान देखेंगे। जिस समय तू ऐसी निश्चलमूर्ति में ध्यानस्थ होगा, उसी समय धन्य होगा।

आत्मन्यात्मप्रचारे कृतसकलबहिः संगसन्यासवीर्या-
दन्तर्ज्योतिःप्रकाशाद्विलयगतमहामोहनिद्रातिरेकः।
निर्णीते स्वस्यरूपे स्फुरति जगदिदं यस्य शून्यं जडं वा
तस्य श्रीबोधवार्धेर्दिशतु तय शिवं पादपङ्केरुहश्रीः।।(27)।।

अर्थ : जिसका आत्मा में अपना प्रवर्तन है, परद्रव्य में नहीं है और बाह्यपरिग्रह के त्याग से तथा अंतरंगविज्ञानज्योति के प्रकाश होने से जिसका महामोहरूप निद्रा का उत्कर्ष नष्ट हो गया है और जिसको स्वरूप का निश्चय होने से यह जगत् शून्यवत् वा जड़वत् प्रतिभासता है, ऐसे श्रीज्ञानसमुद्र मुनि के चरणकमल की लक्ष्मी (शोभा) तुम को मोक्षपद प्रदान करें, ऐसा आशीर्वादात्मक उपदेश है।

आत्मायत्तं विषयविरतं तत्त्वचिन्तायलीनं
निर्व्यापारं स्वहितनिरतं निर्वृतानन्दपूर्णं।
ज्ञानारूढं शमयमतपोध्यानलब्धावकाशं
कृत्वाऽऽत्मानं कलय सुमते दिव्यबोधाधिपत्यम्।।(28)।।

अर्थ : हे सुबुद्धि! अपने को प्रथम तो आत्मायत्त कहिये पराधीन से छुड़ा कर

स्वाधीन कर। दूसरे-इन्द्रियों के विषयों से विरक्त कर। तीसरे-तत्त्वचिन्ता में मग्न (लीन) कर। चौथे-सांसारिक व्यापार से रहित निश्चल कर। पाँचवें-अपने हित में लगा। छट्टे-निर्वृत अर्थात् क्षोभरहित आनन्द से परिपूर्ण कर। सातवें-ज्ञानारूढ़ कर। आठवें-शम यम दम तप में अवकाश मिलें ऐसा करके फिर दिव्यबोध कहिये केवलज्ञान के अधिपतिने को प्राप्त कर। **भावार्थ**- उपर्युक्त आठ कार्यों से केवलज्ञान की प्राप्ति होती है।।28।।

दृश्यन्ते भुवि किं न ते कृतधियः संख्याव्यतीताश्चिरम्।
ये लीलाः परमेष्ठिनः प्रतिदिनं तन्वन्ति वाग्भिः परम्।
तं साक्षादनुभूय नित्यपरमानन्दाम्बुराशिं पुन-
र्ये जन्मभ्रममुत्सृजन्ति पुरुषा धन्यास्तु ते दुर्लभाः।।(29)।।

इस पृथ्वी पर परमेष्ठी की नित्यप्रति केवल वचनों से बहुत कालपर्यन्त लीलास्तवन को विस्तृत करने वाले कृतबुद्धि क्या गणना से अतीत नहीं है? अपितु असंख्येय देखने में आते हैं। परन्तु नित्यपरमानन्दामृत की राशिरूप उस परमेष्ठी को साक्षात् अनुभवगोचर कर संसार के भ्रम को दूर करते हैं, ऐसे पुरुष दुर्लभ हैं और ऐसे ही पुरुष धन्य हैं।।29।।

इस प्रकार ध्यान करने वाले योगीश्वरों की प्रशंसा की गई। यद्यपि इस पंचम काल में ऐसे योगीश्वर देखने में नहीं आते, तो भी उनके गुणानुवाद सुन कर स्मरण करने से भव्यजीवों का मन पवित्र होता है, और अन्य कुलिंगियों की श्रद्धारूप मिथ्यात्व का नाश होता है।

रत्नत्रय को धार जो, शम दम यम चित्त देय।
ध्यान करैं मन रोकिकै, धन ते मुनि शिव लेंय।।(5)।।

थोस्सामि गुणधराणं, अणयाराणं गुणेहि तच्चेहिं।
अंजलिमउलियहत्थो, अभिवंदंतो सविभवेण।।(1)।। योगिभ.

अंजलि द्वारा दोनों हाथों को मुकुलित कर अपनी सामर्थ्य के अनुसार वंदना करता हुआ मैं गुणों के धारक अनगारों-योगियों-मुनियों की परमार्थभूत गुणों के द्वारा स्तुति करता हूँ।

सम्मं चेव य भावे, मिच्छाभावे तहेव बोद्धव्वा।
चइऊण मिच्छभावे, सम्मामि उवट्ठिदे वंदे।।(2)।।

मुनि दो प्रकार के जानना चाहिए-एक, समीचीन भावों से सम्पन्न, भावलिंगी और दो, मिथ्याभाव से सम्पन्न-द्रव्यलिंगी। इनमें मिथ्याभाव वाले-द्रव्यलिंग को छोड़कर समीचीन भाव वाले-भावलिंगी मुनियों की वंदना करता हूँ।

दोदोसविप्पमुक्के, तिदंडविरदे तिसल्लपरिशुद्धे।
तिण्णिमगारवरहिदे, तिरयणसुद्धे णमंसामि।।(3)।।

जो राग और द्वेष-इन दो दोषों से रहित हैं, जो मन वचन काय की प्रवृत्तिरूप तीन दंडों से विरत हैं, जो माया मिथ्या और निदान इन तीन शल्यों से अत्यन्त शुद्ध अर्थात् रहित हैं, जो ऋद्धिगारव रसगारव और सातगारव इन तीन गारवों से रहित हैं तथा तीन करण-मन वचन काय की प्रवृत्ति से शुद्ध हैं उन मुनियों को मैं नमस्कार करता हूँ।

चउविहकसायमहणे, चउगइसंसारगमणभयभीए।
पंचासवपडिविरदे, पंचिंदियणिज्जिदे वंदे।।(4)।।

जो चार प्रकार की कषायों का मनन करने वाले हैं, जो चतुर्गतिरूप संसार के गमनरूप भय से भीत हैं, जो मिथ्यात्व आदि पाँच प्रकार के आस्रव से विरत हैं और पंच इन्द्रियों को जिन्होंने जीत लिया है ऐसे मुनियों की मैं वंदना करता हूँ।

छज्जीवदयापण्णे, छडायदणविवज्जिदे समिदभावे।
सत्तभयविप्पमुक्के, सत्ताणभयंकरे वंदे।।।(5)।।

जो छह काय के जीवों पर दयालु हैं, जो छह अनायतनों (कुगुरु, कुदेव, कुधर्म और इनके सेवकों) से रहित हैं, जो शांत भावों को प्राप्त हैं, जो सात प्रकार (इह परलोक, अकस्मात्, वेदना, अत्राण, अगुप्ति और मरण) के भयों से मुक्त हैं तथा जो जीवों को अभय प्रदान करने वाले हैं ऐसे मुनियों को मैं नमस्कार करता हूँ।

णट्ठट्ठमयट्ठाणे, पणट्ठकम्मट्ठणट्ठसंसारे।
परमट्ठणिट्ठियट्ठे, अट्ठगुणड्ढीसरे वंदे।।(6)।।

जिन्होंने ज्ञान-पूजा-कुल-जाति-बल-ऋद्धि-तप और शरीर संबंधी आठ मदों

को नष्ट कर दिया है, जिन्होंनों ज्ञानावरणादि आठ कर्मों को तथा संसार को नष्ट कर दिया है, परमार्थ-मोक्ष प्राप्त करना ही जिनका ध्येय है और जो अणिमा महिमा और आठ गुणरूपी ऋद्धियों के स्वामी हैं उन मुनियों की मैं वंदना करता हूँ।

णव बंभचेरगुत्ते, णव णयसब्भावजाणवो वंदे।
दहविहधम्मट्ठाई, दससंजमसंजदे वंदे।।(7)।।

जो मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदना के भेद से नौ प्रकार के ब्रह्मचर्य से सुरक्षित है तथा जो नौ प्रकार (द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक तथा उनके नैगम-संग्रह आदि सात भेद इस तरह नौ) के नयों के सद्भाव को जानने वाले हैं ऐसे मुनियों की वंदना करता हूँ। इसी प्रकार जो उत्तम क्षमा आदि दश प्रकार के धर्मों में स्थित हैं तथा जो दश प्रकार (एकेन्द्रियादि पाँच प्रकार के रक्षा करना तथा स्पर्शनादि पाँच इन्द्रियों को वश करना इस तरह दस भेद वाले) संयम से सहित हैं उन मुनियों को मैं नमस्कार करता हूँ।

एयारसंगसुदसायरपारगे बारसंगसुदणिउणे।
बारसविहतवणिरदे, तेरसकिरियादरे वंदे।।(8)।।

जो ग्यारह अंगरूपी श्रुतसागर के पारगामी हैं, जो बारह अंगरूप श्रुत में निपुण हैं, जो बाहर प्रकार के तप में लीन हैं तथा जो तेरह प्रकार की क्रियाओं (पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्तियों) का आदर करने वाले हैं उन मुनियों की वंदना करता हूँ।

भृदेसु दयावण्णे, चउदस चउदससु गंथपरिसुद्धे।
चउदसपुव्वपगब्भे, चउदसमलवज्जिदे वंदे।।(9)।।

जो एकेन्द्रियादि चौदह जीवसमासरूप जीवों पर दया को प्राप्त हैं, जो मिथ्यात्व आदि चौदह प्रकार के अंतरंग परिग्रह से रहित होने के कारण अत्यन्त शुद्ध हैं, जो चौदह पूर्वों के पाठी हैं तथा जो चौदह मलों से रहित हैं ऐसे मुनियों को मैं नमस्कार करता हैं।

मैं ही मेरा सर्वस्व हूँ

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल : 1. कसमे वादे...2. क्या मिलिए...3. भातुकली...)

मैं ही मेरा सर्वस्व हूँ मैं ही मेरा कर्त्ता भोक्ता।
शुभ-अशुभ व पुण्य-पाप, सुख-दुःख से ले स्वर्ग-मोक्ष।।
इस हेतु भले बाह्य निमित्त होते, सचित-अचित्त-मिश्र भी।
देवशास्त्र गुरु व द्रव्यक्षेत्रकाल प्रमुख कारण मैं स्वयं ही।।(1)

जीव द्रव्य होने से मैं हूँ चैतन्यमय सत्य स्वरूप हूँ।
अतएव मैं सच्चिदानन्द हूँ स्वयंभू सनातन स्वयंपूर्ण हूँ।।
तथापि मैं स्व दोषों के कारण बना था अनादि से दीन-हीन।
चौरासी लक्ष्य योनि में भ्रमा हूँ, पाया हूँ अनन्त दुःख-ताप।।(2)

मेरे दोष है मेरे रागद्वेषमोह कामक्रोध मद ईर्ष्या तृष्णा।
अहंकार-ममकार संक्लेश द्वन्द्व पर परिणती में होना प्रवृत्त।।
मेरे उक्त दोषों को त्याग रहा हूँ नवकोटि से व दृढ़ता से।
स्व स्वभाव की परिणति हेतु परपरिणती त्याग कर रहा हूँ मैं।।(3)

इसी हेतु ही त्यागा बाह्य प्रपंच जो परावलम्बन अनात्मकाम।
धन-जन-मान-वर्चस्व प्रसिद्धि सामाजिक भौतिक द्वन्द्व के काम।।
एकान्त शान्त व मौन साधना निस्पृह निराडम्बर आत्माराधना।
ध्यान-अध्ययन व शोध बोध लेखन आत्मविश्लेषण से आत्मशुद्धि करना।।(4)

आत्महित युक्त परहित भी करना शुभ से ले शुद्ध भाव सोचना।
स्वशुद्ध अनन्त गुण गण चिन्तन-समस्त विभाव परिणती त्यागना।।
इससे प्राप्त अनुभवों के द्वारा उत्तरोत्तर स्वगुणों को बढ़ाना।
समता शान्ति आत्मविशुद्धि से 'कनक' स्ववैभव पूर्णतः पाना।।(5)

भीलूड़ा, दि. 26.3.2019 मध्याह्न 3.03

(यह कविता भारतीय आध्यात्मिक ग्रन्थ व विदेशी प्रेरक साहित्य व मेरे अनुभव-लक्ष्य व साधना के अनुसार बनी)

सन्दर्भः-

अस्मिन्नादिसंसारे दुरन्ते सारवर्जिते।

नरत्वमेव दुःप्राप्यं गुणापेतं शरीरिभिः।।(1)।। ज्ञाना.

दुरन्त तथा सारवर्जित इस अनादि संसार में गणसहित मनुष्यपन ही जीवों को दुष्प्राप्य है अर्थात् दुर्लभ है।

काकतालीयकन्यायेनोपलब्धं यदि त्वया।

तत्तर्हि सफलं कार्य कृत्यात्मन्यात्मनिश्चयम्।।(2)।।

हे आत्मन्! यदि तूने यह मनुष्यपना काकतालीय न्याय से पाया है, तो तुझे अपने में ही अपने को निश्चय करके अपना कर्त्तव्य सफल करना चाहिए। इस मनुष्य जन्म के सिवाय अन्य किसी जन्म में अपने स्वरूप का निश्चय नहीं होता, इस कारण यह उपदेश है।

नृजन्मनः फलं कैश्चित्पुरुषार्थः प्रकीर्त्तितः।

धर्मादिकप्रभेदेन स पुनः स्याच्चतुर्विधः।।(3)।।

अनेक विद्वानों ने इस मनुष्य जन्म का फल पुरुषार्थ करना ही कहा है। और वह पुरुषार्थ धर्मादिक भेद से चार प्रकार का है।

धर्माश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चेति महर्षिभिः।

पुरुषार्थोऽयमुद्दिष्टश्चतुर्भेदः पुरातनैः।।(4)।।

अर्थ : प्राचीन महर्षियों ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यह चार प्रकार का पुरुषार्थ कहा है।

त्रिवर्ग तत्र सापायं जन्मजातङ्कदूषितम्।

ज्ञात्वा तत्त्वविदः साक्षाद्यतन्ते मोक्षसाधने।।(5)।।

अर्थ : इन चारों पुरुषार्थों में से पहले के तीन पुरुषार्थ नाशसहित और संसार के रोगों से दूषित हैं, ऐसा जानकर तत्त्वों के जानने वाले ज्ञानी पुरुष अन्त के परम पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष के साधन करने में ही यत्न करते हैं, क्योंकि मोक्ष नाशरहित अविनाशी हैं।

अब मोक्ष का स्वरूप

निःशेषकर्मसम्बन्धपरिविध्वंसलक्षणः।

जन्मनः प्रतिपक्षो यः स मोक्षः परिकीर्तितः।।(6)।।

अर्थ : जो प्रकृति, प्रदेश, स्थिति तथा अनुभागरूप समस्त कर्मों के सम्बन्ध के सर्वथा नाशरूप लक्षणवाला तथा संसार का प्रतिपक्षी है, वही मोक्ष है। यह व्यतिरेक्त प्रधानता से मोक्ष का स्वरूप है।

दृग्वीर्यादिगुणोपेतं जन्मक्लेशैः परिच्युतम्।

चिदानन्दमयं साक्षान्मोक्षमात्यन्तिकं विदुः।।(7)।।

दर्शन और वीर्यादि गुणसहित और संसार के क्लेशों से रहित, चिदानन्दमयी आत्यन्तिक अवस्था को साक्षात् मोक्ष कहते हैं। यह अन्वय प्रधानता से मोक्ष का स्वरूप कहा है।

सुख की प्रधानता से मोक्ष का स्वरूप

अत्यक्षं विषयातीतं निरौपम्यं स्वभावजम्।

अविच्छिन्नं सुखं यत्र स मोक्षः परिपट्यते।।(8)।।

जिसमें अतीन्द्रिय (इन्द्रियों से अतिक्रान्त), विषयों से अतीत, उपमारहित, और स्वाभाविक (अपने स्वभाव से ही उत्पन्न हो ऐसा) विच्छेदरहित पारमार्थिक सुख हो, वही मोक्ष कहा जाता है।

निर्मलो निष्कलः शान्तो निष्पन्नोऽत्यन्तनिर्वृतः।

कृतार्थः साधुबोधात्मा यत्रात्मा तत्पदं शिवम्।।(9)।।

जिसमें यह आत्मा निर्मल (द्रव्यकर्म-नोकर्मरहित), शरीररहित, क्षोभ रहित, शान्तस्वरूप निष्पन्न (सिद्धरूप), अत्यन्त अविनाशी, सुखरूप, कृतकृत्य (जिसको कुछ करना बाकी न हो ऐसा) तथा समीचीन सम्यग्ज्ञानस्वरूप हो जाता है, उस पदकों (अवस्था को) शिव अर्थात् मोक्ष कहते हैं।

तस्यानन्तप्रभावस्य कृते त्यक्त्वाखिलभ्रमाः।

तपश्चरन्त्यमी धीराः बन्धविध्वंसकारणम्।।(10)।।

धीरवीर पुरुष इस अनन्त प्रभाववाले मोक्षरूपी कार्य के निमित्त समस्त प्रकार के भ्रमों को छोड़कर कर्मबंध के नष्ट करने के कारण रूप तप को अंगीकार करते हैं।

सांसारिक समस्त कार्य छोड़कर मुनिपद धारण करते हैं।

सम्यग्ज्ञानादिकं प्राहुर्जिना मुक्तेर्निबन्धनम्।

तेनैव साध्यते सिद्धिर्यस्मात्तदर्थिभिः स्फुटम्।।(11)।।

जिनेन्द्र भगवान् सर्वज्ञ हैं, वे सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र को मुक्ति का कारण कहते हैं, अतएव जो मुक्ति की इच्छा करते हैं वे इन सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से ही मोक्ष को प्रगटतया साधते हैं।

भावार्थ : जिस कार्य का जो कारण होता है, उसको अंगीकार करने से ही वह कार्य सिद्ध होता है।

अब कहते हैं कि मोक्ष के साधन जो सम्यग्दर्शनादिक हैं, उनमें ही ध्यान गर्भित है इसका कारण प्रगट करके ध्यान का उपदेश देते हैं।

भवक्लेशविनाशाय पिब ज्ञानसुधारसम्।

कुरु जन्माब्धिमत्येतुं ध्यानपोतावलम्बनम्।।(12)।।

हे आत्मन्! तू संसार के दुःखविनाशार्थ ज्ञानरूपी सुधारस को पी और संसार रूप समुद्र के पार होने के लिए ध्यानरूपी जहाज का अवलम्बन कर।

भावार्थ : एकता का होना ध्यान है; अतः जब प्रथम ही ज्ञान को अंगीकार करेगा तब उससे एकाग्रता होने पर कर्मों को काटकर संसार का परित्याग करके मोक्ष पावेगा।

मोक्षः कर्मक्षयादेव स सम्यग्ज्ञानतः स्मृतः।

ध्यानसाध्यं मतं तद्धि तस्मात्तद्धितमात्मनः।।(13)।।

मोक्ष कर्मों के क्षय से ही होता है। कर्मों का क्षय सम्यग्ज्ञान से होता है और वह सम्यग्ज्ञान ध्यान से सिद्ध होता है अर्थात् ध्यान से ज्ञान की एकाग्रता होती है, इस कारण ध्यान ही आत्मा का हित है।

अपास्य कल्पनाजालं मुनिभिर्मिक्तुमिच्छुभिः।

प्रशमैकपरैर्नित्यं ध्यानमेवावलम्बितम्।।(14)।।

आत्मा का हित ध्यान ही है। इस कारण जो कर्मों से मुक्त होने के इच्छुक मुनि हैं, उन्होंने प्रथम कषायों की मन्दता के लिये तत्पर होकर कल्पना-समूहों का नाश करके नित्य ध्यान का ही अवलम्बन किया है।

जब तक मुनि के चित्त की स्थिरता रहे, तब तक ध्यान करना ही प्रधान है। जब चित्त की स्थिरता नहीं रहती, तब वे शास्त्रविचारादि अन्य क्रियाओं में लगते हैं।

ध्यानप्रधान की योग्यता का उपदेश

मोहं त्यज भज स्वास्थ्यं मुञ्च सङ्गान् स्थिरीभव।

यतस्ते ध्यानसामग्री सविकल्पा निगद्यते।।(15)।।

हे आत्मन्! तू संसार के मोह को छोड़, स्वास्थ्य को भज और परिग्रहों को छोड़कर स्थिरीभूत हो। जिससे कि हम तेरे लिए ध्यान की सामग्री भेदों सहित कहें।

उत्तितीर्षुर्महापङ्काजन्मसंज्ञाद्दुरुत्तरात्।

यदि किं न तदा धत्से धैर्य ध्याने निरन्तरम्।।(16)।।

हे आत्मन्! यदि तू कष्ट से पार पाने योग्य संसार नामक महा पंक (कीचड़) से निकलने की इच्छा रखता है, तो ध्यान में निरन्तर धैर्य क्यों नहीं धारण करता है।

भावार्थ : ध्यान में धैर्यावलम्बन कर, क्योंकि संसाररूपी कर्दम से पार होने का कारण एक मात्र यही है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।

चित्ते तव विवेकश्रीर्यद्यशंङ्का स्थिरीभवेत्।

कीर्त्यते ते तदा ध्यानलक्षणं स्वान्तशुद्धिदम्।।(17)।।

हे भव्य! यदि तेरे चित्त में निशङ्क विवेकरूप लक्ष्मी (सन्देहरहित) स्थिर होवे, तो तेरे मन को शुद्धता देने वाले ध्यान का लक्षण हम कहते हैं।

भावार्थ : जब चित्त को संदेहरहित स्थिर करके सुने, तब कहे हुए वचन का ग्रहण होता है अथवा उनकी प्रतीति होती है, इस कारण ऐसा कहा गया है।

इयं मोहमहानिद्रा जगत्त्रयविसर्पिणी।

यदि क्षीण तदा क्षिप्रं पिब ध्यानसुधारसम्।।(18)।।

हे भव्य! तीन जगत् में फैलने वाली यह अज्ञानरूपी महानिद्रा यदि तेरे क्षीण हो गई हो-नष्ट हो गई हो, तो तू ध्यानरूपी अमृतरस का तुरंत पान कर। क्योंकि सुषुप्त अवस्था में पीना नहीं हो सकता।

बाह्यान्तर्भूतानिःशेषसङ्गमूर्च्छा क्षयं गता।

यदि तत्त्वोपदेशेन ध्याने चेतस्तदार्पय।।(19)।।

हे भव्य! यदि तेरे तत्त्वों के उपदेश से बाह्य और आभ्यन्तर की समस्त मूर्च्छा (ममत्व परिणाम) नष्ट हो गई हो, तो तू अपने चित्त को ध्यान में ही लगा। **भावार्थ** : परिग्रह का ममत्व रहने से ध्यान में चित्त नहीं लग सकता, इस कारण ऐसा उपदेश किया गया है।

प्रमादविषयग्राहदन्तयन्त्राद्यदि च्युतः।
त्वं तदा क्लेशसङ्घातघातकं ध्यानमाश्रय।।(20)।।

अर्थ : हे भव्य! यदि तू प्रमाद और इन्द्रियों के विषयरूपी पिशाच अथवा जलजन्तुओं के दांत रूपी यन्त्र से छूट गया है, तो क्लेशों के समूह को घात तथा नष्ट करने वाले ध्यान का आश्रय कर।

भावार्थ : जब तक प्रमाद और इन्द्रियों के विषयों में चित्त की प्रवृत्ति रहती है, तब तक कोई ध्यान में नहीं लग सकता, इस कारण ऐसा उपदेश है।

इमेऽनन्तभ्रमासारप्रसरैकपरायणाः।
यदि रागादयः क्षीणस्तदा ध्यातुं विचेष्टयताम्।।(21)।।

हे भव्य! अनन्त भ्रमरूप निरन्तर वृष्टि के विस्तार करने में तत्पर ऐसे ये रागद्वेष मोहादिक भाव तेरे क्षीण हो रहे हो, तो तुझे ध्यान की चेष्टा करनी चाहिए, क्योंकि रागादिक का विस्तार रहते ध्यान में प्रवर्त्तना नहीं हो सकती।

यदि संवेगनिर्विदविवकैर्वासितं मनः।
तदा धीर स्थिरीभूय स्वस्मिन् स्वान्तं निरूपय।।(22)।।

हे धीर पुरुष! यदि संवेग अर्थात् मोक्ष वा मोक्षमार्ग से अनुराग तथा निर्वेद अर्थात् संसारदेह भोगों से वैराग्य और विवेक अर्थात् स्वपर का भेदविज्ञान इससे तेरा मन वासित है, तो तू स्थिर होकर आप में ही अपने मन को देख कि कैसा हैं?

भावार्थ : संवेग, निर्वेद और भेदविज्ञान के बिना चित्त वृत्ति पर में ही रहती है, अपने स्वरूप की ओर नहीं आती है।

विरज्य कामभोगेषु विमुच्य वपुषि स्पृहाम्।
निर्ममत्वं यदि प्राप्तस्तदा ध्यातासि नान्यथा।।(23)।।

हे भव्यः! यदि तू कामभोगों से विरक्त होकर तथा शरीर में स्पृहा को छोड़कर निर्ममता को प्राप्त हुआ है, तो ध्यान करने वाला ध्याता हो सकता है, अन्यथा नहीं हो

सकता, क्योंकि भोगों की इच्छा या भोग-विलास करने में जब चित्त रहता है, तब ध्यान में चित्त कैसे लगे? इस कारण ध्याता को ध्यान करने का पात्र बनाने से ध्यान हो सकता है।

निर्विण्णोऽसि यदा भ्रातर्दुरन्ताज्जन्मसंक्रमात्।
तदा धीर परां ध्यानधुरां धैर्येण धारय।।(24)।।

हे धीर पुरुष! यदि तू दुरन्त संसार के भ्रमण से विरक्त है, तो उत्कृष्ट ध्यान की धुराको धारण कर। क्योंकि संसार से विरक्त हुए विना ध्यान में नहीं ठहरता।

पुनात्याकर्णितं चेतो दत्ते शिवमनुष्ठितम्।
ध्यानतन्त्रमिदं धीर धन्ययोगीन्द्रगोचरम्।।(25)।।

हे धीर पुरुष! यह ध्यान का तंत्र (शास्त्र) सुननेसे चित्तको पवित्र करता है, तीव्र रागादिकका अभाव करके चित्तको विशुद्ध करता है तथा आचरण किया हुआ शिव अर्थात् मोक्ष को देता है। योगीश्वरों का जाना हुआ है, इस कारण इसको तू आस्वाद, धार वा सुन और ध्यानका आचरण कर।

विस्तरेणैव तुष्यन्ति केऽप्यहो विस्तरप्रियाः।
संक्षेपरुचयश्चान्ये विचित्राश्चित्तवृत्तयः।।(26)।।

अनेक पुरुष तो विस्तार से ही प्रसन्न होते हैं और अनेक संक्षेपसे रुचि रखनेवाले होते हैं। आश्चर्य है कि, चित्तकी वृत्तियाँ भी विचित्र अर्थात् अनेक प्रकार की होती हैं।

भावार्थ-जैसे वक्ता और श्रोता होते हैं, वैसा ही कहना और सुनना होता है, अतएव प्रथम ही प्रकरण में संक्षिप्त रुचिवाले श्रोताओं के लिए ध्यान का संक्षिप्त स्वरूप कहते हैं।

संक्षेपरुचिभिः सूत्रात्तन्निरूप्यात्मनिश्चयात्।
त्रिधैवाभिमतं कैश्चिद्यतो जीवशयस्त्रिधा।।(27)।।

आत्मा का है निश्चय जिसमें ऐसे सूत्र से निरूपण करके कितने ही संक्षेप रुचिवालों ने तीन प्रकार का ही ध्यान माना है। क्योंकि जीवका आशय तीन प्रकारका ही है अर्थात् अध्यात्मशास्त्र अपेक्षा आत्मा के उपयोग की प्रवृत्ति संक्षेप से तीन प्रकार की मानी गई है।

उन तीन प्रकार के आशयों का व्याख्यान करते हैं-

तत्र पुण्याशयः पूर्वस्तद्विपक्षोऽशुभाशयः।

शुद्धोपयोगसंज्ञो यः स तृतीयः प्रकीर्त्तितः।।(28)।।

उन तीनों में प्रथम पुण्यरूप शुभ आशय है और उसका विपक्षी दूसरा पापरूप अशुभ आशय और तीसरा शुद्धोपयोगनामा आशय है।

पुण्याशयवशाज्ज्ञातं शुद्धलेश्यावलम्बनात्।

चिन्तनाद्वस्तुतत्त्वस्य प्रशस्तं ध्यानमुच्यते।।(29)।।

पुण्यरूप आशय के वश के तथा लेश्या के अवलंबन से और वस्तु के यथार्थस्वरूप के चिंतवन उत्पन्न हुआ ध्यान प्रशस्त कहाता है।

पापाशयवशान्मोहान्मिथ्यात्वाद्वस्तुविभ्रमात्।

कषायाज्जायतेऽजस्रमयद्ध्यानं शरीरिणाम्।।(30)।।

जीवोंके पापरूप आशय के वश से तथा मोह-मिथ्यात्व-कषाय और तत्वोंके अयथार्थरूप विभ्रम से अप्रशस्त अर्थात् असमीचीन ध्यान होता है।

क्षीणे रागादिसन्ताने प्रसन्ने चान्तरात्मनि।

यः स्वरूपोलम्भः स्यात्स शुद्धाख्यः प्रकीर्तितः।।(31)।।

रागादिककी सन्तान के क्षीण होने पर अन्तरंग आत्मा के प्रसन्न होने से जो अपने स्वरूप का उपलंभन अर्थात् प्राप्ति होती है, वह शुद्ध ध्यान है।

शुभध्यानफलोद्भूतां श्रियं त्रिदशसंभवाम्।

निर्विशन्ति नरा नाके क्रमाद्यान्ति परं पदम्।।(32)।।

मनुष्य शुभध्यान के फल से उत्पन्न हुई स्वर्ग में भोगते हैं और क्रम से मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

दुर्ध्यानादुर्गतेर्बीजं जायते कर्म देहिनाम्।

क्षीयते यन्न कष्टेन महतापि कथञ्चन।।(33)।।

दुर्ध्यानसे जीवों की दुर्गतिका कारणभूत अशुभ कर्म होता है, जो कि बड़े कष्टसे भी कभी क्षय नहीं होता।

निःशेषक्लेशनिर्मुक्तं स्वभावजमनश्वरम्।

फलं शुद्धोपयोगस्य ज्ञानराज्यं शरीरिणाम्।।(34)।।

जीवों के शुद्धोपयोग का फल समस्त दुःखों से रहित, स्वभाव से उत्पन्न, और अविनाशी ज्ञानरूपी राज्य का पाना है।

भावार्थ-शुद्धोपयोग से जीवों को केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है।

स्व-आत्मवैभव प्रति मेरा गौरव (स्वाभिमान)

(मैं ''स्वाभिमान'' से 'सोऽहं' व 'अहं' भावी बनूँ)

(रागी द्वेषी मोही आत्मगौरव रहित व अष्टमद (घमण्ड) करते)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः-छोटी छोटी गैया...)

गौरव करूँ मैं आत्मवैभव का मेरा वैभव है चिदानन्द।
अनन्तज्ञानदर्शन सुखवीर्यादि, जो रागी द्वेषी मोही से अज्ञात।।
रागी द्वेषी मोही कामी क्रोधी स्वार्थी, आत्मवैभव को न जानते हैं।
अतएव वे आत्मगैरव से भिन्न, अष्टमद को ही करते हैं।। (1)
वे तन को ही ''मैं'' मानते भौतिक द्रव्य को ही ''मेरे'' मानते।
कर्मज कुल, जाति एश्वर्य, रूप, तप, बल, विद्या, धन में गर्व करते।।
मैं इन से परे स्वआत्म तत्व को ''मैं'' मानूँ न उसको ही 'मेरा' मानूँ।
आत्मिक गुणों को ही मेरे जानूँ उसे ही पाने हेतु पुरुषार्थ करूँ।। (2)
आत्मिक श्रद्धा-प्रज्ञा व चर्या से आत्मवैभव बढाऊँ व गौरव करूँ।
मनवचनकाय कृतकारित अनुमत से आत्मवैभव बढाऊँ व गौरव करूँ।।
इस हेतु अन्ध विश्वास रूढि परम्परा कट्टरता संकीर्णता भेदभाव त्यागूँ।
अपना-पराया शत्रु-मित्र धनी-गरीब छोटा बडा भेदभाव त्यागूँ।। (3)
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि वर्चस्व ईर्ष्या तृष्णा घृणा हीनता-दीनता त्यागूँ।
'अहंकार' 'ममकार' प्रतिस्पर्धा वैर विरोध-पर निन्दा अपमान हानि त्यागूँ।।
सव्वे सुद्धा हु सुद्धाणया दृष्टि से सभी जीवों को सिद्धसमान मानूँ।
अतः हर जीव को मेरे समान मानूँ किसी को छोटा बड़ा न मानूँ।। (4)
सभी को समान मानने के कारण हीनता दीनता अहंकार भाव असंभव।

मेरा वैभव सम सभी के वैभव है अतएव सन्तुलित मेरा वैभव।।
ऐसे मेरे सभी भाव व्यवहार कथन स्वआत्म गौरव से ओतप्रोत है।
इससे विपरीत रागीद्वेषीमोही के कर्मज वैभाविक फलादि से ओतप्रोत है।। (5)
ऐसा आत्मगौरव ही यथार्थ से स्वाभिमान व सम्यक् भाव है।
ऐसा गौरव होता आत्मविश्वासयुक्त आत्मज्ञान युक्त जीवों में है।।
स्वाभिमानी न करते कभी अयोग्य भाव व्यवहार कथन आदि।
जिससे वे स्वाभिमान से 'सोऽहं' ध्यान कर बनते 'अहंभावी'।। (6)
इससे विपरीत अहंकारी करते अयोग्य भाव व्यवहार कथन आदि।
जिससे उनका गर्व खर्व हो जाता पाते दुःख दैन्य अपमान आदि।।
अहंकारी करते दिखावा आडम्बर पर-निन्दा अपमान ईर्ष्या घृणा।
इससे परे 'कनक' स्वाभिमान से 'सोऽहं' ध्यान से बनूँ 'अहं' स्वरूप।। (7)

भीलूडा दि. 19.3.2019 रात्रि 8.56

सन्दर्भः-मानकषाय का वर्णन

कुलजातीश्वरत्वादिमदविध्वस्तबुद्धिभिः।
सद्यः संचीयते कर्म नीचैर्गतिनिबन्धनम्।।(48)।। ज्ञानार्णव

कुल, जाति, ऐश्वर्य, रूप, तप, बल, विद्या और धन इन आठ भेदोंसे जिनकी बुद्धि बिगड गई है अर्थात् मान करते हैं वे तत्काल नीच गति के कारण कर्म का संचय करते हैं। अर्थात् कोई ऐसा समझें कि मान करने से मैं ऊँचा कहलाऊँगा सो इस लोकमें मानी पुरुष ऊँचे तो नहीं होते किन्तु नीच गतिको प्राप्त होते हैं।

मानग्रन्थिर्मनस्युच्चैर्यावदास्ते दृढस्तदा।
तावद्विवेकमाणिक्यं प्राप्तमप्यपसर्पति।।(49)।।

हे मुने! जब तक तेरे मन में मान की गाँठ अतिशय दृढ है तब तक तेरा विवेकरूपी रत्न प्राप्त हुआ भी चला जायगा, क्योंकि मानकषाय के सामने हेय उपादेय ज्ञान नहीं रहता।

प्रोत्तुङ्गमानशैलग्रवर्तिभिर्लुप्तबुद्धिभिः।
क्रियते मार्गमुल्लंघ्य पूज्यपूजाव्यतिक्रम।।(50)।।

जो पुरुष अति ऊँचे मानपर्वत के अग्र भाग में (चोटी पर) रहते हैं वे

नष्टबुद्धि है; ऐसे मानी समीचीन मार्ग का उल्लंघन करके पूज्य पुरुषों की पूजा (प्रतिष्ठा) का लोप कर देते हैं।

भावार्थ-मानी पुरुष पूज्य पुरुषों को भी अपमान करने में शङ्कित नहीं होते।

लुप्यते मानतः पुंसां विवेकामललोचनम्।
प्रच्यवन्ते ततः शीघ्रं शीलशैलाग्रसंक्रमात्।।(51)।।

इस मानकषायसे पुरुषों के भेदज्ञानरूप निर्मल लोचन (नेत्र) लोप हो जाते हैं, जिससे शीघ्र ही शीलरूपी पर्वत के शिखर के संक्रम से (चलने से) डिग जाते हैं, अर्थात् शील से च्युत हो जाते हैं क्योंकि विवेक जब नहीं रहा तो शील कहाँ?

ज्ञानरत्नमपाकृत्य गृह्णत्यज्ञानपन्नगम्।
गुरुनपि जनो मानी विमानयति गर्वतः।।(52)।।

मानी पुरुष गर्व से अपने गुरु को भी अपमानित करता है सो मानो ज्ञानरूपी रत्न को दूर करके अज्ञानरूपी सर्प को ग्रहण करता है।

करोत्युद्धतधीर्मानाद्विनयाचारलंघनम्।
विराध्याराध्यसन्तानं स्वेच्छाचारेण वर्तते।।(53)।।

मान से उद्धतबुद्धि पुरुष गर्व से विनयाचार का उल्लंघन करता है और पूज्य गुरुओं की परिपाटी (पद्धति) को छोडकर स्वेच्छाचार से प्रवर्तने लग जाता है।

मानमालम्ब्य मूढात्मा विधत्ते कर्म निन्दितम्।
कलङ्कयति चाशेषचरणं चन्द्रनिर्मलम्।।(54)।।

इस मान का अवलम्बन कर मूढात्मा निंदित कार्य को करता है तथा चन्द्रमा के समान निर्मल अपने समस्त सदाचरणों को कलंकित करता है।

गुणरिक्तेन किं तेन मानेनार्थः प्रसिद्ध्यति।
तन्मन्ये मानिनां मानं यल्लोकद्वयशुद्धिदम्।।(55)।।

गुणरहित रीत मान से कौन से अर्थ की सिद्धि है? वास्तव में मानी पुरुषों का वही मान उचित कहा जा सकता है, जो इस लोक और परलोक की शुद्धि देनेवाला हो।

भावार्थ-यद्यपि मानकषाय दुर्गतिका कारण है, तथापि मान दो प्रकार के है,

एक तो प्रशस्तमान और एक अप्रशस्त मान। जिस मान के वशीभूत होकर नीच कार्यों को छोड़ ऊँचे कार्यों में प्रवृत्ति हो वह तो प्रशस्तमान है, और जिस मानसे नीच कार्यों में प्रवृत्ति हो और जो परको हानिकारक हो, वह अप्रशस्त मान है। कोई बड़ा विद्वान या सदाचारी का आदरसत्कार न करें, मनमें अपने धनके घमंड से उसे हलका समझें तो उसके पास कदापि विद्वानों वा व्रताधारियों को नहीं जाना चाहिये, क्योंकि उनके पास जाने से वा उनकी हाँमे हाँ मिलाने से उच्च ज्ञान और आचरण (धर्म) का अपमान होता है। यह विधान वा उदाहरण गृहस्थों के लिये है, मुनियों के लिये नहीं है।

अपमानकरं कर्म येन दूरान्निषिध्यते।

स उच्चैश्चैतसां मानः परः स्वपरघातकः।।(56)।।

जिससे अपमान करनेवाले कार्य दूरसे ही छोड दिया जाय वही उच्चाशयवालों का प्रशस्त मान है। इसके अतिरिक्त जो अन्य मान है, वे स्वपर के घातक अप्रशस्त हैं।

क्क मानो नाम संसारे जन्तुव्रजविडम्बके।

यत्र प्राणी नृपो भूत्वा विष्ठामध्ये कृमिर्भवेत्।।(57)।।

जीवमात्र की विडंबना करनेवाले इस संसार में मान नाम का पदार्थ है ही क्या? क्योंकि जिस संसार में राजा भी मरकर तत्काल विष्टा में कृमि आदि कीट हो जाता है, और प्रत्यक्ष में भी देखा जाता है कि जो आज राजगद्दी पर विराजमान है वही कल राज्यरहित होकर रंक हो जाता है।

अथ रूपे स्थिरीभूतचित्तः प्रक्षीणविभ्रमः।

अमूर्त्तमजमव्यक्तं ध्यातुं प्रक्रमते ततः।।(15)।।ज्ञानार्णव

इसके पश्चात् रूप में स्थिरीभूत है चित्त जिसका तथा नष्ट हो गये हैं विभ्रम जिसके ऐसा ध्यानी रूपातीत ध्यान में अमूर्त, अजन्मा, इन्द्रियों से अगोचर, ऐसे परमात्मा के ध्यान का प्रारम्भ करता है।

चिदानन्दमयं शुद्धममूर्त्तं परमाक्षरम्।

स्मरेद्यत्रात्मनात्मानं तद्रूपातीतमिष्यते।।(16)।।

जिस ध्यान में ध्यानी मुनि चिदानन्दमय, शुद्ध, अमूर्त्त, परमाक्षररूप आत्मा को आत्मा से ही स्मरण करे अर्थात् ध्यावे सो रूपातीत ध्यान माना गया है।

वदन्ति योगिनो ध्यानं चित्तमेवमनाकुलम्।

कथं शिवत्वमापन्नमात्मानं संस्मरेन्मुनिः।।(17)।।

योगीश्वर चित्त के आकुलतारहित होने अर्थात् क्षोभरहित होने को ही ध्यान कहते हैं; तो कोई मुनि मोक्ष प्राप्त आत्माका स्मरण कैसे करे?

भावार्थ-जब ध्येय और ध्यानी पृथक पृथक् हैं तो चित्त को क्षोभ अवश्य होगा। इसका समाधान इस प्रकार है-

विवेच्य तद्गुणग्रामं तत्स्वरूपं निरूप्य च।

अनन्यशरणो ज्ञानी तस्मिन्नेव लयं व्रजेत।।(18)।।

प्रथम तो उस परमात्मा के गुणसमूहों को पृथक् पृथक् विचारे और फिर उन गुणों के समुदायरूप परमात्मा को गुणगुणी के अभिन्न भाव से विचारे और फिर अन्य के शरण से रहित होकर ज्ञानी पुरुष उसी परमात्मा में लीन हो जावें।

भावार्थ-इस ध्यान में प्रथम तो गुण और गुणी का पृथक् रूप से विचार है, परन्तु अन्त में परमात्मा में लीन होने से ध्येय और ध्यानी पृथक्रूप नहीं रहेंगे।

तद्गुणग्रामसम्पूर्णं तत्स्वभावैकभावितः।

कृत्वात्मानं ततो ध्यानी योजयेत्परमात्मनि।।(19)।।

परमात्मा के स्वभाव से एकरूप भावित अर्थात् मिला हुआ ध्यानी मुनि उस परमात्मा के गुणसमूहों पूर्णरूप अपने आत्मा को करके फिर उसे परमात्मा में योजन करे, ऐसा विधान है।

द्वयोर्गुणैर्मतं साम्यं व्यक्तिशक्तिव्यपेक्षया।

विशुद्धेतरयोः स्वात्मतत्त्वयोः परमागमे।।(20)।।

परमागम में विशुद्ध अर्थात् कर्मरहित और उससे इतर अर्थात् कर्मसहित इन दोनों स्वात्मतत्त्वों में शक्ति और व्यक्ति की अपेक्षा से गुणों में समानता मानी है।

भावार्थ-जब शक्ति और व्यक्ति को भिन्न भिन्न मानते हैं तब तो कर्मरहित विशुद्ध आत्मा व्यक्तिरूप से परमात्मा है और कर्म सहित आत्मा शक्तिरूप से परमात्मा है; और यदि शक्ति को अभिन्न मानते हैं तो दोनों ही समान है।

शक्ति और व्यक्ति भिन्नाभिन्न मानने में अविरोध हेतु

यः प्रमाणनयैर्नूनं स्वतत्त्वमवबुद्ध्यते।

बुद्ध्यते परमात्मानं स योगी वीतविभ्रमः।।(21)।।

जो मुनि प्रमाण और नयों के द्वारा अपने आत्मतत्त्व को जानता है, वही योगी विना किसी सन्देह के परमात्मा को जानता है।

भावार्थ-जब तक प्रमाण और नयों का स्वरूप तथा इनके द्वारा आत्मा का स्वरूप न जाना जायेगा तब तक कर्मसहित ही आत्मा शक्ति की अपेक्षा से कर्मरहित है यह विरोध भी दूर न हो सकेगा। इन दोनों का विरोध दूर करनेवाला स्याद्वाद है; इसलिये स्याद्वाद्व को समझ कर फिर यदि इन दोनों का विचार करते हैं, तो कोई विरोध नहीं रहता और न भ्रम ही रहता है।

अब कर्मरहित परमात्मा का स्वरूप कहते हैं कि जिसके द्वारा यह योगी अपने आत्मा को रूपातीत ध्यान में चिंन्तवन करे-

व्योमाकारमनाकारं निष्पन्नं शान्तमच्युतम्।

चरमाङ्गात्कियल्ल्थूनं स्वप्रदेशैर्घनैः स्थितम्।।(22)।।

लोकाग्रशिखरासीनं शिवीभूतमनामयम्।

पुरुषाकारमापन्नमप्यमूर्त्तं च चिन्तयेत्।।(23)।।

आकाश के आकार अर्थात् अमूर्त, अनाकार अर्थात् पुद्गल के आकार से रहित, निष्पन्न अर्थात् फिर जिसमें किसी प्रकार की हीनाधिकता न हो, शान्त अर्थात् क्षोभ रहित, अच्युत अर्थात् जो अपने रूप से कभी च्यतु न हो, परम शरीर से किञ्चित् न्यून अर्थात् जिस शरीर से मोक्ष हुआ है, उस शरीर से नासिकादि रन्ध्र प्रदेशों से हीन, अपने घनीभूत प्रदेशों में स्थित तथा लोकाकाश के अग्रभाग में स्थित, शिवीभूत अर्थात् पहले अकल्याणरूप थे अब कल्याणरूप हुए ऐसे, अनामय अर्थात् रोगादिक से सर्वथा रहित और पुरुषाकार को प्राप्त होकर भी अमूर्त अर्थात् आकार तो पुरुष का है परन्तु तो भी उसमें रूप रस गंध स्पर्शादिक नहीं है ऐसे परमात्माका ध्यान इस रूपातीत ध्यान में करे।

निष्कलस्य विशुद्धस्य निष्पन्नस्य जगद्गुरोः।

चिदानन्दमयस्योचैः कथं स्यात्पुरुषाकृतिः।।(24)।।

जो परमात्मा निष्कल अर्थात् देहरहित है, विशुद्ध अर्थात् द्रव्यभावरूप दोनों

मलों से रहित है, निष्पन्न अर्थात् जिसमें कुछ हीनाधिकता होनेवाली नहीं है, जो जगत् का गुरु है और जो चिदानन्द स्वरूप अर्थात् चैतन्य और आनन्द स्वरूप है, महान् है, ऐसे परमात्माके पुरुषाकृति अर्थात् पुरुषका आकार कैसे हो सकते है? इसका समाधान-

विनिर्गतमधूच्छिष्टप्रतिमे मूषिकोदरे।

यादृग्गगनसंस्थानं तदाकारं स्मरेद्विभुम्।।(25)।।

जिससे मोम निकल गया है ऐसी मूषिका के उदर में जैसा आकाश का आकार है, तदाकार परमात्मा प्रभुका ध्यान करे। इसी का दूसरा दृष्टान्त कहते हैं-

सर्वावयवसम्पूर्णं सर्वलक्षणलक्षितम्।

विशुद्धादर्शसंक्रान्तप्रतिबिम्बसमप्रभम्।।(26)।।

समस्त अवयवों से पूर्ण और समस्त लक्षणों से लक्षित ऐसे निर्मल दर्पण में पडते हुए प्रतिबिम्ब के समान प्रभावाले परमात्मा का चिन्तवन करे।

भावार्थ-जैसे निर्मल दर्पण में पुरुष के समस्त अवयव और लक्षण दिखाई पड़ते है उसी तरह परमात्मा के प्रदेश शरीर के अवयवरूप परिणत हैं और उनमें समस्त लक्षणों की तरह समस्त गुण रहते हैं।

इत्सयौ सन्तताभ्यासवशात्संजातनिश्चयः।

अपि स्वप्राद्यवस्थासु तमेवाध्यक्षमीक्षते।।(27)।।

इस प्रकार जिसके निरन्तर अभ्यास के वश से निश्चय हो गया है ऐसा ध्यानी स्वप्नादिक अवस्था में उसी परमात्मा को प्रत्यक्ष देखता है।

भावार्थ-दृढ अभ्यास से स्वप्नादिक में भी परमात्मा ही दिखाई पड़ता है।

सोऽहं सकलवित्सार्वः सिद्धः साध्यो भवच्युतः।

परमात्मा परंज्योतिर्विश्वदर्शी निरञ्जनः।।(28)।।

तदासौ निश्चलोऽमूर्त्तो निष्कलङ्को जगद्गुरुः।

चिन्मात्रो विस्फुरत्युच्चैर्ध्यानध्यातृविवर्जितः।।(29)।।

पूर्वोक्त प्रकार से जब परमात्मा का निश्चय हो जाता है और दृढ अभ्यास उसका प्रत्यक्ष होने लगता है, उस समय परमात्मा का चिन्तवन इस प्रकार करे कि ऐसा परमात्मा मैं ही हूँ, मैं ही सर्वज्ञ हूँ, सर्वव्यापक हूँ, सिद्ध

हूँ, तथा मैं ही साध्य अर्थात् सिद्ध करने योग्य था; संसार से रहित, परमात्मा, परमज्योतिस्वरूप, समस्त विश्व का देखनेवाला मैं ही हूँ, मैं ही निरंजन हूँ। ऐसा परमात्मा का ध्यान करे; उस समय अपना स्वरूप निश्चल, अमूर्त्त अर्थात् शरीररहित, निष्कलङ्क, जगत् का गुरु चैतन्यमात्र और ध्यान तथा ध्याता के भेदरहित ऐसा अतिशय स्फुरायमान होता है।

पृथग्भावमतिक्रम्य तथैक्यं परमात्मनि।

प्राप्नोति स मुनिः साक्षाद्यथान्यत्वं न बुध्यते।।(30)।।

यह मुनि जिस समय पूर्वोक्त प्रकार से परमात्मा का ध्यान करता है उस समय परमात्मा में पृथक् भाव अर्थात् अलगपने का उल्लंघन करके साक्षात् एकता को इस तरह प्राप्त हो जाता है कि जिससे पृथक्पने का बिलकुल भान नहीं होता।

भावार्थ-उस समय ध्याता और ध्येय में द्वैतभाव नहीं रहता।

''निष्कलः परमात्माहं लोकालोकावभासकः।

विश्वव्यापी स्वभावस्थो विकारपरिवर्जितः।।(1)

निष्कल अर्थात् देहरहित, लोक और अलोक को देखने व जाननेवाला, विश्व में व्यापक, स्वभाव में स्थिर, समस्त विकारों से रहित ऐसा परमात्मा मैं हूँ ऐसा अन्य ग्रन्थों में भी अभेद भाव दिखाया है।

इतिविगतविकल्पं क्षीणरागादिदोषं विदितसकलवेद्यं त्यक्तविश्वप्रपञ्चम्।

शिवमजमनवद्यं विश्वलोकैकनाथं परमपुरुषचैर्भावशुद्ध्या भजस्व।।(31)

अर्थ-यहाँ आचार्य विशेष उपदेशरूप प्ररेणा करते हैं कि हे मुने, इस प्रकार जिसके समस्त विकल्प दूर हो गये है, जिसके रागादिक सब दोष क्षीण हो चुके हैं, जो जानने योग्य समस्त पदार्थों का जाननेवाला है, जिसने संसार के समस्त प्रपञ्च छोड दिये हैं, जो शिव अर्थात् कल्याण स्वरूप अथवा मोक्ष स्वरूप हैं, जो अज अर्थात् जिसको आगे जन्म मरण नहीं करना है, जो अनवद्य अर्थात् पापों से रहित है तथा जो समस्त लोकका एक अद्वितीय नाथ है ऐसे परम पुरुष परमात्मा को भावों की शुद्धता पूर्वक अतिशय करके भज।

भावार्थ-शुद्ध भावों से ऐसे परम पुरुष परमात्मा का ध्यान कर।

इसका संक्षेप भावार्थ यह है कि जब ध्यानी सिद्ध परमेष्ठी के ध्यान का

अभ्यास करके शक्ति की अपेक्षा से आपको भी उनके समान जान कर और आपको उनके समान व्यक्तरूप करने के लिये उस (आप) में लीन होता है, तब आप कर्मका नाश कर व्यक्तरूप सिद्ध परमेष्ठी होता हैं।

सर्वोच्च विकास का लक्ष्य होता है केवल आध्यात्मिक जीव में (रागी-द्वेषी मोही-स्वार्थी आत्मविकास को न जानते-मानते-करते है अतः उनका आत्मपतन होता हैं)

(चालः आत्मशक्ति...)

अन्त्योदय से सर्वोदय तक होना संभव आध्यात्मिकता से।
अन्यथा ये सब संभव नहीं है, अन्य किसी भी उपाय से।।
आत्मा में ही है अनन्तज्ञान दर्शन सुखवीर्य अव्याबाधत्वादि गुण।
जिसके कारण आत्मविकास से प्राप्त होते आत्मिक सभी गुण।।
निगोदिया से ले हर जीव (भव्य) का विकास होता है सर्वोदय तक।
इस हेतु प्रमुख कारण आध्यात्मिक विकास अन्यथा नहीं संभव।।
यथा विशाल वटवृक्ष हेतु प्रमुख कारण होता है वटबीज।
मृदा जलवायु सूर्य किरणादि होते हैं सहायक निमित्त।।
आत्मविकास है सर्वोच्चविकास जो अक्षय अनन्त होता है।
इस विकास के पहले अन्यान्य सभी विकास भी संभव है।
निगोदिया से क्रम विकास होकर बनते जीव द्विन्द्रियादि त्रस।
पंचेन्द्रियसंज्ञी तिर्यंच पशुपक्षी मानव नारकी व स्वर्ग के देव।।
यहाँ तक होता सामान्य विकास इससे परे होता विशेष विकास।
उच्चतर से उच्चतम विकास हेतु चाहिए उच्चतर से उच्चतम आध्यात्मिक विकास।।
राजा महाराजा चक्री इन्द्र तक होता है सामान्य विकास।
शारीरिक मानसिक सामाजिक राजनैतिक वैज्ञानिक विकास तक।।
प्राचीन विद्याधर होते थे आधुनिक भौतिक वैज्ञानिक से भी श्रेष्ठ।
तथापि उन्हें परम विकास हेतु बनना होता था गृहत्यागी सन्त।।
चक्रवर्ती होते थे आधुनिक सेठ साहुकार उघोगपति राष्ट्रपति से श्रेष्ठ।

तथापि उन्हें परमविकास हेतु बनना होता था गृहत्यागी सन्त।।
जन्म से अवधिज्ञानी होते थे तीर्थंकर आदि महापुरुष।
आधुनिक वैज्ञानिक दार्शनिक से भी महान् ज्ञानी तो भी वे बनते थे श्रमण।।
श्रमण बनकर आत्मविकास हेतु करते थे आध्यात्मिक शोध-बोध।
आत्मनियंत्रण आत्मविश्लेषण आत्मविशुद्धि से बनते थे अरिहंत सिद्ध।।
जिससे अक्षय अनन्त शाश्वतिक आध्यात्मिक वैभव को पाते थे।
ऐसा विकास केवल लौकिक शिक्षा से ले विज्ञान तक न संभव है।।
ऐसे आत्मविकास बिन अन्य सभी विकास से अन्य के दोहन-शोषण हो।
अन्याय अत्याचार भ्रष्टाचार से ले आक्रमण युद्ध तक होते हैं।
मय सभ्यता से ग्रीक सभ्यता तक के उत्थान-पतन साक्षी है।
रावण कंस हिटलर से तानाशाही व केवल भौतिक विकास साक्षी है।।
अतएव हे! मानव अन्त्योदय से सर्वोदय हेतु आत्मविकास करो।
अन्यथा 'सोने के अण्डे' समान आत्मपतन निश्चय मानो हे!।।
आधुनिक विज्ञान भी इस विषय को अंशतः सत्यसिद्ध कर रहा है।
अतएव आत्मविकास हेतु ही 'सूरी कनक' लक्ष्य निष्ट है।।
किन्तु जो रागद्वेषकामी मोही स्वार्थी होते व आत्मविकास न मानते/(जानते, करते) हैं।
वे केवल भौतिक विकास ही मानते/(जानते, करते) अतः वे आत्मपतन करते हैं।।

भीलूडा, दि.17.3.2019 रात्रि 8.49

सन्दर्भः-

धर्मः सुखस्य हेतुर्हेतुर्न विराधकः स्वकार्यस्य।
तस्मात्सुखभङ्गभिया माभूर्धर्मस्य विमुखस्त्वम्।। (20) आत्मानु.

धर्म सुख का कारण है और कारण कुछ अपने कार्य का विरोधी होता नहीं है। इसलिये तू सुखनाश के भय से धर्म से विमुख न हो।

धर्मादवाप्तविभवो धर्मं प्रतिपाल्य भोगमनुभवतु।
बीजादवाप्तधान्यः कृषीवलस्तस्य बीजमिव।। (21)

जिस प्रकार किसान बीज से उत्पन्न धान्य (गेहूँ व चावल आदि) को प्राप्त करता हुआ उसमें से भविष्य के लिये कुछ बीज के निमित्त सुरक्षित रखकर ही

उसका उपभोग करता है। उसी प्रकार हे भव्य जीव! तूने जो यह सुख-सम्पत्ति प्राप्त की है वह धर्म के ही निमित्त से प्राप्त की है, इसलिये तू भी उक्त सुखसम्पत्ति के बीजभूत उस धर्म का रक्षण करके ही उसका उपभोग कर।

संकल्प्यं कल्पवृक्षस्य चिन्त्यं चिन्तामणेरपि।
असंकल्प्यमसंचिन्त्य फलं धर्मादवाप्यते।। (22)

कल्पवृक्ष का फल संकल्प (प्रार्थना) के अनुसार प्राप्त होता है तथा चिन्तामणि का भी फल चिन्ता (मनकृत विचार) के अनुसार प्राप्त होता है, परन्तु धर्म से जो फल प्राप्त होता है वह अप्रार्थित एवं अचिन्त्य ही प्राप्त होता है।

परिणाममेव कारणमाहुः खलु पुण्यपापयोः प्राज्ञाः।
तस्मात् पापापचयः पुण्योपचयश्च सुविधेय।। (23)

विद्वान मनुष्य निश्चय से आत्मपरिणाम को ही पुण्य और पाप का कारण बतलाते हैं। इसलिये अपने निर्मल परिणाम के द्वारा पूर्वसंचित पाप की निर्जरा, नवीन पाप का निरोध और पुण्य का उपार्जन करना चाहिये।

कृत्वा धर्मविघातं विषयसुखान्यनुभवन्ति ये मोहात्।
आच्छिद्य तरून् मूलात् फलानि गृण्हन्ति ते पापाः।। (24)

जो प्राणी अज्ञानता से धर्म को नष्ट करके विषयसुखों का अनुभव करते हैं वे पापी वृक्षों को जड़ से उखाड़कर फलों को ग्रहण करना चाहते हैं।

कर्तृत्वहेतुकर्तृत्वानुमतेः स्मरणचरणवचनेषु
यः सर्वथाभिगम्यः स कथं धर्मो न संग्राह्यः।। (25)

जो धर्म मन से स्मरण, शरीर के द्वारा आचरण तथा वचनकृत उपदेश को विषय करने वाले कर्तृत्व (कृत), हेतुकर्तृत्व (प्रेरणा-कारित) और अनुमोदन के द्वारा सब प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है उस धर्म का संग्रह कैसे नहीं करना चाहिये? अर्थात् सब प्रकार से उसका संग्रह अवश्य करना चाहिये।

धर्मो वसेन्मनसि यावदलं स तावध्दन्ता,
न हन्तुरपि पश्च गतेऽथ तस्मिन्।
दृष्टा परस्परहतिर्जनकात्मजानां

रक्षा ततोऽस्य जगतः खलु धर्म एवं।।(26)

देखो, जब तक वह धर्म मन में अतिशय निवास करता है तब तक प्राणी अपने मारने वाले का भी घात नहीं करता है। और जब वह धर्म मन में से निकल जाता है तब पिता और पुत्र का भी परस्पर में घात देखा जाता है। इसलिए इस विश्व की रक्षा उस धर्म के रहने पर ही हो सकती है।

न सुखानुभवात् पापं लद्धेतुघातकारम्भात्।
नाजीर्ण मिष्टान्नान्नु तन्मात्रद्यतिक्रमणात्।। (27)

पाप सुख के अनुभव से नहीं होता है, किन्तु वह उपयुर्क्त धर्म के हेतुभूत अंहिसा आदि को नष्ट करने वाले प्राणिवधादि के आरम्भ से होता है। ठीक ही है- अजीर्ण कुछ मिष्टान्न के खाने से नहीं होता है, किन्तु वह निश्चय से उस के प्रमाण के अतिक्रमण से ही होता है।

इस प्रकार 'सत्य से' सम्यग्दर्शन तथा ज्ञान के विषय भूत विश्व के समस्त सत् स्वरूप द्रव्य, 'साम्य' से रत्नत्रयात्मक आत्मा का समरसी भाव एवं 'सुख' से घातिकर्म के क्षय से आत्मा में प्रगट होने वाला आह्लाद रूप निराकुलमय अक्षय-अनंत, आध्यात्मिक सुख को ग्रहण किया है, न कि सत्य से वाचनिक, लौकिक सत्य, 'समता' से स्थावर जीवों के सुख-दुःखों को प्रतिक्रिया रहित सहन करने रूप 'कर्म फल चेतना' के समान 'समता' तथा 'सुख' में विषयाग्नि को और भी प्रज्ज्वलित करने वाला इन्द्रिय जनित 'सुख'। आत्मानुशासन में कहा भी है-

स धर्मो यत्र नाधर्मस्तत्सुखं यत्र ना सुखम्।
तज्ज्ञानं यत्रनाज्ञानं सा गतिर्यत्र नागतिः।। (46)

धर्म वह है जिसके होने पर अधर्म न हो, सुख वह है जिसके होने पर दुःख न हो, ज्ञान वह है जिसके होने पर अज्ञान न रहे तथा गति वह है जिसके होने पर आगमन न हो।

अर्थिनो धनमप्राप्य धनिनोऽप्यवितृप्तितः।
कष्टं सर्वेऽपि सीदन्ति परमेकः मुनि (सुखी) सुखी।।
परायत्तात् सुखाद् दुःखं स्वायत्तं केवलं वरम्।
अन्यथा सुखिनामानः कथमासंस्तपरिस्वनः।। (66)

धनाभिलाषी निर्धन मनुष्य तो धन को न पाकर दुःखी होते हैं और धनवान् मनुष्य संतोष के न रहने से दुःखी होते हैं। इस प्रकार खेद है कि सब ही (धनी और निर्धन भी) प्राणी दुःख का अनुभव करते हैं। यदि कोई सुखी है तो केवल एक संतोषी (तृष्णा से रहित) मुनि ही सुखी है। धनवानों का सुख पराधीन है उस पराधीन सुख की अपेक्षा तो आत्माधीन दुःख अर्थात् अपनी इच्छानुसार किये गये अनशन आदि के द्वारा होने वाला दुःख ही अच्छा है। कारण कि यदि ऐसा न होता तो फिर तपश्चरण करने वाले साधुजन 'सुखी' इस नाम से युक्त कैसे हो सकते थे? अर्थात् नहीं हो सकते थे।

निर्धनत्वं धनं येषां मृत्युरेव हि जीवितम्।
किं करोति विधिस्तेषां सतां ज्ञानैकचक्षुषाम्।।(162)

जिन साधुओं के निर्धनता (उत्तम आकिंचन्य) ही धन है तथा मृत्यु ही जिनका जीवन है उन ज्ञानरूप अद्वितीय नेत्र को धारण करने वाले साधुओं का भला कर्म क्या अनिष्ट कर सकता है? अर्थात् कुछ भी नहीं कर सकता है।

जीविताशा धनाशा च येषां तेषां विधिर्विधिः।
किं करोति विधिस्तेषां येषामाशा निराशता।।(165)

जिन जीवों के जीवन की अभिलाषा और धन की अभिलाषा रहती है उन्हीं जीवों का कर्म कुछ अनिष्ट कर सकता है वह उनके प्रिय जीवन और धन को नष्ट करके हानि कर सकता है। परन्तु जिन जीवों की आशा जीने की इच्छा और विषय तृष्णा-निःशेषतया नष्ट हो चुकी है उनका वह कर्म भला क्या अनिष्ट कर सकता है? कुछ भी नहीं। यदि वह उनके जीवन और धन का अपहरण करता है तो उनके अभीष्ट को ही सम्पादित करता है।

कुबोधरागादिविचेष्टितैः फलं त्वयापि भूयो जननादिलक्षणम्।
प्रतीहि भव्य प्रतिलोमवृत्तिभिः ध्रुवं फलं प्राप्स्यासि तद्विलक्षणम्।।(106)

हे भव्य! तूने बार-बार मिथ्याज्ञान एवं रागद्वेषादि जनित प्रवृत्तियों से जो जन्म-मरणादि रूप फल प्राप्त किया है उसके विरुद्ध प्रवृत्तियों सम्यग्ज्ञान एवं वैराग्यजनित आचरणों के द्वारा तू निश्चय से उसके विपरीत फल अजर अमर पद को प्राप्त करेगा ऐसा निश्चय कर।

दयादमत्यागसमाधिसंततेः पथि प्रयाहि प्रगुणं प्रयत्नवान्।

नयत्यवश्यं वचसामगोचरं विकल्पदूरं परमं किमप्यसौ।।(107)

हे भव्य! तू प्रयत्न करके सरल भाव से दया, इन्द्रिय-दमन-दान और ध्यान की परम्परा के मार्ग में प्रवृत्त हो जा। वह मार्ग निश्चय से किसी ऐसे उत्कृष्ट पद (मोक्ष) को प्राप्त कराता है जो वचन से अनिर्वचनीय एवं समस्त विकल्पों से रहित है।

विज्ञाननिहतमोहं कुटीप्रवेशो विशुद्धकायमिव।

त्यागः परिग्रहाणामवश्यमजरामरं कुरुते।।(108)

विवेक ज्ञान के द्वारा मोह के नष्ट हो जाने पर किया गया परिग्रहों का त्याग निश्चय से जीव को जरा और मरण से रहित इस प्रकार कर देता है जिस प्रकार कि कुटीप्रवेश क्रिया शरीर को विशुद्ध कर देती है।

अकिंचनोऽहमित्यास्स्व त्रैलोक्याधिपतिर्भवेः।

योगिगम्यं तव प्रोक्तं रहस्यं परमात्मनः।।(110)

हे भव्य! तू 'मेरा कुछ भी नहीं है' ऐसी भावना के साथ स्थित हो। ऐसा होने पर तू तीन लोक का स्वामी (मुक्त) हो जायेगा यह तुझे परमात्मा का रहस्य (स्वरूप) बतला दिया है जो केवल योगियों के द्वारा प्राप्त करने के योग्य या उनके ही अनुभव का विषय है।

अमृतम् का अर्थ है (अ+मृतम्) अमर/शाश्वतिक/अनिवाशी/अनिधन सत्य ही अमृत है क्योंकि सत्य की कभी मृत्यु नहीं होती है। साम्य भी अमृत है क्योंकि परम समता की उपलब्धि (13वें गुणस्थान से आगे सिद्धावस्था तक) के बाद साम्य का विनाश नहीं होता है तथा साम्य का फल तथा स्वरूप जो मोक्ष है उसका भी कभी क्षय नहीं होता है। इसलिए साम्य भी अमृत है। साम्य से जो स्वात्मोपलब्धि रूप आत्मोथ सुख की उपलब्धि होती है वह भी अमृत है क्योंकि वह सुख सादि होकर भी अनिधन है। लोकोक्ति है कि अमृतपान बहुत सुखकर है। जो अमृतपान करता है वह जन्म, जरा, रोग, मरण से रहित होकर अजर-अमर-अमेय होकर शाश्वतिक सुख को भोगता है। यह लोकोक्ति वास्तव में आध्यात्मिक से अपभ्रंश होकर बनी है ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि कोई भी जीव तीन लोक में तीन काल में भौतिक अमृत का पान करके अजर-अमर-अमेय सुख स्वरूप हो गया हो ऐसा न सुनने में आता है न देखने में आता है न पढ़ने में आता है। अतः सिद्ध होता है कि सत्य ही अमृत है, आत्मा का

साम्यभाव भी अमृत है तथा मोक्ष सुख भी अमृत है।

अनाद्यविद्यादोषोत्थचतुः संज्ञा ज्वरातुराः।

शश्वत्स्वज्ञानविमुखाः सागरा विषयोन्मुखाः।।सा.ध.

भावार्थ : इस श्लोक में आशाधरजी ने गृहस्थ का स्वरूप बताते हुये तीन विशेषण दिये हैं। इन तीनों विशेषणों से गृहस्थ के अंतरंग परिणामों का वर्णन किया गया है और ज्वर की उपमा देकर समझाया है कि गृहस्थ कैसे होते हैं।

जिस प्रकार वात, पित्त और कफ की विषमता से साध्य प्राकृत, असाध्यप्राकृत, साध्यवैकृत, असाध्यवैकृत के भेद से चार प्रकार के ज्वर उत्पन्न होते हैं। उन ज्वरों से पीड़ित होने के कारण मनुष्य हिताहित के विवेक से शून्य हो जाते हैं और अपथ्यसेवी बन जाते हैं, उसी प्रकार अनित्य पदार्थों में नित्य, अपवित्र पदार्थों में पवित्र, दुःखों को सुख, हेय पदार्थों को उपादेय अपने से पृथक् स्त्री, पुत्र मित्रादिक बाह्य पदार्थों को अपना मानना, यही एक अनादिकालीन अविद्या है। उस अविद्यारूपी वात, पित्त, कफ की विषमता से उत्पन्न होने वाली आहार संज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परिग्रह संज्ञारूपी ज्वर से पीड़ित होकर यह प्राणी हिताहित के विवेक से शून्य होकर अपथ्यसेवी बन रहा है अतः अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं रहा। जिससे निरन्तर

एगो मे सासदो आदा, णाणदंसणलक्खणो।

सेसा में बाहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा।

एक ज्ञान दर्शन लक्षणवाला-ज्ञाता दृष्टा अविनाशी आत्मा ही मेरा है। और संयोग सम्बन्ध से होने वाले सम्पूर्ण वैभाविक भाव बाह्य भाव है और वे मुझसे सर्वथा भिन्न हैं। इत्यादि स्वानुभूति से पराङ् मुख होकर विषयसेवन को ही शांति का उपाय समझकर निरन्तर रागद्वेष से इष्टा-निष्ट विषयों की तरफ उन्मुख हो रहे हैं। उन्हें सागार, सम्पूर्ण परिग्रह सहित घर में वास करने वाले गृहस्थ कहते हैं। दूसरे प्रकार से गृहस्थ का लक्षण

अनाद्यविद्यानुस्यूतां ग्रंथसंज्ञामपासितुम्।

अपारयन्तः सागाराः प्रायो विषयमूर्च्छिताः।।(3)।।

भावार्थ : जिस प्रकार बीज से अंकुर और अंकुर से बीज यह परम्परा अनादि काल से चली आ रही है, उसी प्रकार अनादिकालीन अज्ञानभाव से परिग्रहादि

संज्ञा, परिग्रहादि संज्ञा से अज्ञान भाव (अर्थात् द्रव्य कर्म से भावकर्म और भावकर्म से द्रव्य कर्म) इस प्रकार अनादि (जिसका प्रारंभ नहीं है) अविद्या से उत्पन्न हुई ग्रन्थ संज्ञा अर्थात् परिग्रह में यह मेरा है इस प्रकार के परिणामों के छोड़ने में असमर्थ होकर प्रायः गृहस्थ स्त्री पुत्रादिक में मैं इनका भोक्ता हूँ, मैं इनका स्वामी हूँ, यह मेरे योग्य वस्तु है इस प्रकार के ममकार अहंकाररूप विकल्प जाल की परतंत्र से वशीभूत होकर विषयों में मूर्च्छित हो जाता है। इस श्लोक में प्रायः यह शब्द दिया है इससे यह सूचित होता है कि प्रायः सम्यग्दृष्टि भी चारित्र मोहनीय के वशीभूत होकर विषयों में मूर्च्छित हो जाते हैं, परन्तु कोई विरले सम्यग्दृष्टि जन्मान्तर में किये हुए रत्नत्रय के अभ्यास से भरतचक्रवर्ती आदि के समान चक्रवर्ती इन्द्रपद आदि का अनुभव करते हुए भी 'असतीनाथोप-भोगन्याय' से तत्त्वज्ञान देशसंयम आदि की तत्परता होने से नहीं भोगने-वाले के समान है। यह व्याभिचार बताने के लिये प्रायः शब्द दिया गया है।

असतीनाथ न्याय

धात्रीबालासतीनाथ पद्मिनीजलवारिवत्।
दग्धरज्जुवदाभाति भुञ्जानोऽपि न पापभाक्।।(1)।।

जिस प्रकार पालन-पोषण करने वाली धाय में बच्चा आसक्त नहीं होता, अथवा पालनेवाली धाय बच्चे में आसक्त नहीं होती है, वा व्याभिचारिणी स्त्री में उसके पति का विशेष प्रेम नहीं होता है, अथवा कमलिनी के पत्ते पर स्थित भी जल बिन्दु कमल में लिप्त नहीं होती है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव विषयों को भोगता हुआ भी आसक्त नहीं होने से जली हुई रस्सी के समान पापभागी नहीं होता है। जिस प्रकार जली हुई रस्सी में ऐंठ का केवल आकार दिखता है परन्तु वह किसी को बाँधने में समर्थ नहीं होता है, उसी प्रकार यद्यपि सम्यग्दृष्टि जीव विषयों का सेवन करता है परन्तु अरुचिपूर्वक सेवन करने से उसके विषय भोग कर्मों के बंध कराने में समर्थ नहीं है। अर्थात्-जैसे मिथ्यादृष्टि जीव आसिक्तपूर्वक विषयों को सेवन करने से अनन्त संसार के कारणभूत मिथ्यात्वादि कर्मों का बंध करता है, वैसे सम्यग्दृष्टि जीव रुचिपूर्वक विषयों को सेवन न करने से अनन्त संसार के कारणभूत कर्मों का बन्ध नहीं करता। इसलिये अनन्तानुबन्धी तथा मिथ्यात्वकृत पापकर्मों के बंध का अभाव होने से सम्यग्दृष्टि जीव विषयों को भोगता हुआ भी अबन्धक कहा गया है; सर्वथा

अबंधक नहीं है। अर्थात् कोई-कोई सम्यग्दृष्टि जीव अप्रत्याख्यानावरण चारित्रमोहनीय के तीव्र उदय से विषयों में मूर्च्छित हो जाते हैं और कोई-कोई तत्त्वज्ञानी देशव्रती सम्यग्दृष्टि देश संयम को पालन करने वाले वास्तव में विषयों को सेवन करना नहीं चाहते हैं त्याज्य समझते हैं। फिर भी चारित्रमोह के उदय के वेग को सहन नहीं कर सकते हैं। इसलिये वेदना का प्रतिकार करने के लिये विषय सेवन में उनको प्रवृत्ति करनी पड़ती है। अतःउदासीन रूप से विषयों को सेवन करने वाले होने से उपचार से नहीं सेवन करने वाले के समान कहे जाते हैं, इस बात को बताने के लिये ग्रन्थकार ने ''प्रायः'' शब्द दिया है।

इस प्रकार गृहस्थों का लक्षण बता करके अब उनकी विषयों में प्रवृत्ति होने तथा नहीं होने में मूल कारण अज्ञान और ज्ञान है, उस अज्ञान वा ज्ञान के कारणभूत मिथ्यात्व और सम्यक्त्व के प्रभाव।

नरत्वेऽपि पशूयन्ते मिथ्यात्वग्रस्तचेतसः।
पशुत्वेऽपि नरायंते सम्यक्त्वव्यक्तचेतनाः।।(4)।।

भावार्थ : प्रायः मनुष्य विचार चतुर चित्त वाले होते हैं फिर भी जिन मनुष्यों का हृदय अतत्त्व श्रद्धान रूप मिथ्यात्व अर्थात् विपरीत श्रद्धान से व्याप्त है वे मनुष्यभव को प्राप्त करके भी हिताहित के विवेक से रहित होने से पशुओं के समान हैं और जो पर्याय की अपेक्षा पशु हैं, परन्तु जिनका हृदय तत्त्वार्थ श्रद्धान रूप सम्यक्त्व परिणामों से व्याप्त है अथवा जिनके हृदय में प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य भाव रूप सम्पदा मौजूद है।

प्रशम-रागादि दोषों में मनोवृत्ति का नहीं जाना अथवा कषायों की मन्दता होना प्रशम भाव है।

संवेग-संसार शरीर और भोगों से विरक्त होना अथवा शारीरिक रोगादि रूप व्याधि को, मानसिक चिंतारूप आधि को और आगन्तुक आकस्मिक दुःखों को उत्पन्न कराने वाले तथा इन्द्रजाल के समान अस्थिर संसार से भयभीत होने को संवेग कहते हैं।

अनुकम्पा-सम्पूर्ण जीवों पर चित्तदयार्द्रता को अनुकम्पा कहते हैं।

आस्तिक्य-देव-शास्त्र-गुरु-व्रत और सात तत्त्वों में अस्तित्व बुद्धि वा श्रद्धान

को आस्तिक्यभाव कहते हैं। इस प्रकार की परिणति वाले प्राणी जाति से तिर्यञ्च होते हुए भी सम्यक्त्व के महात्म्य से हेय उपादेय तत्त्व को जानने वाले होने से मनुष्यों के समान हैं।

सारांश-सम्यग्दृष्टि पशु होकर भी श्रेष्ठ है, मिथ्यादृष्टि मनुष्य होकर भी हीन पशु के समान हैं। विद्या और अविद्या का मूल कारण क्रम से सम्यक्त्व और मिथ्यात्व है। इस श्लोक में पशु शब्द सामान्य तिर्यञ्चवाची है, फिर पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्त ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक तिर्यञ्चों को सम्यक्त्व नहीं हो सकता है।

केषां चिदन्धतमसायतेऽगृहीतं ग्रहायतेऽन्येषाम्।
मिथ्यात्वमिह गृहीतं शल्यति सांशयिकमपरेषाम्।।(5)।।

भावार्थ-मिथ्यात्व के तीन भेद हैं (1) गृहीत मिथ्यात्व (2) अगृहीत मिथ्यात्व और (3) सांशयिक मिथ्यात्व।

दूसरों के उपदेश के बिना अनादि सन्तान रूप से जो जीवों को तत्त्व में अरुचि रूप चेतना की परिणति को अगृहीत मिथ्यात्व कहते हैं। वह मिथ्यात्व एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीवों को होता है। जिस प्रकार गाढ़ अन्धकार से आच्छादित वस्तु के स्वरूप का अवलोकन नहीं होता है, उसी प्रकार अगृहीत मिथ्यात्व के उदय से जीवों को अपने हिताहित का विचार नहीं होता है, इसलिये इसकी उपमा गाढ़ अन्धकार की दी जाती है।

गृहीतमिथ्यात्व-गृहीतं परोपदेशादुपात्तं अतत्त्वाभिनिवेशलक्षणं चिद्वै-कृतं गृहीतमिथ्यात्वं।

दूसरों के उपदेश से ग्रहण किये गए अतत्त्वाभिनिवेशरूप मिथ्यात्व को गृहीत मिथ्यात्व कहते हैं। अपने कुल परम्परा से आये हुए मिथ्या धर्म को स्वीकार करना भी गृहीतमिथ्यात्व है। यह संज्ञी पंचेन्द्रिय के होता है। इसकी उपमा आचार्य ने पिशाच की दी है। क्योंकि जिस प्रकार जब किसी पुरुष को भूत लग जाता है तब वह भूत उस पुरुष की स्वाभाविक दशा को भुला कर उसको नाना तरह से नचाता है, नाना प्रकार के विपरीत कर्मों को करवाता है उसी प्रकार यह गृहीतमिथ्यात्व जीवों को तत्त्वों में विपरीत एकान्त रूप से श्रद्धान कराता है। अतत्त्वों में तत्त्वों का श्रद्धान करा करके

तदनुकूल अनुष्ठान कराता है। इसके उदय से जीव असन्मार्ग का ही पक्ष लेते हैं और सम्यग्दृष्टि जीवों तक को भी उसी तरफ खींचने की चेष्टाएँ करते हैं। गृहीत मिथ्यादृष्टि जीव एकान्त विपरीत आदि रूप से पदार्थों का श्रद्धान करके नाना प्रकार के धर्माभासरूप अनुष्ठान करते हैं। जिस प्रकार तुमको अपना प्राण प्रिय है उसी प्रकार सम्पूर्ण जीवों को भी अपने-अपने प्राण प्रिय हैं, इसलिये मनुष्यों को अपने समान ही सम्पूर्ण प्राणियों पर दया करनी चाहिये।

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत।।

धर्म के सार को सुनो तथा सुनकर उन पर विचार करो। क्योंकि सम्पूर्ण धर्म का सार यही है कि जो कार्य अपने प्रतिकूल हैं उन कार्यों को दूसरों के प्रति मत करो अर्थात् दूसरों के द्वारा किये गये जिन कार्यों से तुमको दुःख होता है उन कार्यों को तुम दूसरों के प्रति भी मत करो।

अवृत्तिव्याधिशोकार्ताननुवर्तेत शक्तितः।
आत्मवत्सततं पश्येदपि कीटपिपीलिकाः।।

अर्थः जो आजीविका के अभाव से रोग तथा शोकादिक से दुःखी हैं ऐसे प्राणियों की सदैव अपनी शक्ति के अनुसार सहायता करनी चाहिये। और छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े चींटी आदि सम्पूर्ण जीवों को भी सदैव अपने समान ही देखना चाहिये। इसलिये दयालु होना भी श्रावकधर्म में एक मुख्य गुण है।

अघभीः-दृष्ट अदृष्ट (प्रत्यक्ष और परोक्ष) अपायस्वरूप फल देने वाले चोरी आदि मदिरापानादि पाप कर्म से भयभीत होने वाले को पापभीरू कहते हैं। अर्थात् अघ=पाप से डरने वाला अघभी कहलाता है। इन गुणों को धारण करने वाला श्रावकधर्म को पालन कर सकता है।

इस प्रकार संक्षेप से इस ग्रन्थ में श्रावक के विशेषणों का वर्णन किया है। विशेष रूप से वर्णन ज्ञानदीपिका नामक धर्मामृत की पंजिका में किया है, उसमें देखना चाहिये।

अब मन्दबुद्धि वाले शिष्यों के सुखस्मृति के लिये सम्पूर्ण गृहस्थधर्म का संग्रह करते हैं।

पूर्ण सागारधर्म

सम्यक्त्वममलममलान्यणुगुणशिक्षाव्रतानि मरणान्ते।
सल्लेखना च विधिना पूर्णः सागारधर्मोऽयम्।।(12)।।

भावार्थः शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढ़दृष्टि, अनुपगूहन अस्थिती-करण, अवात्सल्य, अप्रभावना ये आठ दोष, ज्ञान का मद कुल आदि का गर्व करना आदि आठ मद, तीन मूढ़ता, छह अनायतन इन पच्चीस दोषों से रहित सम्यग्दर्शन तथा निरतिचार पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत का पालन करना और मरण समय में शास्त्रोक्त विधि से सल्लेखना धारण करना यह श्रावकों का पूर्ण धर्म है। इस श्लोक में च शब्द का प्रयोग है। उससे शेष बाकी बचे देवपूजा, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप, दानादि श्रावक के धर्मो का ग्रहण किया है अर्थात् यह सब इसी में अन्तर्भूत हो जाते हैं। इसलिये दान पूजादि को पृथक् ग्रहण नहीं किया है। मरणान्ते सल्लेखना इस पद से यह अर्थ ग्रहण करना चाहिये।

आवीचीमरण, कषायमरण, तत्भवमरणादि 17 प्रकार के मरण शास्त्रों में कहे गये हैं। जो प्रतिसमय आयु कर्म के निषेक उदय में आकर नष्ट होते हैं उसको आवीचिमरण कहते हैं। और पूर्ण वर्त्तमान आयु का नाश होकर दूसरे भव की प्राप्ति होना उसको तद्भवमरण कहते हैं। यहाँ पर मरणान्ते इस शब्द से तद्भवमरण ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि आवीचिमरण हर समय प्रत्येक प्राणी के निरन्तर होता है। सल्लेखना=सत् सम्यक् प्रकार से ख्याति, पूजा, लाभादि अपेक्षा रहित लेखना=बाह्याभ्यन्तर तप के द्वारा शरीर और कषायों को कृश करना सल्लेखना कही जाती है। उसकी विधि सतरहवें अध्याय में कही जायगी।।

असंयमी सम्यग्दृष्टि के भी कर्मक्लेश का अपकर्षण अर्थात् नाश होता है।

भूरेखादिसदृक्कषायवशगो यो विश्वदृश्वाज्ञया,
हेयं वैषयिकं सुखं निजमुपादेयं त्विति श्रद्धधत्।
चौरो मारयितुं धृतस्तलवरेणेवाऽत्मनिन्दादिमान्,
शर्माक्षं भजते रुजत्यपि परं नोत्तप्यते सोऽप्यघैः।।(13)।।

भावार्थ : जिस प्रकार कोतवाल के द्वारा मारने के लिये पकड़ा हुआ चोर चोरी बुरी समझता है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव सर्वज्ञ भगवान् की आज्ञा से अर्थात्

वीतराग प्रभु ने सांसारिक सुखों को छोड़ने योग्य पाप का कारण बताया है, भगवान् अन्यथा (असत्य) वादी नहीं है, इस प्रकार भगवान् के वचनों पर दृढ़ विश्वास होने से अनुभूयमान इष्ट का मिन्यादि विषयों से उत्पन्न होने वाले विषय सुख विनाशीक है, दुःख के कारणभूत कर्मबन्ध के कारण है, इसलिये छोड़ने योग्य है, और अविनाशी आत्मीय सुख उपादेय है तथा रत्नत्रय के उपयोग से आत्मा में निज सुख उत्पन्न करने योग्य है। इस प्रकार श्रद्धान अर्थात् निश्चय से सम्यग्दर्शन धारण करने वाला होता हुआ, हाथ में दीपक रहते हुए भी अन्धकूप में गिरने वाले मुझको धिक्कार है, इस प्रकार अपनी आत्मा की निन्दा और ''हे भगवन् उन्मार्ग पर चलने वाला यह प्राणी दुर्गति के दुःखों को कैसे भोगेगा'' इस प्रकार गुरु की साक्षीपूर्वक गुरु के सामने गर्हा करता हुआ अविरत सम्यग्दृष्टि जीव पृथ्वी के रेखादि के समान अप्रत्याख्याना-वरणादिक बारह क्रोधादिक कषायों के वश में होकर अर्थात् चारित्र-मोहनीय की परतंत्रता से इन्द्रियों से उत्पन्न होने वाले सुखों का सेवन करता है तथा त्रस स्थावर जीवों को पीड़ा देता है-उनकी हिंसा करता है तो भी वह अविरतसम्यग्दृष्टि जीव पापों के द्वारा अथवा बहुत से दोषों के द्वारा उत्कृष्ट संक्लेश को प्राप्त नहीं होता है। इसका सारांश यह है कि-जैसे कोतवाल के द्वारा मारने के लिए पकड़ा हुआ तस्कर खरारोहण कृष्णमुख करना आदि अनेक प्रकार की जो-जो विडम्बना कोतवाल कराता है उन सब चेष्टाओं को अयोग्य जानता हुआ भी करता है। उसी प्रकार चारित्र मोह के वशीभूत हुआ अविरतसम्यग्दृष्टि भावहिंसा, द्रव्यहिंसा आदि जो-जो कार्य चारित्र मोहनीय कराता है उनको अयोग्य जानता हुआ भी करता है क्योंकि कर्मों के उदयकाल में उनको रोकना दुर्निवार है। फिर भी मिथ्यादृष्टि के समान दुःखभाक् नहीं होता है।

न दुःखबीजं शुभदर्शनक्षितौ कदाचन् क्षिप्तमपि प्ररोहति।
सदाप्यनुप्तं सुखबीजमुत्तमं कुदर्शने तद्विपरीतमिष्यते।।

सम्यग्दर्शनरूपी भूमि में यदि दुःख के बीज पड़ भी जावें तो भी वे कभी भी शीघ्र अंकुरित नहीं होते हैं। और सुख के बीज बिना बोये भी हमेशा उत्पन्न होते हैं। परन्तु मिथ्यादर्शन रूपी भूमि में उससे विपरीत फल होता है अर्थात् मिथ्यादर्शनरूपी भूमि में सुख के बीच बोने पर भी उत्पन्न नहीं होते हैं और दुःख के बीज बिना बोये

उत्पन्न होते हैं। इसलिए यह निश्चित हुआ कि अविरतसम्यग्दृष्टि जीव भी जिसने पहले मिथ्यात्व अवस्था में आयु का बंध नहीं किया है तो वह स्वर्ग का देव पद तथा चक्रवर्ती पद, तीर्थंकर पद आदि सुमानुषत्वादि पर्याय को छोड़कर सम्पूर्ण संसार के दुःखमय कर्मों का नाश कर देता है अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव मानव पर्याय वा विमानवासी देवपर्याय को छोड़कर और पर्यायों में जन्म धारण नहीं करता है। परन्तु जो बद्धायुष्क है अर्थात् जिसने मिथ्यात्व अवस्था में नरक तिर्यंच आयु का बन्ध किया है, पश्चात् सम्यग्दर्शन ग्रहण किया है ऐसे जीव नरक में जायेंगे तो भी प्रथम नरक की जघन्य या मध्यम स्थिति को प्राप्त होंगे, उत्कृष्ट स्थिति को प्राप्त नहीं होंगे। दूसरे तीसरे नरक में सम्यक्त्व सहित जीव उत्पन्न नहीं हो सकता है। और प्रथम नरक में उत्कृष्ट स्थिति वाला नहीं हो सकता है।

दुर्गतावायुषो बंधात्सम्यक्त्वं यस्य जायते।
गतिच्छेदो न तस्यास्ति तथाप्यल्पतरा स्थितिः।।

नरकादि दुर्गति की आयु बन्धन के बाद में जिसको सम्यक्त्व हुआ है यद्यपि उसके गतिच्छेद तो नहीं होता है अर्थात् नरक जाना ही पड़ता है फिर भी स्थिति अल्प हो जाती है। जैसे श्रेणिक राजा ने मिथ्यात्व अवस्था में सातवें नरक की उत्कृष्ट तेतीस सागर की आयु का बन्ध किया था परन्तु सम्यक्त्व होने के बाद में तेतीस सागर की आयु का नाश कर प्रथम नरक में 84 हजार वर्ष की आयु वाला नारकी हुआ। सम्यग्दृष्टि तिर्यंच में जायेगा तो भोगभूमि में जायेगा, कर्मभूमि का तिर्यंच नहीं होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि सम्यग्दृष्टि के बहुत से दुःखों का उपरम हो जाता है। अतः जब तक संयम की प्राप्ति न हो तब तक संसार भीरु सम्यग्दृष्टि को निरन्तर सम्यग्दर्शन की आराधना में तत्पर रहना चाहिये अर्थात् सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिये सदैव प्रयत्न करना चाहिये। मिथ्यात्व का परित्याग करना चाहिये।

जन्मोन्मार्ज्यं भजतु भवतः पादपद्मं न लभ्यं,
तच्चेत्स्वैरं चरतु न च दुर्देवतां सेवतां सः।
अश्नात्यन्नं यदिह सुलभं दुर्लभं चेन्मुधाऽस्ते,
क्षुद्व्यावृत्यै कवलयति कः कालकूटं बुभुक्षुः।।

हे देव! भव्य जीवों को जन्म मरण रूपी दुःखों के नष्ट करने वाले आपके

चरण कमलों का ही सेवन करना चाहिये। यदि कदाचित् आपके चरणकमल प्राप्त न हो सकें तो फिर वे भले ही स्वच्छन्दतापूर्वक आचरण करे। किन्तु उनको कुदेवों को सेवन नहीं करना चाहिये। क्योंकि संसार में सुलभ जो अन्न है उस अन्न को ही सब लोग खाते हैं। यदि उस अन्न का मिलना दुर्लभ हो जावे तो वे भूखे ही बैठे रहते हैं। कारण कि ऐसा कौन पुरुष होगा जो कि क्षुधा को दूर करने के लिये विष को खावेगा।

भावार्थ : जिनेन्द्र भगवान के चरण कमल ही सेवन करने के योग्य है। अतः उनका ही सेवन करना चाहिये। यदि वे न मिलें तो उनकी सेवा के बिना तो रहना अच्छा है, किन्तु कुदेवों का सेवन करना अच्छा नहीं है क्योंकि सब लोग अन्न को ही खाते हैं। यदि अन्न नहीं मिले तब क्या विष खाना चाहते हैं। इस श्लोक में नोत्तप्यते सोऽत्वद्यैः इससे यह सूचित है कि अविरत सम्यग्दृष्टि जीव भी पापों के द्वारा अधिक संक्लेशित नहीं होता है, फिर जिन्होंने महाव्रत या अणुव्रत धारण किये हैं उनका तो कहना ही क्या, वह तो कभी भी दुःखभाग् नहीं हावेंगे।।13।।

इस समय धर्म और सुख के समान यश भी चित्त को प्रसन्न करने वाला है, इसलिये सज्जन पुरुषों को यश भी उपार्जन करना चाहिये।

धर्मं यशः शर्म च सेवमानाः, केप्येकशो जन्म विदुः कृतार्थम्।
अन्ये द्विशो विद्म वयं त्वमोघा, न्यहानि यान्ति त्रयसेवयैव।।(14)।।

भावार्थ : संसारी प्राणी भिन्न-भिन्न रुचिवाले होते हैं एक-सी रुचि किसी की भी नहीं होती, इसलिये इस संसार में कोई यश और सुख को छोड़कर केवल धर्म के सेवन से ही अपने मानव जन्म की सफलता मानते हैं और कोई पुरुष धर्म तथा सुख को छोड़कर केवल यश की सिद्धि से ही मनुष्य जन्म को सफल मानते हैं। कोई पुरुष धर्म और यश को छोड़कर केवल सुख के सेवन से ही मानव जन्म की कृतार्थता मानते हैं। तथा लोक व्यवहार के अनुसार चलते हुए अपने को शास्त्रों का ज्ञाता मानने वाले कोई पुरुष सुख को छोड़कर केवल धर्म अथवा यश के द्वारा ही अपने को कृतार्थ मानते हैं और कोई पुरुष धर्म को छोड़कर केवल सुख अथवा यश की सिद्धि द्वारा ही अपने मनुष्यजन्म को सफल मानते हैं। किन्तु ग्रन्थकार कहते हैं कि लौकिक व्यवहार तथा शास्त्रों को जानने वाले पुरुषों को सन्तोषित करने वाले हम लोग तो धर्म, यश और सुख इन तीनों को सेवन करने से व्यतीत होने वाले मनुष्य जन्म

सम्बन्धी दिनों को ही सफल मानते हैं। इस श्लोक में त्रयसेवयैव, इसमें जो एव कार शब्द किया गया है उससे यह सूचित होता है कि धर्म, यश और सुख इन तीनों के सेवन से ही मनुष्यजन्म की सफलता हो सकती है। एक-एक के या दो के सेवन करने से नहीं हो सकती है।

आगे सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर भी यदि कालादि लब्धि के लाभ का अभाव होने से संयम की सामग्री का अभाव हो तो (मुनिपद धारण करने की शक्ति न हो तो) संयतासंयत पद तो अवश्य धारण करना चाहिये।

मूलोत्तरगुणनिष्ठामधितिष्ठन्पंचगुरुपदशरण्यः।
दानयजनप्रधानो ज्ञानसुधां श्रावकः पिपासुः स्यात्।।(15)।।

भावार्थ : श्रावक किसको कहते हैं-श्रृणोति गुर्वादिभ्यो धर्म इति श्रावकःजो गुरुओं से धर्म सुने उसको श्रावक कहते हैं। वह श्रावक कैसा होता है उसका आचरण कैसा है इसका वर्णन इस श्लोक में किया है। सामान्य रूप से श्रावकों के गुणों के दो भेद हैं-एक मूलगुण दूसरा उत्तरगुण। जो गुण उत्तर गुणों की उत्पत्ति में कारण होते हैं तथा जो संयम को चाहने वाले पुरुषों के द्वारा सबसे पहले धारण किये जाते हैं उनको मूलगुण कहते हैं और जो मूलगुणों के बाद में पाले जाते हैं उनको उत्तरगुण कहते हैं। अथवा जो मूलगुणों की अपेक्षा उत्कृष्ट हैं, इसलिये भी उत्तरगुण कहलाते हैं। तीन मकार, पाँच उदुम्बर फल का त्याग करना अष्टमूलगुण है और पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इनका पालन करना गुणव्रत कहलाता है। उत्तरगुण यह एकदेश संयम का भेद है। जो इन मूलगुण और उत्तरगुणों का ऐहिकसुख की अपेक्षा न करके निराकुलता से पालन करता है और अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु ये पंच परमेष्ठी कहलाते हैं, उनके चरणों की शरण है जिसके अर्थात् पंचपरमेष्ठी पर ही जिनकी दृढ़ भक्ति है वा पंच-परमेष्ठी के चरणों में ही अपने दुःख दूर करने के लिये अपनी आत्मा के समर्पण करने में योग्य समझता है, दान यजन प्रधान-पात्रादानादि चार प्रकार के दान को तथा नित्यमहादि पाँच प्रकार की पूजाओं को प्रधान रूप से करता है। क्योंकि दान और पूजा यह गृहस्थ का मुख्य धर्म है।

दाणं पूजा मुक्खं सावयधम्मं सावया तेण विणा।
झाणाज्झयणं मुक्खं जइधम्मं ण त्तं विणा तहा सोवि।।(रयण.)

मुनियों के लिये ध्यानाध्ययन मुख्य है। ध्यान और अध्ययन के बिना मुनि मुनि नहीं है। उसी प्रकार दान और पूजा यह गृहस्थ का मुख्य कर्तव्य है। और भी कहा है-

ध्यानेन शोभते योगी संयमेन तपोधनः।
सत्येन वचसा राजा गेही दानेन शोभते।।

ध्यान के द्वारा योगी, संयम के द्वारा तपस्वी, सत्यवचन के द्वारा राजा और दान के द्वारा गृहस्थ शोभित होता है।

इससे यह सिद्ध होता है कि श्रावक के दान और पूजन यह मुख्य कार्य है। तथा आजीविका के उपायभूत अन्य असि मसि आदि षट् कर्म गौण हैं।

आयुः श्रीवपुरादिकं यदि भवेत् पुण्यं पुरोपार्जितं,
स्यात्सर्व न भवेन्न तच्च नितरामायासितेऽप्यात्मनि।
इत्यार्याः सुविचार्य कार्यकुशलाः कार्येऽत्र मन्दोद्यमा,
द्रागागामिभवार्थमेव सततं प्रीत्या यतन्तेतराम्।।

यदि पूर्वजन्म में पुण्य उपार्जन किया है तो इस भव में भी दीर्घ आयु, लक्ष्मी, सुन्दर, निरोगशरीर आदि सम्पूर्ण सांसारिक सुखों की प्राप्ति होती है और यदि पूर्वभव में पुण्य उपार्जन नहीं किया है तो अत्यन्त प्रयत्न करने पर भी इस भव में उक्त सांसारिक सुखों की प्राप्ति नहीं हो सकती है। इस प्रकार कार्य करने में कुशल सज्जन पुरुष विचार करके इस लोक सम्बन्धी कार्यों में तो मन्द उद्यम करते हैं, थोड़ा प्रयत्न करते हैं। किन्तु आगामी काल में बहुत सुखों की प्राप्ति हो इसके लिये शीघ्र ही तथा प्रीतिपूर्वक सदैव अधिक प्रयत्न करते रहते हैं। अर्थात् सज्जन पुरुष पूजन व दानादिक धार्मिक कार्यों को मुख्य रूप से करते रहते हैं और आजीविका के उपायभूत कृष्यादिक को गौण रूप से करते हैं।

इसलिये श्रावक को दान और पूजन इन दोनों आवश्यक कर्त्तव्य कर्मों को प्रधान रूप से करना चाहिये। तथा जिस रीति से पूजनादिक धार्मिक कार्यों में बाधा न आवे इस रीति से दान पूजनादि के साधनभूत कृष्यादिक कर्मों को भी गौण रूप से करना चाहिये। ज्ञानसुधां पिपासुः-स्व-पर का भेद ज्ञान अर्थात् मैं कौन हूँ? दृष्टिगोचर होने वाले बाह्य पदार्थ क्या हैं? इनका स्वरूप क्या है? मैं चैतन्य अनन्त ज्ञान दर्शन

सुखादि का भोक्ता अविनाशी चिन्मय ज्योति और वह दृष्टिगोचर होने वाले शरीरादिक बाह्य पदार्थ मेरे से भिन्न हैं। इस प्रकार स्वपरान्तर भेदज्ञानरूपी अमृत का पिपासु (उपयोग करने की इच्छा करने वाला) श्रावक-देशसंयमी वा संयतासंयत होता है।

जो तसवहादु विरदो अविरदओ तह य थावरवहादो।
एक्क समयम्हि जीवो विरदाविरदो जिणेक्कमई।। (गो.जी.)

जो त्रस घात का तो त्यागी है और स्थावरघात का त्यागी नहीं है इसलिये एक समय में ही विरताविरत कहलाता है। इन गुण विशिष्ट मानव श्रावक कहलाता है।

इस प्रकार पंचम गुणस्थान का निर्देश करके उस गुणस्थान में होने वाले विकल्पों का तथा भाव और द्रव्य रूप से ग्यारह स्थानों के उपासक के मध्य में किसी एक पद का धारण करने वाले के सम्यग्दर्शन की विशुद्धि तथा महाव्रत के परिपालन की इच्छा यथाशक्ति जो प्राप्त करता है उसकी प्रशंसा करते हैं।

रागादिक्षयतारतम्यविकसच्छुद्धात्मसंवित्सुख-
स्वादात्मस्वबहिर्बहिस्त्रसवधाद्यंहोव्यपोहात्मसु।
सद्दृग्दर्श निकादिदेशविरतिस्थानेषु चैकादश-
स्वेकं यः श्रायते यतिव्रतरतस्तं श्रद्दधे श्रावकम्।।(16)।।

भावार्थ : प्रतिमाओं का अंतरंग स्वरूप और बाह्य स्वरूप का वर्णन इस श्लोक में किया गया है। क्योंकि व्रत बाह्य और अंतरंग के भेद से दो प्रकार के होते हैं। रागद्वेष और मोह के सर्वघाति स्पर्द्धकों के उदयाभावी क्षय की तथा देशघाति स्पर्द्धकों के उदय की हीनाधिकता के अनुसार व्यक्त होने वाली निर्मल चिद्रूप आत्मानुभूति से उत्पन्न होने वाले सुख का अनुभव अर्थात् स्वसंवेदन से स्व का अनुभव तो प्रतिमाओं का अंतरंग स्वरूप है और मन वचन काय से रागद्वेष के कार्यभूत स्थूल त्रस हिंसादिक पाँचों पापों का देव शास्त्र गुरु तथा धर्म की साक्षी पूर्वक त्याग करना प्रतिमाओं का बाह्य स्वरूप है। इस प्रकार अंतरंग और बहिरंग स्वरूप से युक्त देशव्रत नामक पञ्चम गुणस्थान के दार्शनिक व्रतिक सामायिक आदि ग्यारह प्रतिमाओं में से जो सम्यग्दृष्टि पुरुष हिंसादिक पाँच पापों का सर्वथा त्यागरूप मुनियों के धर्म में अनुरक्त होकर के अपनी शक्ति अनुसार क्रम का भंग न करके किसी एक स्थान को अर्थात् किसी एक प्रतिमा को धारण करता है उस पुरुष को मैं श्रद्धा की दृष्टि से देखता

हूँ। वही पुरुष अपने कर्तव्य कर्मों का भली प्रकार से पालन करता है ऐसा मैं मानता हूँ।

इस श्लोक में जो सम्यग्दृष्टि व्रती के लिये यतिव्रतः यह विशेषण दिया गया है उसका यह अभिप्राय है कि जैसे प्रासाद के ऊपर कलश चढ़ाया जाता है वैसे ही श्रावक धर्म रूपी महल के ऊपर मुनिधर्म रूपी कलश चढ़ाना चाहिये। क्योंकि जैसे कलश के बिना महल की शोभा नहीं उसी प्रकार मुनिधर्मरूपी कलश के बिना श्रावक धर्म की शोभा नहीं है। इसलिये जो जिस धर्म वा वस्तु का इच्छुक होता है उसका उसमें अनुराग होता ही है। जैसे मोदक का इच्छुक बालक का मोदक में अनुराग। जिसका मुनिपद में अनुराग नहीं है वह सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता है। सारांश यह है कि श्रावकधर्म के पालन के अनन्तर अवश्य ही मुनिधर्म को धारण करना चाहिये क्योंकि मुनिधर्म में अनुरागी होने से ही श्रावक धर्म के धारण की सार्थकता सिद्ध हो सकती है अन्यथा नहीं।

सब से क्लिष्ट-ज्येष्ठ-श्रेष्ठ उपलब्धियाँ

(चालः आत्मशक्ति..., भातुकली...)

सबसे क्लिष्ट सबसे ज्येष्ठ, सब से श्रेष्ठ आध्यात्मिकता।
शरीर इन्द्रिय-मन-आत्मा (का) विकास उत्तरोत्तर दुर्लभता।।
अनादि काल से भाव अशुद्ध से घन कर्म से निगोद में वास अनन्तकाल।
अनन्त जन्म-मरण अनन्त दुःख सहन करते जीव अनन्तानन्त।।
निगोदिया के जन्म मरण व अनन्त दुःख प्राप्त होना अति सुलभ।
किन्तु द्विइन्द्रियादि त्रस पर्याय पाना निगोदिया हेतु अति दुर्लभ।।
द्विइन्द्रिय से त्रीन्द्रिय होना भी होता दुर्लभ इससे परे चतुः इन्द्रिय दुर्लभ।
चतुः इन्द्रिय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय दुर्लभ इससे परे संज्ञी होना दुर्लभ।।
उत्तरोत्तर दुर्लभ से दुर्लभ है आर्य क्षेत्र के आर्य मानव उत्तम होना।
इससे भी दुर्लभ आत्मश्रद्धान होना स्वयं को सच्चिदानन्द मानना।।
आत्मज्ञान उत्तरोत्तर अधिक होना दुर्लभ से दुर्लभ उपलब्धि को पाना।
आत्मज्ञान युक्त अणुव्रती श्रावक होना उत्तरोत्तर दुर्लभ लाभ को पाना।।
दान दया सेवा परोपकार करना उत्तरोत्तर दुर्लभ देव शास्त्र गुरु सेवना।

सनम्र सत्यग्राही उदार मना ज्ञान वैराग्य से युक्त आत्म शुद्धि करना।।
उत्तरोत्तर आत्मशुद्धि करने हेतु सर्व परिग्रह त्यागी साधु बनना।
इससे पर उत्तरोत्तर दुर्लभ है ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि त्यागना।।
इससे भी उत्तरोत्तर दुर्लभ है समता शान्ति निस्पृहता पाना।
समस्त संकल्प विकल्प संक्लेश त्यागकर आत्मविकास में तन्मय होना।।
इस हेतु एकान्त मौन में आत्म लीनता बढाना उत्तरोत्तर दुर्लभतम।
ऐसी उपलब्धि राजा महाराजा चक्री इन्द्र को कभी भी होना असंभव।।
इसलिए तो राजा से ले इन्द्र तक ऐसे साधु के बनते भक्त।
उनकी सेवा भक्ति करके बनाना, चाहते हैं आध्यात्मिक।।
ऐसी आत्मलीनता से कर्म नाश से बनते हैं अरिहंत सिद्ध।
ये ही परम दुर्लभ इसे ही प्राप्त करना 'कनक' का लक्ष्य।।

भीलूड़ा, दि.22.03.2019 रात्रि-9.01

सन्दर्भ:-

इस लोक में ये सब प्राणी नाना गतियों में संस्थित अपने अपने कर्मरूप फाँसी के वशीभूत होकर मरते तथा उपजते रहते हैं।

पवनवलयमध्ये संभृतोऽत्यन्तगाढं
स्थितिजननविनाशालिङ्गिर्वस्तुजातैः।
स्वयमिह परिपूर्णोऽनादिसिद्धः पुराणः
कृतिविलयविहीनः स्मर्यतामेष लोकः।।(7)।।ज्ञानार्णव

इस लोक को ऐसा चिंतवन करना चाहिए कि, तीन वलयों के मध्य में स्थित है। पवनों से अतिशय गाढरूप घिरा हुआ है। इधर उधर चलायमान नहीं होता और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसहित वस्तु- समूहों से अनादि काल से स्वयमेव भरा हुआ है अर्थात् अनादिसिद्ध है, किसी का रचा हुआ नहीं है, इसी कारण पुराण है तथा उत्पत्ति और प्रलय से रहित है। इस प्रकार लोक को स्मरण करते रहो, यह लोकभावना का उपदेश है। यह लोक जीवादिक द्रव्यों की रचना है, जो (समस्तद्रव्य) अपने-अपने स्वभाव को लिये हुए भिन्न-भिन्न तिष्ठते हैं। उनमें आप एक आत्मद्रव्य है। उसका स्वरूप यथार्थ जान कर, अन्य पदार्थों से ममता छोडकर आत्मभावना करना ही

परमार्थ है। व्यवहार से समस्त द्रव्यों का यथार्थ स्वरूप जानना चाहिए, जिससे मिथ्याश्रद्धान दूर हो जाता है।

दुरन्तदुरितारातिपीडितस्य प्रतिक्षणम्।
कृच्छ्रान्नरकपातालतलाज्जीवस्य निर्गमः।।(1)

बुरा है अन्त जिसका ऐसे पापरूपी वैरी से निरन्तर पीडित इस जीव का प्रथम तो नरको के नीचे निगोदस्थान है, सो वहाँ की नित्यनिगोद से निकलना अत्यंत कठिन है।

तस्माद्यदि विनिष्क्रान्तः स्थावरेषु प्रजायते।
त्रसत्वमथवाप्नोति प्राणी केनापि कर्मणा।।(2)।।

उस नित्यनिगोद से निकला तो फिर पृथ्वीकायादि स्थावर जीवों में उपजता है। और किसी पुण्यकर्म उदय से स्थावर काय से त्रसगति पाता है।

यत्पर्याप्तस्तथा संज्ञीपञ्चक्षोऽवयवान्वितः।
तिर्यक्ष्वपि भवत्यङ्गी तन्न स्वाल्पाशुभक्षयात्।।(3)।।

कदाचित् त्रसगति भी पावे, तो तिर्यञ्च योनि में पर्याप्तता (पूर्णावयवसंयुक्तत्व) पाना कुछ न्यून पाप के क्षय से नहीं होता है अर्थात् बहुत पाप के क्षय होने पर होता है। उसमें भी मन सहित पञ्चेन्द्रिय पशु का शरीर पाना बहुत ही दुर्लभ है, तिस पर भी संपूर्ण अवयव पाना अतिशय दुर्लभ है।

नरत्वं यद्गुणोपेतं देशजात्यादिलक्षितम्।
प्राणिनः प्राप्नुवन्त्यत्र तन्मन्ये कर्मलाघवात्।।(4)।।

आचार्य महाराज कहते हैं कि, ये प्राणीगण संसार में मनुष्यपन और उसमें गुणसहितपना तथा उत्तम देश, जाति, कुल आदि साहित्य उत्तरोत्तर कर्मों के क्षय से पाते हैं। ये बहुत दुर्लभ हैं ऐसा मैं मानता हूँ।

आयुः सर्वाक्षसामग्री बुद्धिः साध्वी प्रशान्तता।
यत्स्यात्तत्काकतालीयं मनुष्यत्वेऽपि देहिनाम्।।(5)

जीवों के देश, जाति, कुलादि सहित मनुष्यपन होते भी दीर्घायु, पाँचों इन्द्रियों की पूर्ण सामग्री विशिष्ट तथा उत्तम बुद्धि, शीतल मंदकषायरूप परिणामों का होना काकतालीयन्याय के समान दुर्लभ जानना चाहिये। जैसे किसी समय तालका फल

पक कर गिरे और उस ही समय काकका आना हो एवं वह उस फल को आकाश में ही पाकर खाने लगे। ऐसा योग मिलना अत्यन्त कठिन है।

ततो निर्विषयं चेतो यमप्रशमवासितम्।

यदि स्यात्पुण्ययोगेन न पुनस्तत्त्वनिश्चयः।।(6)।।

कदाचित् पुण्य के योग से उक्त सामग्री प्राप्त हो जावें तो विषयों से विरक्त या व्रतरूप परिणाम तथा यम-प्रशमरूप शुद्ध भावों सहित चित्त का होना बड़ा कठिन है। कदाचित् पुण्य के योग से इनकी प्राप्ति हो जाये, तो तत्त्वनिर्णय होना अत्यन्त दुर्लभ है।

अत्यन्तदुर्लभेष्वेषु दैवाल्लब्धेष्वपि क्वचित्।

प्रमादात्प्रच्यवन्तेऽत्र केचित्कामार्थलालसाः।।(7)।।

यद्यपि पूर्वोक्त सामग्री अत्यन्त दुर्लभ है तथापि यदि दैवयोग से प्राप्त हो जाय, तो अनेक संसारी जीव प्रमाद के वशीभूत होकर, काम और अर्थ में लुब्ध होकर सम्यग्मार्ग से च्युत हो जाते हैं और विषयकषाय में लग जाते हैं।

मार्गमासाद्य केचिच्च सम्यग्रत्नत्रयात्मकम्।

त्यजन्ति गुरुमिथ्यात्वविषव्यामूढचेतसः।।(8)।।

कोई कोई सम्यक् रत्नत्रय मार्ग को पाकर भी तीव्र-मिथ्यात्वरूप विष से व्यामूढ़ चित्त होते हुए सम्यग्मार्ग को छोड़ देते हैं। गृहीतमिथ्यात्व बड़ा बलवान् है, जो उत्तम मार्ग मिलें, तो उसको भी छुड़ा देता है।

स्वयं नष्टो जनः कश्चित्कश्चिन्नष्टैश्च नाशितः।

कश्चित्प्रच्यवते मार्गाच्चण्डपाषाण्डशासनैः।।(9)।।

कोई कोई तो सम्यग्मार्ग से आप ही नष्ट हो जाते हैं। कोई अन्यमार्ग से च्युत हुए मनुष्यों के द्वारा नष्ट किये जाते हैं और कोई कोई प्रचण्ड पाखंडियों के उपदेशे हुए मतों को देखकर मार्ग से च्युत हो जाते हैं।

त्यक्त्वा विवेकमाणिक्यं सर्वाभिमतसिद्धिदम्।

अविचारितरम्येषु पक्षेष्वज्ञः प्रवर्त्तते।।(10)।।

जो मार्ग से च्युत अज्ञानी है, वह समस्त मनोवांछित सिद्धि के देने वाले विवेकरूपी चिन्तामणि रत्न को छोड़कर बिना विचार के रमणीक भासने वाले पक्षों में (मतों में) प्रवृत्ति करने लग जाता है।।10।।

अविचारितरम्याणि शासनान्यसतां जनैः।

अधमान्यपि सेव्यन्ते जिह्वोपस्थादिदण्डितैः।।(11)।।

जो पुरुष जिह्वा तथा उपस्थादि इन्द्रियोंसे दंडित है, ये अविचार से रमणीक भासनेवाले दुष्टों के चलाये हुए अधम मतोंको भी सेवन करते हैं। विषयकषाय क्या क्या अनर्थ नहीं कराते?

सुप्रापं न पुनः पुंसां बोधिरत्नं भवार्णवे।

हस्ताद्भ्रष्टं यथा रत्नं महामूल्यं महार्णवे।।(12)।।

यह जो बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-स्वरूप रत्नत्रय है, संसाररूपी समुद्र में प्राप्त होना सुगम नहीं है, किन्तु अत्यंत दुर्लभ है। इसको पाकर भी जो खो बैठते हैं, उनको हाथ में रक्खे हुए रत्न को बडे समुद्र में डाल देने पर जैसे फिर मिलना कठिन है, उसी प्रकार सम्यग्रत्नत्रयका पाना दुर्लभ है।

सुलभमिह समस्तं वस्तुजातं जगत्या-

मुरगसुरनरेन्द्रैः प्रार्थितं चाधिपत्यम्।

कुलबलसुभगत्वोद्दामरामादि चान्यत्।

किमुत तदिदमेकं दुर्लभं बोधिरत्नम्।।(13)।।

इस जगत् में (त्रैलोक में) समस्त द्रव्यों का समूह सुलभ है तथा धरणीन्द्र नरेन्द्र सुरेन्द्रों द्वारा प्रार्थना करने योग्य अधिपतिपना भी सुलभ है, क्योंकि ये सब ही कर्मों के उदय से मिलते हैं। तथा उत्तम कुल, बल, सुभगता, सुन्दर स्त्री आदिक समस्त पदार्थ सुलभ है; किन्तु जगत्प्रसिद्ध सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप बोधिरत्न अत्यंत दुर्लभ है। इस प्रकार बोधदुर्लभभावना का व्याख्यान पूर्ण किया।

इसका संक्षिप्त आशय ऐसा है कि, यदि परमार्थ से (निश्चय से) विचार किया जाय, तो जो पराधीन वस्तु होती है वह दुर्लभ है और स्वाधीन वस्तु सुलभ है। यह बोधि (रत्नत्रय) आत्मा का स्वभाव है, स्वाधीन सम्पत्ति है। जब अपने स्वरूप को जाने, तब तक कर्म के आधीन है। इस अपेक्षा से अपना बोधिस्वभाव पाना दुर्लभ है और कर्मकृत सब ही पदार्थ संसार में सुलभ हैं। सो आचार्य महाराजने व्यवहारनय

की प्रधनता से बोधिकी दुर्लभता वर्णन की है अर्थात् उत्तरोत्तर पर्यायें दुर्लभता से पाते पाते बोधिके योग्य उत्तम पर्याय पाना दुर्लभ है। उसमें भी बोधिका पाना दुर्लभ है। इस बोधिको प्राप्त होकर प्रमादादि के वशीभूत होकर नहीं खो देना चाहिए, ऐसा उपदेश है।

क्या सहायक है

इस बारे में यथार्थवादी अपेक्षाएँ रखना कि लक्ष्य तक पहुँचने में कितना समय लगेगा और यह कितना मुश्किल होगा।

अपनी प्रगति मापने के सटीक तरीक़े खोजना।

अपनी यात्रा में मील के पत्थरों का जश्न मनाना।

स्वस्थ तरीक़ों से नकारात्मक भावनाओं से निपटना।

प्रलोभन का प्रतिरोध करने की योजना बनाना।

लंबे समय तक नपी-तुली रफ़्तार रखना।

क्या सहायक नहीं है

यह उम्मीद करना कि आपको परिणाम तुरंत दिखेंगे।

यह मानना कि अगर चीज़ें तुरंत ही बेहतर नहीं होती है, तो आप प्रगति नहीं कर रहे है।

जश्न मनाने के लिए तब तक इंतज़ार करना, जब तक कि आप अपनी यात्रा के अंत तक न पहुँच जाएँ।

अपनी कुंठा और अधीरता से अपने व्यवहार को प्रभावित होने देना।

यह भविष्यवाणी करना कि आपके पास सभी तरह के प्रलोभनों का प्रतिरोध करने की पर्याप्त इच्छाशक्ति है।

शॉर्टकट की तलाश करना, ताकि आप लक्ष्य तक पहुँचने के लिए आवश्यक काम से बच सकें।

मानसिक शक्ति क़ायम रखना

सिर्फ़ यह पुस्तक पढ़ने और अपने शक्तिशाली होने की घोषणा करने से ही आपकी मानसिक शक्ति नहीं बढ़ जाएगी। इसके बजाय यह तो अपने जीवन में उन रणनीतियों को शामिल करने से बढ़ेगी, जो आपको आपकी पूरी क्षमता तक पहुँचने में

मदद करेंगी। जिस तरह आपको अपनी शारीरिक शक्ति क़ायम रखने के लिए मेहनत करने की ज़रूरत होती है और हमेशा बेहतरी की गुंजाइश होती है। अगर आपकी मानसिक मांसपेशियों का रखरखाव या सुदृढ़ीकरण नहीं हो रहा है, तो वे क्षीण होने लगेंगी।

एक भी ऐसा इंसान नहीं है, जो ग़लतियाँ न करे और उसके बुरे दिन न हों। ऐसे मौके होंगे, जब आपकी भावनाएँ आप पर हावी हो जाएँगी; ऐसे मौक़े, जब आप ऐसे विचारों पर विश्वास कर लेंगे जो सच नहीं है और ऐसे अवसर होंगे, जब आप आत्म-विनाशकारी या अनुत्पादक व्यवहार में संलग्न होंगे। लेकिन जब आप अपनी मानसिक शक्ति बढ़ाने के लिए सक्रियता से काम करेंगे, तो ऐसे अवसर कम हो जाएँगे।

अपने कोच ख़ुद बनें

हर अच्छा कोच आपको बेहतर बनाने के लिए समर्थन और सलाह देता है। आपको भी अपने साथ ऐसा ही करना चाहिए। देखें कि आप क्या अच्छा कर रहे है; फिर अपनी शक्तियों को निखारें। उन क्षेत्रों को पहचानें, जहाँ बेहतरी की गुंजाइश है और फिर ख़ुद को बेहतर बनने की चुनौती दें। विकास के अवसर खोजते रहें, लेकिन यह जान लें कि आप कभी आदर्श नहीं बनेंगे। इन क़दमों का अनुसरण करके हर दिन थोड़ा बेहतर बनने की कोशिश करेंः

अपने व्यवहार की निगरानी करें-ऐसे अवसरों की तलाश करें, तब आपका व्यवहार मानसिक शक्ति हासिल करने की कोशिशों पर पानी फेर देता है, मिसाल के तौर पर, वही ग़लतियाँ दोहराना, परिवर्तन से घबराना या पहली असफलता के बाद छोड़ देना। फिर ज़्यादा उत्पादक अंदाज़ में व्यवहार की रणनीतियाँ खोजें।

अपनी भावनाओं को नियंत्रित करें-ऐसे अवसरों की ताक में रहे, जब आप ख़ुद के लिए अफसोस करते हों, सुनियोजित जोखिम से डरते हों, ऐसा महसूस करते हों कि संसार किसी चीज़ के लिए आपका ऋणी है या हर एक को ख़ुश करने की चिंता करते हों। ऐसी भावनाएँ आपको अपनी पूरी क्षमता तक नहीं पहुँचते देती; इन्हें ऐसा न करने दें। याद रखें, आप जैसा महसूस करते हैं, अगर आप उसे बदलना चाहते हैं, तो इसके लिए आपको अपने सोचने और व्यवहार करने के तरीक़े को

बदलना होगा।

अपने विचारों के बारे में सोचें-अपने विचारों का सच्चा मूल्यांकन करने के लिए थोड़े अतिरिक्त प्रयास और ऊर्जा की ज़रूरत होती है। लेकिन अति सकारात्मक या अति नकारात्मक विचार इस बात को प्रभावित करेंगे कि आप कैसा महसूस करते हैं और व्यवहार करते हैं। वे मानसिक शक्ति की तलाश में हस्तक्षेप कर सकते हैं। कोई भी कार्ययोजना बनाने से पहले यह जाँच करें कि क्या आपके विचार यथार्थवादी है, ताकि आप अपने लिए सर्वश्रेष्ठ निर्णय ले सकें। पीछे रोकने वाले विश्वासों और विचारों को पहचानें, जैसे वे विचार जो दूसरों को अपनी शक्ति देने के लिए प्रोत्साहित करते हैं, नियंत्रण के बाहर की चीज़ों पर ऊर्जा बरबाद करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं, अतीत में अटके रहने के लिए प्रोत्साहित करते हैं या तुरंत परिणाम की उम्मीद करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। इनकी जगह पर ज़्यादा यथार्थवादी और उपयोगी विचार रख लें।

जिस तरह जिम में अच्छा प्रशिक्षक जिम के बाहर स्वस्थ जीवनशैली को प्रोत्साहित करता है, उसी तरह अच्छे कोच बनने का मतलब यह है कि आपको मानसिक शक्ति बनाने के लिए उसके अनुकूल जीवनशैली बनानी होगी। यदि आप अपने शरीर की सही देखभाल नहीं कर रहे हैं, तो मानसिक दृष्टि से शक्तिशाली बनना असंभव है। सही आहार न लेने और पर्याप्त नींद न लेने की वजह से भावनाओं का प्रबंधन, स्पष्टता से सोचना और उपयोगी व्यवहार करना मुश्किल हो जाता है। इसलिए एक ऐसा माहौल बनाने के लिए क़दम उठाएँ, जो आपको सफलता की मंज़िल तक पहुँचाने में सहायक हो।

हालाँकि मानसिक शक्ति हासिल करना एक व्यक्तिगत यात्रा है, लेकिन आपको यह बिलकुल अकेले करने की ज़रूरत नहीं है। दूसरों की मदद के बिना अपने सर्वश्रेष्ठ स्वरूप में आना मुश्किल होता है। जब भी ज़रूरत हो, सहायता माँगे और समर्थन करने वाले लोगों से खुद को घेर लें। कई बार दूसरे लोग ऐसी सलाहें और रणनीतियाँ बता सकते है कि कौन सी चीज़ उनकी मदद करती है। यदि वह चीज़ आपकी यात्रा में मदद कर सकती हो, तो उसे अपने जीवन में शामिल कर लें। अगर आप पाते हैं कि आपके मित्र और परिवार वाले आवश्यक समर्थन नहीं दे सकते है,

तो पेशेवर सहायता लें। प्रशिक्षित परामर्शदाता परिवर्तन के प्रयासों में आपकी मदद कर सकता है।

जैसे-जैसे आपकी मानसिक शक्ति बढ़ती है, आप ज़्यादा जागरूक बनेंगे कि मानसिक शक्ति बढ़ाने में हर व्यक्ति की रुचि नहीं होती। स्पष्ट रूप से आप किसी को उसका जीवन बदलने के लिए मजबूर नहीं कर सकते; यह उस व्यक्ति पर निर्भर करता है। लेकिन जो लोग मानसिक रूप से शक्तिशाली नहीं हैं, उनके बारे में शिकायत न करें। इसके बजाय दूसरों के लिए स्वस्थ रोल मॉडल बनें। अपने बच्चों को सिखाएँ कि मानसिक रूप से शक्तिशाली कैसे बना जाता है, क्योंकि वे योग्यताएँ वे बाहरी जगत् में नहीं सीख पाएँगे। लेकिन अगर आप अपने सर्वश्रेष्ठ स्वरूप में आने पर मेहनत करते हैं, तो आपके आस-पास के लोग, जिनमें आपके बच्चे शामिल है, गौर करेंगे।

मानसिक शक्ति विकसित करना हर चीज में सर्वश्रेष्ठ बनने के बारे में नहीं है। यह सबसे ज़्यादा पैसा कमाने या सबसे बड़ी उपलब्धियाँ हासिल करने के बारे में भी नहीं है। इसके बजाय मानसिक शक्ति विकसित करने का मतलब यह जानना है कि चाहे जो हो जाए, आप ठीक रहेंगे। चाहे आप गंभीर व्यक्तिगत समस्याओं का सामना कर रहे हों, आर्थिक संकट का सामना कर रहे हों, जब आप मानसिक रूप से शक्तिशाली होते हैं, तो आप किसी भी तरह की परिस्थिति के लिए सबसे अच्छी तरह तैयार होंगे। न सिर्फ़ आप जीवन की वास्तविकताओं से निपटने के लिए सबसे अच्छी तरह तैयार होंगे, बल्कि आप अपने मूल्यों के अनुसार जीने के लिए सक्षम होंगे, चाहे जीवन आपकी ओर कुछ भी फेंके।

जब आप मानसिक रूप से शक्तिशाली बनते है, तो आप अपने सर्वश्रेष्ठ स्वरूप में होंगे, आपमें वह करने का साहस होगा जो सही है, और आप जो हैं तथा जो हासिल करने में सक्षम हैं, उसमें सच्चा सुख महसूस करेंगे। **(13 काम जो समझदार लोग नहीं करते)**

निस्पृहता की पूर्णता हेतु मेरी साधना

(अन्तरंग 14 परिग्रह व बहिरंग 10 परिग्रह से पूर्ण विरक्त हेतु)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः आत्मशक्ति..., क्या मिलिए..., भातुकली...)

निस्पृहता हेतु करूँ मैं साधना, पूर्ण निस्पृहता है मेरी भावना।
इससे आती है साम्य भावना, जिससे होती आत्म-आराधना।।
इस हेतु ही करूँ दोनों परिग्रह त्याग, अन्तरंग तथा बहिरंग त्याग।
अन्तरंग चौदह व बहिरंग दश, विभाव अन्तरंग तो भौतिक बाह्य।। (1)
मिथ्यात्व व तीनों वेद अरति शोक, हास्य रति भय जुगुप्सा क्रोध।
मान, माया लोभ चौदह परिग्रह, इससे युक्त होते दश परिग्रह।।
क्षेत्र, वस्तु, हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य दासी, दास कुप्य व भाण्ड।
इसके अन्तर्गत सर्व बाह्य परिग्रह, चौबीस परिग्रह रिक्त बनूँ निस्पृह।। (2)
इसलिए धरा हूँ मैं निर्ग्रन्थ रूप, बाल ब्रह्मचारी गृहस्थ त्याग।
केशलोंच करूँ व पैदल भी चलूँ, करपात्र से खड़े खड़े आहार लूँ।।
याचना चन्दा चिट्टा कुछ न करूँ, ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि त्यागूँ।
माईक मंच पण्डाल पत्रिका होर्डिंग, साजसज्जा व गाजाबाजा त्यागूँ।। (3)
भौतिक निर्माण मन्दिर धर्मशाला, आडम्बर युक्त बाह्य प्रभावना।
इस हेतु न करूँ दबाव-प्रलोभन, निस्पृहता से करूँ मैं सभी काम।।
जन्म जयन्ति से ले आचार्य जयन्ति नहीं मनाऊँ न कराऊँ बोली।
दान देते भक्त शिष्य स्व प्रेरणा से, इससे होते ग्रन्थ प्रकाशन आदि।। (4)
नाम प्रसिद्धि हेतु कुछ न करूँ, विज्ञापन प्रचार प्रसार न करुँ।
जिससे लगे मुझे निस्पृहता में दोष, ऐसी धार्मिक प्रभावना न करुँ।।
इस हेतु मौन व एकान्त में रहूँ, प्रतिस्पर्द्धा भीड नकलची न बनूँ।
भावना भक्ति से जो आते भक्त-शिष्य, उन्हें ज्ञानदान व आशीर्वाद दूँ।। (5)
न करुँ भेदभाव धनी गरीबों में, छोटा-बड़ा अपना-पराया में।
सभी से निस्पृहता से साम्यभाव रखूँ, निन्दक असहयोगी से द्वेष न करुँ।।
नहीं आनेवालों से भी घृणा न करुँ, उनके लिए भी मंगलभावना करुँ।

मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ भाऊँ, स्वपर विश्व हित भावना भाऊँ।। (6)
मेरी ऐसे निस्पृह वृत्ति से अनेक भक्त शिष्य दान करते गुप्त से।
विविध प्रकार करते सेवादान, उनके भी होते विकास विभिन्न।।
इससे और भी बन रहा हूँ निस्पृह, ग्राम जंगल में करुँ निवास।
वर्षायोग शीत-ग्रीष्म योग करुँ, समय-शक्ति-बुद्धि का उपयोग करुँ।। (7)
इससे हो रही प्रभावना नाना, श्री संघ से ले देश नाना।
श्रद्धा प्रज्ञा व भावना-शान्ति, समन्वय संगठन-सहयोग मैत्री।।
इन सबसे मैं शिक्षा लेकर, निस्पृहता की साधना बढाऊँ निरंतर।
इससे शोध-बोध-लेखन वृद्धि, 'कनक' का लक्ष्य परम निस्पृह वृत्ति।। (8)

भीलूड़ा-13.03.2019 रात्रि-8.46

सन्दर्भः-

परिग्रहत्याग महाव्रत

यानपात्रमिवाम्भोधौ गुणवानपि मज्जति।
परिग्रहगुरुत्वेन संयमी जन्मसागरे।।(1)।।

जिस प्रकार नाव में पाषाणादिका बोझ बढने से गुणवान् अर्थात् रस्सी से बँधी हुई भी नाव समुद्र में डूब जाती है, उसी प्रकार संयमी मुनि यदि गुणवान् हैं तो भी परिग्रह के भार से संसाररूपी सागर में डूब जाता है।

बाह्यान्तर्भूतभेदेन द्विधा ते स्युः परिग्रहाः।
चिदचिद्रूपिणो बाह्या अन्तरङ्गास्तु चेतनाः।।(2)।।

बाह्य अन्तरंग भेद से परिग्रह दो प्रकार के हैं। बाह्य परिग्रह तो चेतन और अचेतन दो प्रकार के हैं और अन्तरंग परिग्रह केवल चेतनरूप ही हैं। क्योंकि वे सब आत्मा के परिणाम हैं।

दश ग्रन्था मता बाह्या अन्तरङ्गश्चतुर्दश।
तान्मुक्त्वा भव निः संगो भावशुद्ध्या भृशं मुने।।(3)।।

बाहर के परिग्रह तो दश हैं और अन्तरंग के परिग्रह चौदह है, सो हे मुने! इन दोनों प्रकार के परिग्रहों को छोड कर अत्यन्त निःसंग (निष्परिग्रहरूप) होओ।

वास्तु क्षेत्रं धान्यं द्विपदाश्च चतुष्पदाः।

शयनासनयानं च कुप्यं भाण्डममी दश।।(4)।।

वास्तु (घर), क्षेत्र (खेत), धन, धान्य, द्विपद (मनुष्य), चतुष्पद (पशु, हाथी, घोडे), शयनासन, यान, कुप्य और भांड ये बाहर के दश परिग्रह हैं।

निःसङ्गोऽपि मुनिर्न स्यात्समूर्च्छः संगवर्जितः।

यतो मूर्च्छैव तत्त्वज्ञैः संगसूतिः प्रकीर्तिता।।(5)।।

जो मुनि निः संग हो अर्थात् बाह्य परिग्रह से रहित हो और ममत्व करता हो वह निः परिग्रही नहीं हो सकता, क्योंकि तत्त्वज्ञानी विद्वानों ने मूर्च्छाको (ममत्वरूप परिणामों को) ही परिग्रह की उत्पत्ति का स्थान माना है।

स्वजनधनधान्यदाराः पशुपुत्रपुराकरा गृहं भृत्याः।

मणिकनकरचितशय्या वस्त्राभरणादि बाह्यार्थाः।।(6)।।

स्वजन, धन, धान्य, स्त्री, पशु, पुत्र, पुर, खानि, घर, नौकर, माणिक, रत्न, सोना, रूपा, शय्या, वस्त्र, आभरण इत्यादि सब ही पदार्थ बाह्य परिग्रह हैं।

''मिथ्यात्ववेदरागा दोषा हास्यादयोऽपि षट् चैव।

चत्वारश्च कषायाश्चतुर्दशाभ्यन्तरा ग्रन्थाः।।(7)।।

मिथ्यात्व 1, वेदराग, 3 हास्यादिक (हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा) 6, और क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय, इस प्रकार अन्तरंग के चौदह परिग्रह हैं।

संवृतस्य सुवृत्तस्य जिताक्षस्यापि योगिनः।

व्यामुह्यति मनः क्षिप्रं धनाशाव्यालविप्लुतम्।।(8)।।

जो मुनि संवर सहित हो, उत्तम चारित्र सहित हो तथा जितेन्द्रिय हो, उसका भी मन धनाशारूपी सर्प से पीडित होता हुआ तत्काल ही मोह को प्राप्त होता है; इस कारण धन की आशा अवश्य छोडनी चाहिये।

त्याज्य एवाखिलः सङ्गो मुनिभिर्मोक्तुमिच्छुभिः।

स चेत्त्यक्तं न शक्नोति कार्यस्तर्ह्यात्मदर्शिभिः।।(9)।।

मुक्त होने के इच्छुक मुनियों को समस्त प्रकार का परिग्रह अर्थात् सर्व पदार्थों

का संग छोडना चाहिये। कदाचित् अन्तरंग के परिग्रह में से कोई परिग्रह विद्यमान रहें तो जो आत्मदर्शी बडे मुनि हों उनकी संगति में रहें क्योंकि मुनि को समस्त संग त्यागकर ध्यानस्थ रहना कहा है। यदि ध्यानस्थ नहीं रहा जाय तो आचार्यों के साथ संघ में रहें।

नाणवोऽपि गुणा लोके दोषा शैलेन्द्रसन्निभाः।

भवन्त्यत्र न सन्देहः संगमासाद्य देहिनाम्।।(9)।।

इस लोक में जीवों के परिग्रह के प्राप्त होने से गुण तो अणुमात्र भी नहीं होते किन्तु दोष सुमेरु पर्वतसरीखे बडे-बडे होते हैं, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।

अन्तर्बाह्यभुवोः शुद्ध्योर्योगाद्योगी विशुद्ध्यति।

नह्येकं पत्रमालम्ब्य व्योम्नि पत्री विसर्पति।।(10)।।

योगी बाह्याभ्यन्तर दोनों प्रकार की शुद्धियों का योग होने से विशुद्ध होता है, किन्तु एक प्रकार की विशुद्धि से ही नहीं होता; जैसे पक्षी एक ही पंख के आलम्बन से आकाश में नहीं उड़ सकता, किन्तु दोनों पंखो के होने से ही उड़ सकता है। इसी प्रकार दोनों प्रकार की शुद्धि होने से ही मुनि निर्मल हो सकता है।

साध्वीयं स्याद्बहिः शुद्धिरन्तः शुद्ध्याऽत्र देहिनाम्।

फल्गुभावं भजत्येव बाह्या त्वाध्यात्मिकीं विना।।(11)।।

जीवों के बाह्य की शुद्धता अन्तरंग शुद्धता से उत्तम होती है और फलदायक है। क्योंकि अन्तरंग की आध्यात्मिकी शुद्धि के बिना बाह्यशुद्धि व्यर्थ ही रहती है अर्थात् निष्फल है।

संगात्कामस्ततः क्रोधस्तस्माद्धिंसा तयाऽशुभम्।

तेन श्वाभ्री गतिस्तस्यां दुःखं वाचामगोचरम्।।(12)।।

परिग्रह से काम (वांछा) होता है, काम से क्रोध, क्रोध से हिंसा, हिंसा से पाप और पाप से नरकगति होती है, उस नरकगति में वचनों के अगोचर अति दुःख होता है। इस प्रकार दुःख का मूल परिग्रह है।

संग एव मतः सूत्रे निः शेषानर्थमन्दिरं।

येनासन्तोऽपि सूयन्ते रागाद्या रिपवः क्षणे।।(13)।।

सूत्र-सिद्धान्त में परिग्रह ही समस्त अनर्थों का मूल माना गया है, क्योंकि जिसके होने से रागादिक शत्रु, न हों तो भी, क्षणमात्र में उत्पन्न जाते हैं।

रागादिविजयः सत्यं क्षमा शौचं वितृष्णता।

मुनेः प्रच्याव्यते नूनं सङ्गैर्व्यामोहितात्मनः।।(14)।।

परिग्रहों से मोहित मुनि के रागादिकों का जीतना, सत्य, क्षमा, शौच और तृष्णारहितपना आदि गुण नष्ट हो जाते हैं।

सङ्गाः शरीरमासाद्य स्वीक्रियन्ते शरीरिभिः।

तत्प्रागेव सुनिःसारं योगिभिः परिकीर्तितम्।।(15)।।

संसारी जीव शरीर को प्राप्त होकर ही परिग्रहों को ग्रहण करते हैं, सो योगी महात्माओं ने शरीर को पहिले ही निःसार कह दिया है।

हृषीकराक्षसानीकं कषायभुजगव्रजम्।

वित्तामिषमुपादाय धत्ते कामप्युदीर्णतां।।(16)।।

इन्द्रियरूपी राक्षसों की सेना और कषायरूपी सर्पों का समूह धनरूपी मांस को ग्रहण करके कोई ऐसी उत्कटता धारण करते हैं कि जो चिन्तवन में ही नहीं आती।

उन्मूलयति निर्वेदविवेकद्रुममञ्जरीः।

प्रात्यासत्ति समायातः सतामपि परिग्रहः।।(17)।।

यह परिग्रह निकट प्राप्त होने पर सत्पुरुषों के भी वैराग्य विवेकरूपी वृक्ष की मंजरियों का उन्मूलन कर देता है।

लुप्यते विषयव्यालैर्भिद्यते मारमार्गणैः।

रुध्यते वनिताव्याधैर्नरः सङ्गैरभिद्रुतः।।(18)।।

यह मनुष्य परिग्रहों से पीडित होकर विषयरूपी सर्पों से तो काटा जाता है, काम के बाणों से चीरा जाता है, और स्त्रीरूप व्याध से (शिकारी से) रोका जाता है, अर्थात् बाँधा जाता है।

यः संगपङ्कनिर्मग्नोऽप्यपवर्गाय चेष्टते।

स मूढः पुष्पनाराचैर्विभिन्द्यात्त्रिदशाचलम्।।(19)।।

जो प्राणी परिग्रह रूपी कीचड में फँसा हुआ भी मोक्ष प्राप्ति के लिये चेष्टा

(उपाय) करता है, वह मूढ फूलो के बाण से मेरुपर्वत को तोडना चाहता है।

भावार्थ-परिग्रह धारण करनेवालों को मोक्ष की प्राप्ति होना असंभव है।

अणुमात्रादपि ग्रन्थान्मोहग्रन्थिर्दृढीभवेत्।

विसर्पति ततस्तृष्णा यस्यां विश्वं न शान्तये।।(20)।।

अणुमात्र परिग्रह के रखने से मोहकर्म की ग्रन्थि (गाँठ) दृढ होती है और इससे तृष्णा की ऐसी वृद्धि हो जाती है कि उसकी शान्ति के लिये समस्त लोक के राज्य से भी पूरा नहीं पड़ता।

परीषहरिपुव्रातं तृच्छवृत्तैकभीतिदम्।

वीक्ष्य धैर्यं विभुञ्चन्ति यतयः सङ्गसङ्गताः।।(21)।।

परिग्रह रखनेवाले यति तुच्छवृत्तवालों को ही भय के देनेवाले परीषहरूपी शत्रुओं के समूह को देखते ही धैर्य को छोड़ देते हैं अर्थात् परिग्रही मुनि परिषहों के आने पर दृढ नहीं रह सकता, किन्तु मार्ग से हट जाता है।

सर्वसंगपरित्यागः कीर्त्यते श्रीजिनागमे।

यस्तमेवान्यथा ब्रूते स हीनः स्वान्यघातकः।।(22)।।

श्रीमज्जिनेन्द्र भगवान् के परमागम में समस्त परिग्रहों का त्याग ही महाव्रत कहा है, उसको जो कोई अन्यथा कहता है, वह नीच है तथा अपना और दूसरों का घातक है।

यमप्रशमजं राज्यं तपः श्रुतपरिग्रहं।

योगिनोऽपि विमुञ्चन्ति वित्तवेतालपीडिताः।।(23)।।

जो धनरूपी पिशाच से पीडित हैं ऐसे योगी मुनि भी यम, नियम व शान्त भावों से उत्पन्न राज्य को, तपको और शास्त्रस्वाध्यायादि के ग्रहण को छोड देते हैं।

पुण्यानुष्ठानजातेषु निःशेषाभीष्टसिद्धिषु।

कुर्वन्ति नियतं पुंसां प्रत्यूहं धनसंग्रहाः।।(24)।।

धनका संग्रह पुरुषों के पुण्य कार्यों से उत्पन्न हुई समस्त मनोवांछित को देनेवाली सिद्धियों में विघ्न करता है।

अत्यक्तसंगसन्तानो मोक्तुमात्मानमुद्यतः।

बध्नन्नपि न जानाति स्वं धनैः कर्मबन्धनैः।।(25)।।

नहीं तजी है परिग्रह की वासना जिसने ऐसा पुरुष अपने को मुक्त करने के लिये उद्यमी है, परन्तु अपना आत्मा परिग्रह के कारण कर्मों के दृढ़ बंधनों से बंधता है तो भी उसे नहीं जानता, क्योंकि परिग्रहलोलुप प्रायः अंधे के समान होता है।

अपि सूर्यस्त्यजेद्धाम स्थिरत्वं वा सुराचलः।

न पुनः संगसंकीर्णो मुनिः स्यात्संवृतेन्द्रियः।।(26)।।

कदाचित् सूर्य तो अपना प्रकाश छोड दे और सुमेरु पर्वत स्थिरता (अचलता) छोड दे यह तो संभव है; परन्तु परिग्रहसहित मुनि कदापि जितेन्द्रिय नहीं हो सकता।

बाह्यानपि च यः सङ्गान्परित्यक्तुमनीश्वरः।

स क्लीबः कर्मणां सैन्यं कथमग्रे हनिष्यति।।(27)।।

जो पुरुष बाह्य परिग्रह को भी छोडने में असमर्थ हैं वह नपुंसक (नामर्द वा कायर) आगे कर्मों की सेना कैसे हनेगा?

स्मरणभोगीन्द्रवल्मीकं रागाद्यरिनिकेतनं।

क्रीडास्पदमविद्यानां बुधैर्वित्तं प्रकीर्तितम्।।(28)।।

विद्वानों ने (ज्ञानी पुरुषों ने) धन को कामरूपी सर्प की बांबी तथा रागादि दुश्मनों के रहने का घर और अविद्याओं के क्रीडा करने के स्थानस्वरूप कहा है।

अत्यल्पे धनजम्बाले निमग्नो गुणवानपि।

जगत्यस्मिन् जनः क्षिप्रं दोषलक्षैः कलङ्क्यते।।(29)।।

थोडे से धनरूपी कीचड-सेवालमें फँसा हुआ गुणवान पुरुष भी इस जगत् में तत्काल लक्षावधि दोषों से कलंकित होता है।

भावार्थ-थोडे से भी धन से कालिमा लगती है।

सन्यस्तसर्वसंगेभ्यो गुरुभ्योऽप्यतिशङ्क्यते।

धनिभिर्धनरक्षार्थ रात्रावपि न सुप्यते।।(30)।।

धनाढ्य पुरुष समस्त परिग्रह के त्यागने वाले अपने गुरु से भी शंकायुक्त रहता है तथा धनकी रक्षा के लिये रात्री को साता भी नहीं।

भावार्थ-कोई मेरा धन न ले जाय ऐसी शंका उसे निरंतर रहती है।

सुतस्वजनभूपालदुष्टचौरारिविड्वरात्।

बन्धुमित्रकलत्रेभ्यो धनिभिः शङ्क्यते भृशं।।(31)।।

जो धनवान् होते हैं वे पुत्र, स्वजन, राजा, दुष्ट, चोर, वैरी, बन्धु, मित्र स्त्री अथवा परचक्र आदि से निरन्तर शंकित रहते हैं।

कर्म बध्नाति यज्जीवो धनाशाकश्मलीकृतः।

तस्य शान्तिर्यदि क्लेशाद्बहुभिर्जन्मकोटिभिः।।(32)।।

यह जीव धन की आशा से मलिन होकर जो कर्म बाँधता है, उस कर्म की शान्ति बहुत ही करोड़ों जन्म से और बड़े कष्ट से होती है, क्योंकि एक जन्म का बाँधा हुआ कर्म अनेक जन्मों में क्लेश भोगने पर ही छूटता है।

सर्वसंगविनिर्मुक्तः संवृताक्षः स्थिराशयः।

धत्ते ध्यानधुरां धीरः संयमी वीरवर्णिताः।।(33)।।

समस्त परिग्रहों से तो रहित हो और इन्द्रियों को संवररूप करनेवाला हो ऐसा स्थिरचित्त संयमी मुनि ही श्री वर्धमान भगवान् की कही हुई ध्यान की धुरा को धारण कर सकता है, क्योंकि ऐसे हुए विना ध्यान की सिद्धि नहीं होती।

सङ्गपङ्कात्समुत्तीर्णो नैराश्यमवलम्बते।

ततो नाक्रम्यते दुःखैः पारतन्त्र्यैः क्वचिन्मुनिः।।(34)।।

जो मुनि परिग्रहरूपी कर्दम से निकल गया हो वही निराशता का (निस्पृहताका) अवलंबन कर सकता है और उस निराशता के होने पर वह मुनि परतन्त्रतास्वरूप दुःखों से कदापि घेरा या दबाया नहीं जाता; सो ठीक ही है, आशारहित होने पर फिर पराधीनता का दुःख क्यों हो?

विजने जनसंकीर्णे सुस्थिते दुःस्थितेऽपि वा।

सर्वत्राप्रतिबद्धः स्यात्संयमी संगवर्जितः।।(35)।।

जो परिग्रह रहित संयमी है, वह चाहे तो निर्जन वन में रहो, चाहे वसती में रहो, चाहे सुख से रहो, चाहे दुःख से रहो, उसको कहीं भी प्रतिबद्धता नहीं है; अर्थात् वह सब जगह सम्बन्ध रहित निर्मोही रहता है।

दुःखमेव धनव्यालविषविध्वस्तचेतसां।

अर्जने रक्षणे नाशे पुंसां तस्य परिक्षये।।(36)।।

धनरूपी सर्प के विष से जिनका चित्त बिगड गया है, उन पुरुषों को धनोपार्जन में, रक्षा करने में अथवा नाश होने वा व्यय (खर्च) करने में सदैव दुःख ही होता।

स्वजातीयैरपि प्राणी सद्योऽभिद्रुयते धनी।
यथात्र सामिषः पक्षी पक्षिभिर्बद्धमण्डलैः।।(37)।।

जिस प्रकार किसी पक्षी के पास मांसका खंड हो तो वह अन्यान्य मांसभक्षी पक्षियों से पीडित वा दुःखित किया जाता है, उसी प्रकार धनाढ्य पुरुष भी अपनी जातिवालों से दुःखित वा पीडित किया जाता है।

आरम्भो जन्तुघातश्च कषायाश्च परिग्रहात्।
जायन्तेऽत्र ततः पातः प्राणिनां श्वभ्रसागरे।।(38)।।

जीवों के परिग्रह से इस लोक में तो आरम्भ होता, हिंसा होती है, और कषाय होते है; उससे फिर नरकरूपी सागर में पतन होता है।

न स्याद्ध्यातुं प्रवृत्तस्य चेतः स्वप्नेऽपि निश्चलं।
मुनेः परिग्रहग्राहैर्भिद्यमानमनेकधा।।(39)।।

जिस मुनि का चित्त परिग्रहरूपी पिशाचों से अनेक प्रकार पीडित है, उसका चित्त ध्यान करते समय कदापि स्वप्न में भी स्थिर (निश्चल) नहीं रह सकता।

सकलविषयबीजं सर्वसावद्यमूलं
नरकनगरकेतुं वित्तजातं विहाय।
अनुसर मुनिवृन्दानन्दि सन्तोषराज्य-
मभिलषसि यदि त्वं जन्मबन्धव्यपायम्।।(40)।।

जब आचार्य महाराज उपदेश करते हैं कि हे आत्मन्! यदि तू संसार के बंध का नाश करना चाहता है तो धन के समूह को छोड़कर मुनियों के समूह को आनंद देनेवाले सन्तोषरूपी राज्य को अंगीकार कर, क्योंकि धन का समूह समस्त इन्द्रियों के विषय का तो बीज है तथा समस्त पापों का मूल है और नरकनगर की ध्वजा है, सो ऐसे अनर्थकारी धन को छोड कर संतोष को अंगीकार कर, जिससे संसार का फंद कटता है।

एनः किं न धनप्रसक्तमनसां नासादि हिंसादिना
कस्तस्यार्जनरक्षणक्षयकृतैर्नादाहि दुःखानलैः।
तत्प्रागेव विचार्य वर्जय वरं व्यामूढ वित्तस्पृहां
येनैकास्पदतां न यासि विषयैः पापस्य तापस्य च।।(41)।।

हे व्यामूढ आत्मन्! जिनका मन धन में लवलीन है उन्होंने क्या हिंसादिक कार्यों से पापार्जन नहीं किया? तथा उस धन के उपार्जन, रक्षण व व्यय करने से दुःखरूपी अग्नि से कौन नहीं जला? इस कारण पहिले ही विचार कर इस धन की स्पृहा को (इच्छा को) छोड; जिससे तू विषयों सहित पाप ताप की एकता को प्राप्त न हो अर्थात् विषयों और पापतापों का संगी न हो।

एवं तावदहं लभेय विभवं रक्षेयमेवं तत
स्तद्वृद्धिं गमयेयमेवमनिशं भुञ्जीय चैवं पुनः।
द्रव्याशारसरुद्धमानस भृशं नात्मानमुत्पश्यसि
क्रुद्धयत्क्रूरकृतान्तदन्तपटलीयन्त्रान्तरालस्थितम्।।(42)।।

हे आत्मन्! धन की आशारूपी रसमें मन रुक जाने से तू ऐसा विचारता है कि 'प्रथम तो मैं धनोपार्जन कर सम्पदा को प्राप्त होऊँगा, फिर ऐसे उसकी रक्षा करूँगा, इस प्रकार उसकी वृद्धि करूँगा तथा अमुक प्रकार से उसको भोगकर व्यय करूँगा' इत्यादि विचार करता रहता है; परन्तु क्रोधायमान यमके दाँतो की दोनों पंक्तिरूपी चक्की के बीच में अपने को आया हुआ नहीं देखता, सो यह तेरा बड़ा अज्ञान है।

दिगंबर मुद्रा के सिवाय जो अन्य लिंगी है, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से संयुक्त है तथा वस्त्रमात्र के द्वारा परिग्रही हैं वे उत्कृष्ट श्रावक इच्छाकार कहने योग्य हैं अर्थात् उनसे इच्छामि या इच्छाकार करना चाहिए।

इच्छायारमहत्थं, सुत्तठिओ जो हु छंडए कम्मं।
ठाणे ठिय सम्मत्तं, परलोयसुहंकरो होई।।(14)।।अष्ट पा.

जो पुरुष सूत्र में स्थित होता हुआ इच्छाकार शब्द के महान् अर्थ को जानता है, आरंभ आदि समस्त कार्य छोड़ता है और सम्यक्त्वसहित श्रावक के पद में स्थिर रहता है वह परलोक में सुखी होता है।

अह पुण अप्पा णिच्छदि, धम्माइं करेइ णिरवेसाइं।

तहवि ण पावइ सिद्धिं, संसारत्थो पुणो भणिदो।।(15)।।

जो आत्मा को तो नहीं चाहता है किंतु अन्य समस्त धर्मादि कार्य करता है वह इतना करने पर भी सिद्धि को प्राप्त नहीं होता है वह संसारी कहा गया है।

एएण कारणेण य, तं अप्पा सद्दहेह तिविहेण।

जेण य लहेइ मोक्खं, तं जाणिज्जइ पयत्तेण।।(16)।।

इस कारण उस आत्मा का मन वचन काय से श्रद्धान करो। क्योंकि जिससे मोक्ष प्राप्त होता है उसे प्रयत्नपूर्वक जानना चाहिए।

बालग्गकोडिमेत्तं, परिगहगहणं ण होइ साहूणं।

भुंजेइ पाणिपत्ते, दिण्णण्णं इक्कठाणम्मि।।(17)।।

मुनियों के बाल के अग्रभाग के बराबर भी परिग्रह का ग्रहण नहीं होता है वे एक ही स्थान में दूसरों के द्वारा किये हुए प्रासुक अन्न को अपने हाथरूपी पात्र में ग्रहण करते हैं।

जहजायरूवसरिसो, तिलतुसमित्तं ण गिहदि हत्तेसु।

जइ लेइ अप्पबहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोदं।।(18)।।

जो मुनि यथाजात बालक के समान नग्न मुद्रा के धारक हैं वे अपने हाथ में तिलतुषमात्र भी परिग्रह ग्रहण नहीं करते। यदि वे थोड़ा बहुत परिग्रह ग्रहण करते हैं तो निगोद जाते हैं अर्थात् निगोद पर्याय में उत्पन्न होते हैं।

जस्स परिग्गहगहणं, अप्पं बहुयं च हवइ लिंगस्स।

सो गरहिउ जिणवयणे, परिगहरहिओ निरायारो।।(19)।।

जिस लिंग में थोड़ा बहुत परिग्रह का ग्रहण होता है वह निंदनीय लिंग है। क्योंकि जिनागम में परिग्रहरहित ही निर्दोष साधु माना गया है।

पंचमहव्वयजुत्तो, तिहिं गुत्तिहिं जो स संजदो होई।

णिग्गंथमोक्खमग्गो, सो होदि हु वंदणिज्जो य।।(20)।।

जो मुनि पाँच महाव्रत से युक्त और तीन गुप्तियों से सहित है वही संयमी होता है। वही निर्ग्रंथ मोक्षमार्ग है और वही वंदना करने के योग्य है।

दुइयं च उत्तलिंगं, उक्किट्ठं अवरसावयाणं च।

भिक्खं भमेइ पत्ते, समिदीभासेण मोणेण।।(21)।।

दूसरा लिंग ग्याहरवी प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावकों का है जो भिक्षा के लिए भाषा समिति अथवा मौनपूर्वक भ्रमण करते हैं और पात्र में भोजन करते हैं।

लिंगं इत्थीण हवदि, भुंजइ पिंडं सु एयकालम्मि।

अज्जिय वि एकवत्था, वत्थावरणेण भुंजेइ।।(22)।।

तीसरा लिंग स्त्रियों का अर्थात् क्षुल्लिकाओं का है। वे दिन में एक ही बार भोजन करती हैं। आर्यिका एक ही वस्त्र रखती है और वस्त्र सहित ही भोजन करती हैं।

णवि सिज्झइ वत्थधरो, जिणसासणे जइवि होइ तित्थयरो।

णग्गो विमोक्खमग्गो, सेसा उम्मग्गया सव्वे।।(23)।।

जिनशासन में ऐसा कहा है कि वस्त्रधारी यदि तीर्थंकर भी हो वह मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। एक नग्न वेष ही मोक्षमार्ग, बाकी सब उन्मार्ग है-मिथ्यामार्ग है।

लिंगम्मि य इत्थीणं, थणंतरे णाहिकक्खदेसेसु।

भणिओ सुहमो काओ, तासिं कह होइ पव्वज्जा।।(24)।।

स्त्रियों के योनि, स्तनों का मध्य, नाभि तथा कांख आदि स्थानों में सूक्ष्म जीव कहे गये हैं अतः उनके प्रव्रज्या-महाव्रतरूप दीक्षा कैसे हो सकती है?

जइ दंसणेण सुद्धा, उत्ता मग्गेण सावि संजुत्ता।

घोरं चरिय चरित्तं, इत्थीसु ण पव्वया भणिया।।(25)।।

स्त्रियों में यदि कोई सम्यग्दर्शन से शुद्ध है तो वह भी मोक्षमार्ग से युक्त कही गयी है। वह यद्यपि घोर चरित्र आचरण कर सकती है तो भी उसके मोक्षोपयोगी प्रव्रज्या नहीं कही गयी है।

भावार्थ-सम्यग्दृष्टि स्त्री सोलहवें स्वर्ग तक ही उत्पन्न हो सकती है, आगे नहीं। अतः उसके मोक्षमार्गोपयोगी दीक्षा विधान नहीं है। हाँ, आर्यिका का व्रत उन्हें प्राप्त होता है और उपचार से वे महाव्रत की धारक भी कही जाती है।

साहंति जं महल्ला, आयरियं जं महल्लपुव्वेहिं।

जं च महल्लाणि तदो, महव्वया महहे याइं।।(31)।।

जिन्हें महापुरुष धारण करते हैं, जो पहले महापुरुषों के द्वारा धारण किये गये हैं और जो महान हैं।

वयगुत्ती मणगुत्ती, इरियासमिदी सुदाणणिरवेक्खो।
अवलोयभोयणाए, अहिंसए भावना होंति।।(32)।।

1.वचनगुप्ति, 2. मनोगुप्ति, 3.कायगुप्ति, 4. सुदाननिक्षेप और 5. आलोकितभोजन अहिंसाव्रत की पाँच भावनाएँ हैं।

कोहभयहासलोहापोहाविवरीयभासणा चेव।
बिदियस्स भावणाए, ए पंचेव य तहा होंति।।(33)।।

क्रोधत्याग, भयत्याग, हासत्याग, लोभत्याग, और अनुवीचिभाषण (आगमानुकूल भाषण) के सत्यव्रत की भावनाएँ हैं।

महिलालोयणपुव्वरइसरणससत्तवसहित विकहाहिं।
पुट्ठियरसेहिं विरओ भावण पंचावि तुरियम्मि।।(34)।।

रागभावपूर्वक स्त्रियों के देखने से विरक्त होना, पूर्वरति के स्मरण का त्याग करना, स्त्रियों से संसक्त वसति का त्याग करना, विकथाओं से विरत होना और पुष्टिकर भोजन का त्याग करना ये पाँच ब्रह्मचर्य व्रतकी भावनाएँ हैं।

अपरिग्गहसमणुण्णेसु, सद्दपरिसरसरूवगंधेसु।
रायद्दोसाईणं परिहारो भावणा होंति।।(35)।।

मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध में रागद्वेष आदि का त्याग करना ये पाँच परिग्रहत्याग व्रत की भावनाएँ हैं।

जो मुनि पुण्य का श्रद्धान करता है, प्रतीत करता है, उसे अच्छा समझता है और बार-बार उसे धारण करता है उसका यह सब कार्य भोग का ही कारण है, कर्मो के क्षय का कारण नहीं है।

अप्पा अप्पम्मि रओ, रायादिसु सयलदोसपरिचत्तो।
संसारतरणहेदु, धम्मोत्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं।।(85)।।

रागादि समस्त दोषों से रहित होकर जो आत्मा आत्मस्वरूप में लीन होता है

वह संसारसमुद्र से पार होने का कारण धर्म है ऐसा श्री जिनेंद्रदेव ने कहा है।

अह पुण अप्पा णिच्छदि, पुण्णाइं करेदि णिरवसेसाइं।
तह वि ण पावदि सिद्धिं, संसारत्थो पुणो भणिदो।।(86)।।

जो मनुष्य आत्मा की इच्छा नहीं करता-आत्मस्वरूप की प्रतीति नहीं करता वह भले ही समस्त पुण्यक्रियाओं को करता हो तो भी सिद्धि को प्राप्त नहीं होता है। वह संसारी ही कहा गया है।

एएण कारणेण य, तं अप्पा सद्दहेहि तिविहेण।
जेण य लभेह मोक्खं, तं जाणिज्जह पयत्तेण।।(87)।।

इस कारण तुम मन वचन काय से उस आत्मा का श्रद्धान करो और यत्नपूर्वक उसे जानो जिससे कि मोक्ष प्राप्त कर सको।

मच्छो वि सालिसिक्थो, असुद्धभावो गओ महाणरयं।
इय णाउं अप्पाणं, भावह जिणभावणं णिच्चं।।(88)।।

अशुद्ध भावों का धारक **शालिसिक्थ नाम का मच्छ सातवें नरक गया ऐसा** जानकर हे मुनि! तू निरंतर आत्मा में जिनदेव की भावना कर।

बाहिरसंगच्चाओ, गिरिसरिदरिकंदराइं आवासो।
सयलो णाणज्झयणो, णिरत्थओ भावरहियाणं।।(89)।।

भावरहित मुनियों का बाह्य परिग्रह का त्याग, पर्वत, नदी, गुफा, खोह आदि में निवास और ज्ञान के लिए शास्त्रों का अध्ययन यह सब व्यर्थ है।

भंजसु इंदियसेणं, भंजसु मणोमक्कडं पयत्तेण।
मा जणरंजणकरणं, बाहिरवयसेव तं कुणसु।।(90)।।

तू इंद्रियरूपी सेना को भंग कर और मनरूपी बंदर को प्रयत्नपूर्वक वश कर। हे बाह्यव्रत के वेषको धारण करनेवाले! तू लोगों को प्रसन्न करनेवाले कार्य मत कर।

(भारतीय आध्यात्मिक ग्रन्थ व विदेशी साहित्य व चैनलों से भी प्रेरित)

मेरे आत्मविकास के सूत्र

(आध्यात्मिक-प्रायोगिक व अनुभूत)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः 1. आत्मशक्ति..., 2.क्या मिलिए...)

आत्मविश्वास करता हूँ मैं, मैं हूँ चैतन्यमय जीव द्रव्य।
मुझ में है अनन्त गुण पर्याय, आत्मविकास से बनूँगा शुद्ध जीव।।
आत्मविश्वास के अनुसार, मैं कर रहा हूँ आत्मज्ञान।
आत्मविकास हेतु दोनों से युक्त, कर रहा हूँ मैं पुरुषार्थ।।(1)

इस हेतु ही (मैं) कर रहा हूँ, स्व अनन्त गुण पर्यायों को परिशुद्ध।
इस हेतु ही कर रहा हूँ, आत्मा की अशुद्धियों को परिशुद्ध।
इसके लिए मैं कर रहा हूँ, राग-द्वेष-मोह को परिशुद्ध।
इसलिए मैं कर रहा हूँ ईर्ष्या-तृष्णा-घृणादि को परिशुद्ध।।(2)

इसलिए मैं कर रहा हूँ, सत्य-समता-शान्ति की साधना।
एतदर्थ मैं कर रहा हूँ, समस्त इच्छाओं की विराधना।।
इसलिए मैं कर रहा हूँ त्याग, ख्याति-पूजा-लाभ की कामना।
एकान्त मौन निस्पृह भाव से, कर रहा हूँ आत्म-आराधना।।(3)

एतदर्थ मैं कर रहा हूँ, शोध-बोध-प्रयोगात्मक स्वाध्याय।
स्व-अध्ययन ही मेरा स्वाध्याय है, इस हेतु करूँ अध्ययन।।
विनम्र सत्यग्राही उदारभाव से, गुण ग्रहण हेतु करूँ पुरुषार्थ।।
दुर्गुण परिहार करने हेतु कर रहा हूँ, स्व निन्दा व गर्हा से प्रायश्चित।।(4)

परनिन्दा अपमान से ले परचिन्ता करूँ मैं परिहार।
स्व-पर विश्वकल्याण हेतु करूँ मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ भाव।।
अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतिक्षा रहित, सनम्रसत्यग्राही दृढ़ता युक्त।
आत्मविश्वास संयम युक्त, आत्मविकास हेतु करूँ मैं पुरुषार्थ।।(5)

कौन क्या कहता क्या करता, इससे मैं न बनूँ प्रभावित।
हिताहित विवेक व गुणग्राहीकता से, करूँ मैं सदा आत्मविकास।

आत्मपरीक्षण आत्मविश्लेषण, आत्मानुशासन से करूँ आत्मविकास।
इस हेतु मैं स्व विश्वास युक्त, आत्मज्ञान से स्व को प्रेम करूँ।।(6)
स्वयं के द्वारा स्वयं के हेतु, स्वयं से/(में) मैं (कनक) विकास करूँ।
स्व अनन्त गुण प्राप्ति पर्यन्त, सतत 'कनक सूरी' पुरुषार्थ करूँ।।(7)

भीलूड़ा दि. 11.03.2019 रात्रि 11:41

सन्दर्भ-

सवीर्यध्यान का वर्णन

अनन्तगुणराजीवबन्धुरप्यत्र वञ्चितः
अहो भवमहाकक्षे प्रागहं कर्मवैरिभिः।।1।। ज्ञानार्णव

ध्यान करने का उद्यमी प्रथम ही ऐसा विचारे कि अहो देखो! यह बड़ा खेद है, जो मैं अनन्तगुण रूप कमलों का बन्धु अर्थात् विकास करने वाले सूर्य समान हूँ, तथापि इस संसार रूप वन में कर्मरूप शत्रुओं के द्वारा पूर्व में ठगा गया हूँ।

स्वविभ्रमसमुद्भूतै रागाद्यतुलबन्धनैः।
बद्धो विडम्बितः कालमनन्तं जन्मदुर्गमे।।2।।

तत्पश्चात् फिर विचारे कि मैंने अपने ही विभ्रम से उत्पन्न हुए रागादिक अतुल बंधनों से बंधे हुए अनन्तकाल पर्यन्त संसार रूप दुर्गम मार्ग में विडम्बनारूप होकर विपरीताचरण किया।

अद्य रागज्वरो जीर्णो मोहनिद्राद्य निर्गता।
ततः कर्मरिपुं हन्मि ध्याननिस्त्रिंशधारया।।3।।

फिर ऐसे विचारे कि इस समय मेरे रागरूपी ज्वर तो जीर्ण हो गया है। और मोहरूपी निद्रा निकल गई है, इस कारण ध्यानरूपी खड्ग की धार से कर्मरूपी वैरी को मारता हूँ।

आत्मानमेव पश्यामि निर्द्धूयाज्ञानजं तमः।
प्लोषयामि तथाऽत्युग्रं कर्मेन्धनसमुत्करम्।।4।।

तथा प्रबलध्यानरूपी वज्र से पाप रूप वृक्षों का क्षय (नाश) ऐसा करूँ कि जिससे फिर संसार में उत्पन्न होने रूप फल न दें।

जन्मज्वरसमुद्भूतमहामूर्च्छान्धचक्षुषा।

स्वविज्ञानोद्भवः साक्षान्मोक्षमार्गो न वीक्षितः।।6।।

फिर ऐसा विचारे कि संसार रूपी ज्वर से उत्पन्न हुई मूर्च्छा से अन्ध हो गये हैं नेत्र जिसके ऐसा जो मैं उसने अपने भेदविज्ञान से उत्पन्न हुए साक्षात् मोक्षमार्ग को नहीं देखा।

मयात्मापि न विज्ञातो विश्वलोकैकलोचनः।

अविद्याविषमग्राहदन्तचर्वितचेतसा।।7।।

अहो! मेरा आत्मा समस्त लोक को देखने के लिये एक अद्वितीय नेत्र है सो ऐसे को भी अविद्या (मिथ्याज्ञान) रूपी ग्राह के दाँतों से चर्वित किया गया है चित्त जिसका ऐसा होकर मैंने नहीं जाना।

परमात्मा परंज्योतिर्जगज्ज्येष्ठोऽपि वञ्चितः।

आपातमात्ररम्यैस्तैर्विषयैरन्तनीरसैः।।8।।

मेरा आत्मा परमात्मा है, परमज्योतिप्रकाशस्वरूप है, जगत् में ज्येष्ठ है, महान् है तो भी मैं वर्तमान देखने मात्र रमणीक और अन्त में नीरस ऐसे इन्द्रियों विषयों से ठगा गया हूँ।

अहं च परमात्मा च द्वावेतौ ज्ञानलोचनौ।

अतस्तं ज्ञातुमिच्छामि तत्स्वरूपोपलब्धये।।9।।

मैं और परमात्मा दोनों ही ज्ञाननेत्र वाले हैं, इस कारण अपने आत्मा को उस परमात्मा के स्वरूप की प्राप्ति के लिये जानने की इच्छा करता हूँ, इस प्रकार विचारे।

मम शक्त्या गुणग्रामो व्यक्त्या च परमेष्ठिनः।

एतावानावयोर्भेदः शक्तिव्यक्तिस्वभावतः।।10।।

अनन्तचतुष्टयादि गुणों का समूह मेरे तो शक्ति की अपेक्षा विद्यमान है और परमेष्ठी अरहन्त सिद्धों के व्यक्ति से प्रगट है। हम दोनों में यह शक्ति और व्यक्ति के स्वभाव से ही भेद है। वास्तव में शक्ति की अपेक्षा अभेद है।

''नासत्पूर्वाश्च पूर्वा नो निर्विशेषविकारजाः।

स्वाभाविकविशेषा ह्यभूतपूर्वाश्च तद्गुणाः।।1।।''

तद्गुण कहिये जो आत्मा के गुण हैं वे जिनके विशेष नहीं हैं और विकार से उत्पन्न हुए मतिज्ञानादिक हैं वे संसारी जीवों के साधारण है। सो ये गुण तो असत्पूर्व कहिये अपूर्व नहीं है। तथा पूर्व में नहीं भी थे, नवीन भी उत्पन्न होते हैं और स्वाभाविक हैं वे विशेष अनन्त ज्ञानादिक हैं। सो अभूतपूर्व हैं। पूर्व में कभी प्रगट नहीं हुए ऐसे नवीन हैं। **भावार्थ**-द्रव्य अनादि-निधन है। उनमें जो पर्याय है वे क्षण क्षण में उत्पन्न होते और विनशते हैं। उनमें त्रिकालवर्ती पर्याय है वे शक्ति की अपेक्षा सत्रूप एक ही काल में कहे जाते हैं और व्यक्ति की अपेक्षा जिस काल में जो पर्याय होता है वही सत्रूप कहा जाता है; तथा भूत भविष्यत् के पर्याय असत्रूप कहे जाते है। इस प्रकार शक्ति की अपेक्षा सत् का उत्पन्न होना, व्यक्ति की अपेक्षा असत् का उत्पन्न होना कहा जाता है। इसी प्रकार द्रव्य की अपेक्षा सत् का उत्पाद और पर्याय की अपेक्षा असत् का उत्पादन कहा जाता है। इसी प्रकार द्रव्य की अपेक्षा सत् का उत्पाद और पर्याय की अपेक्षा असत् उत्पादन कहा जाता है। यही इस श्लोक का आशय है। इस प्रकार आत्मद्रव्य में भी सामान्यता से मतिज्ञानादिक गुण भूतपूर्व कहे जाते हैं तथा अभूतपूर्व भी कहे जाते हैं। किन्तु वास्तव में अनन्तचतुष्टयादिक ही अभूतपूर्व कहे जाते है, ऐसे नयविभाग से वस्तु का स्वरूप जानना।

तावन्मां पीडयत्येव महादाहो भवोभ्दवः।

यावज्ज्ञानसुधाम्भोधौ नावगाहः प्रवर्तते।।11।

तत्पश्चात् ऐसा विचार करे कि जब तक ज्ञानरूपी समुद्र में मेरा अवगाह (स्नान करना) नहीं होता तब तक ही मुझे संसार से उत्पन्न हुआ दाह पीड़ित करता है।

अहं न नारको नाम न तिर्यग्नापि मानुषः।

न देवः किन्तु सिद्धात्मा सर्वोऽयं कर्मविक्रमः।।12।।

यदि शुद्ध निश्चयनय की दृष्टि से देखता हूँ तब न तो मैं नारकी हूँ, न तिर्यंच हूँ, न मनुष्य वा देव ही हूँ, किन्तु सिद्धस्वरूप हूँ। ये नारकादिक अवस्थाएँ हैं सो सब कर्म का विक्रम (पराक्रम) हैं। इस प्रकार भावना करें।

अनन्तवीर्यविज्ञानदृगानन्दात्मकोऽप्यहम्।

किं न प्रोन्मूलयाम्यद्य प्रतिपक्षविषद्रुमम्।।13।।

तत्पश्चात् इस प्रकार भावना करे कि मैं अनन्त वीर्य, अनंत विज्ञान, अनंत

दर्शन, अनंत आनन्दस्वरूप भी हूँ। इस कारण इन अनन्त वीर्यादिक के प्रतिपक्षी शत्रु कर्म हैं वे ही विष के वृक्ष के समान हैं, सो उन्हें क्या अभी जड़मूल से न उखाड़ूँ? अवश्य ही उखाड़ूँगा।।

अद्यासाद्य स्वसामर्थ्यं प्रविश्यानन्दमन्दिरम्।
न स्वरूपाच्यविष्येऽहं बाह्यर्थेषु गतस्पृहः।।14।।

फिर इस प्रकार भावना करे कि मैं अपने सामर्थ्य को इसी वक्त प्राप्त होकर आनन्द मन्दिर में प्रवेश करके अपने स्वरूप से कदापि च्युत न होऊँ, क्योंकि बाह्य पदार्थों में से नष्ट हो गई है वांछा जिसके ऐसा होकर जब मैं स्वरूप में स्थिर होता हूँ तब आनन्द रूप होने से अन्य की वांछा नहीं रहती, फिर उस स्वरूप से क्यों डिगूँ।

मयाद्यैव विनिश्चेयं स्वस्वरूपं हि वस्तुतः।
छित्त्वाप्यनादिसंभूतामविद्यावैरिवागुराम्।।15।।

तथा अनादि से उत्पन्न हुई अज्ञानतारूपी (कर्मरूपी) वैरी की फँासी को छिन्न करके इसी समय ही वास्तविक अपने स्वरूप का निश्चय करना चाहिये।

इस प्रकार ध्यान का उद्यम करने वाला अपने पराक्रम को संभाल कर प्रतिज्ञा करता है सो कहते हैं-

इति प्रतिज्ञां प्रतिपद्य धीरः समस्तरागादिकलङ्कमुक्तः।
आलम्बते धर्म्यमचञ्चलात्मा शुक्लं च यद्यस्ति बलं विशालं।।16।।

इस प्रकार पूर्वोक्त रीति से प्रतिज्ञा को अंगीकार करके धीर वीर चंचलतारहित पुरुष समस्त रागादिक रूप कलंक से रहित होकर धर्मध्यान का आलम्बन करता है और यदि उसकी सामर्थ्य उत्तम हो अर्थात् शुक्लध्यान के योग्य हो तो शुक्लध्यान का अवलम्बन करता है।

ध्येयं वस्तु वदन्ति निर्मलधियस्तच्चेतनाचेतनम्
स्थित्युत्पत्तिविनाशलाञ्छनयुतं मुर्त्तेतरं च क्रमात्।
शुद्धध्यानविशीर्णकर्मकवचो देवश्च मुक्तेर्वरः
सर्वज्ञः सकलः शिवः स भगवान्सिद्धः परो निष्कलः।।17।।

निर्मल बुद्धि पुरुष ध्यान करने योग्य वस्तु को ध्येय कहते हैं। अवस्तु ध्यान

करने योग्य नहीं है। वह ध्येय वस्तु चेतन अचेतन दो प्रकार की है। चेतन जो जीव है और अचेतन धर्मादिक पाँच द्रव्य हैं। ये सब द्रव्य (वस्तु) स्थिति, उत्पत्ति और विनाश लक्षण से युक्त हैं। सर्वथा नित्य वा सर्वथा अनित्य नहीं है, अर्थात् उत्पादव्ययध्रौव्य सहित हैं। तथा मूर्तिक अमूर्तिक भी हैं। पुद्गल मूर्तिक हैं, जीवादिक अमूर्तिक हैं, चैतन्य ध्येय, एक तो शुद्ध ध्यान से नष्ट हुआ है कर्मरूप आवरण जिसका ऐसा मुक्ति का वर सर्वज्ञदेव सकल अर्थात् देहसहित समस्त कल्याण के पूरक अरहंत भगवान् हैं, और पर कहिये दूसरे निष्कल अर्थात् शरीररहित सिद्ध भगवान् हैं।

अमी जीवादयो भावाश्चिदचिल्लक्षलाञ्छिताः।
तत्स्वरूपाविरोधेन ध्येया धर्मे मनीषिभिः।।18।।

ये जीवादिक षट् द्रव्य चेतन अचेतन लक्षण से लक्षित हैं सो धर्मध्यान में बुद्धिमान पुरुषों को इनके स्वरूप का अविरोध करके यथार्थ स्वरूप का ध्यान करना चाहिये।

ध्याने ह्युपरते धीमान् मनः कुर्यात्समाहितम्।
निर्वेदपदमापन्नं मग्नं वा करुणाम्बुधौः।।19।।

ध्यान के पूर्ण होने पर श्रीमान् पुरुष मन को सावधानरूप वैराग्य पद को प्राप्त करे अथवा करुणारूपी समुद्र में मग्न करे।

अथ लोकत्रयीनाथममूर्त्तं परमेश्वरम्।
ध्यातुं प्रक्रमते साक्षात्परमात्मानमव्ययम्।।20।।

अथवा तीन लोक के नाथ अमूर्तिक परमेश्वर परमात्मा अविनाशी का ही साक्षात् ध्यान करने का प्रारंभ करे।

त्रिकालविषयं साक्षाच्छक्तिव्यक्तिविवक्षया।
सामान्येन नयेनैकं परमात्मानमामनेत्।।21।।

शक्ति और व्यक्ति विवक्षा से तीन काल के गोचर साक्षात् सामान्य नय (द्रव्यार्थिक नय) से एक परमात्मा ही ध्यान करे, अभ्यास करे। **भावार्थ**- यद्यपि संसारी मुक्त की अपेक्षा से आत्मा में भेदनय से भेद है तथापि शक्ति व्यक्ति के सामान्य नय (द्रव्यार्थिक नय) की विवक्षा से त्रिकालवर्ती आत्मा एक ही हैं, संसारी मुक्त का भेद नहीं करता। अर्थात् संसार अवस्था में तो शक्तिरूप परमात्मा हैं और मुक्त

अवस्था में व्यक्तिरूप परमात्मा है। अभेदनय की अपेक्षा आत्मा में भेद नहीं है। इस प्रकार संसार अवस्था में भी आत्मा को सिद्धसमान ध्यावे।

साकारं निर्गताकारम् निष्क्रियं परमाक्षरम्।
निर्विकल्पं च निष्कम्पं नित्यमानन्दमन्दिरम्।।22।।
विश्वरूपमविज्ञातस्वरूपं सर्वदोदितम्।
कृतकृत्यं शिवं शान्तं निष्कलं करुणच्युतम्।।23।।
निःशेषभसम्भूतक्लेशद्रुमहुताशनम्।
शुद्धमत्यन्तनिर्लेपं ज्ञानराज्यप्रतिष्ठितम्।।24।।
विशुद्धादर्शसंक्रान्तप्रतिबिम्बसमप्रभृम्।
ज्योतिर्मयं महावीर्यं परिपूर्णं पुरातनम्।।25।।
विशुद्धाष्टगुणोपेतं निर्द्वन्द्वं निर्गतामयम्।
अप्रमेयं परिच्छिन्नं विश्वतत्त्वव्यवस्थितम्।।26।।
यदग्राह्यं बहिर्भावैर्ग्राह्यं चान्तर्मुखैः क्षणात्।
तत्स्वभावात्मकं साक्षात्स्वरूपं परमात्मनः।।27।।

परमात्मा कैसा है, उसका स्वरूप कहते हैं। प्रथम तो साकार (आकारसहित) है अर्थात् शरीराकार मूर्तिक है तथा निर्गताकार कहिए निराकार भी है। पुद्गल के आकार के समान उसका आकार नहीं है। निष्क्रिय (क्रिया से रहित) है, परमाक्षरस्वरूप है, विकल्परहित है, निष्कम्प है, नित्य है, आनन्द का घर है।।22।। तथा विश्वरूप है अर्थात् समस्त ज्ञेयों (पदार्थों) के आकार जिसमें प्रतिबिम्बत हैं, तथा अविज्ञातस्वरूप हैं, अर्थात् जिसका स्वरूप मिथ्यादृष्टियों ने नहीं जाना ऐसा है, तथा सदाकाल उदयरूप है, कृतकृत्य है अर्थात् जिसको कुछ भी करना नहीं रहा है, तथा शिव है, कल्याणरूप है, शान्त (क्षोभरहित) है, निष्कल कहिये शरीररहित है, तथा करुणच्युत कहिये शोकरहित हैं अथवा करणच्युत कहिये इन्द्रियरहित है।।23।। तथा समस्त भवों (जन्ममरणों) से उत्पन्न हुए क्लेशरूप वृक्षों को दग्ध करने के लिये अग्नि के समान है; तथा शुद्ध है, कर्मरहित है, और अत्यन्त निर्लेप है अर्थात् जिसके कोई कर्मरूपी लेप नहीं लगता, तथा ज्ञानरूपी राज्य में अर्थात् सर्वज्ञता में स्थित है।।24।।

तथा निर्मल दर्पण में प्राप्त हुए प्रतिबिम्ब की समान प्रभावाला है तथा ज्योतिर्मय है अर्थात् जिसका ज्ञान प्रकाश रूप है, तथा अनन्त वीर्ययुक्त है, तथा परिपूर्ण है, जिसके कुछ भी अवयव (अंश) घटते नहीं, तथा पुरातन है, अर्थात् किसी ने नया नहीं बनाया ऐसा है।।25।। तथा निर्मल सम्यक्त्वादि अष्ट गुणसहित हैं, निर्द्वद्व हैं, रागादिक से रहित हैं, रोगरहित है, अप्रमेय है, अर्थात् जिसका प्रमाण नहीं किया जा सकता, तथ परिज्ञात है अर्थात् भेदज्ञानी पुरुषों के द्वारा जाना हुआ है तथा समस्त तत्त्वों से व्यवस्थित है अर्थात् निश्चयरूप है।।26।। तथा बाह्यभावों से तो ग्रहण करने योग्य नहीं है, और अन्तरंगभावों से क्षणमात्र में ग्रहण करने योग्य है। इस प्रकार परमात्मा का स्वरूप है। सो यह स्वरूप संसार अवस्था में तो शक्तिरूप है, और मुक्त अवस्था में व्यक्तिरूप हैं, ऐसा जानकर ध्यानगोचर करना चाहिये।

अणोरपि च यः सूक्ष्मो महानाकाशतोऽपि च।
जगद्वन्द्यः स सिद्धात्मा निष्पन्नोऽत्यन्तनिर्वृतः।।28।।

जो सिद्धस्वरूप परमाणु से तो सूक्ष्मस्वरूप है, और आकाश से भी महान् है, वह सिद्धात्मा जगत् से वंदने योग्य है, निष्पन्न है, अत्यन्त सुखमय है।

यस्याणुध्यानमात्रेण शीर्यन्ते जन्मजा रुजः।
नान्यथा जन्मिनां सोऽयं जगतां प्रभुरच्युतः।।29।।

जिस के ध्यान मात्र से जीवों के संसार में उत्पन्न हुए रोग नष्ट हो जाते हैं, अन्य प्रकार नष्ट नहीं होते, यही यह त्रिभुवन का अविनाशी परमात्मा है।

विज्ञातमपि निःशेषं यदज्ञानादपार्थकम्।
यस्मिंश्च विदिते विश्वं ज्ञातमेव न संशयः।।30।।

जिस परमात्मा के जाने बिना अन्य समस्त जाने हुए पदार्थ भी निरर्थक है, और इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिसका स्वरूप जानने से समस्त विश्व जाना जाता है।

यत्स्वरूपापरिज्ञानान्नात्मतत्त्वे स्थितिर्भवेत्।
यज्ज्ञात्वा मुनिभिः साक्षात्प्राप्तं तस्यैव वैभवम्।।31।।

जिस परमात्मा के स्वरूप को जाने बिना आत्मतत्त्व में स्थिति नहीं होती है, और जिसको जान करके मुनिगणों ने उसके ही वैभव (परमात्मा के स्वरूप) को साक्षात् प्राप्त किया है।

स एव नियतं ध्येयः स विज्ञेयो मुमुक्षुभिः।
अनन्यशरणीभूय तद्गतेनातरात्मना।।32।।

मुक्ति की इच्छा करने वाले मुनिजनों को वह परमात्मा ही नियम से ध्यान करने योग्य है। अतएव अन्य समस्त शरण छोड़कर उसमें ही अपने अन्तरात्मा को प्राप्त करके जानना चाहिये।

अवाग्गोचरमव्यक्तमनन्तं शब्दवर्जितम्।
अजं जन्मभ्रमातीतं निर्विकल्पं विचिन्तयेत्।।33।।

जो वचन के गोचर नहीं, पुद्गल के समान इन्द्रियगोचर नहीं ऐसा अव्यक्त है; जिसका अन्त नहीं है, जो शब्द से वर्जित है अर्थात् जिसके शब्द नहीं, जिसके जन्म नहीं ऐसा अज है, तथा भवभ्रमण रहित है, ऐसे परमात्मा को जिस प्रकार निर्विकल्प हो उस प्रकार ही चिंतवन करें।

यद्बोधानन्तभागेऽपि द्रव्यपर्यायसंभृतम्।
लोकालोकं स्थितिं धत्ते स स्याल्लोकत्रयीगुरुः।।34।।

जिस परमात्मा के ज्ञान के अनन्तवें भाग में द्रव्यपर्यायों से भरा हुआ यह अलोकसहित लोक स्थित हैं, वही परमात्मा तीन लोक का गुरु है। **भावार्थ**-त्रिकालवर्ती अनन्त द्रव्यपर्यायों सहित यह लोकालोक जिस ज्ञान में एक कालपरमाणु के समान प्रतिभासता है, ऐसा केवलज्ञान जिस परमात्मा के है वही तीन लोक का स्वामी है।

तत्स्वरूपाहितस्वान्तस्तद्गुणग्रामरञ्जितः।
यो जयत्यात्मनात्मानं तस्मिंस्तद्रूपसिद्धयेः।।35।।

ध्यानी मुनि उस परमात्मा के स्वरूप में मन लगाकर उसके ही गुणग्रामों से रंजायमान हो उसमें ही अपने आत्मा को आपसे ही उस स्वरूप की सिद्धि के लिए जोड़ता है अर्थात् तल्लीन होता है।

इत्यजस्रं स्मरन्योगी तत्स्वरूपावलम्बितः।
तन्मयत्वमवाप्नोति ग्राह्यग्राहकवर्जितम्।।36।।

इस प्रकार निरन्तर स्मरण करता हुआ योगी (मुनि) उस परमात्मा के स्वरूप के अवलंबन से युक्त होकर उसके तन्मयत्व को प्राप्त होता है। कैसा होता है कि-यह

परमात्मा का रूप है, सो तो मेरे ग्रहण करने योग्य है, और मैं इसका ग्रहण करने वाला हूँ, ऐसे ग्राह्यग्राहक-भाव से वर्जित (रहित) होता है, अर्थात् द्वैतभाव नहीं रहता।

अनन्यशरणीभूय स तस्मिंल्लीयते तथा।
ध्यातृध्यानोभयाभावे ध्येयेनैक्यं यथा व्रजेत्।।37।।

वह ध्यान करने वाला मुनि अन्य सबका शरण छोड़कर उस परमात्मस्वरूप में ऐसा लीन होता है कि ध्याता और ध्यान इन दोनों के भेद का अभाव होकर ध्येय स्वरूप से एकता को प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ-ध्याता ध्यान ध्येय का भेद न रहें ऐसे लीन होता है।

सोऽयं समरसीभावस्तदेकीकरणं स्मृतम्।
अपृथक्त्वेन यत्रात्मा लीयते परमात्मनि।।38।।

जिस भाव में आत्मा अभिन्नता से परमात्मा में लीन होता है वह समरसी भाव आत्मा और परमात्मा का समानतास्वरूप भाव है सो उस परमात्मा और आत्मा को एक करने स्वरूप कहा गया है।

भावार्थ-इस समरसी भाव से ही आत्मा परमात्मा होता है।

अनन्यशरणस्तद्धि तत्संलीनैकमानसः।
तद्गुणस्तत्स्वभावात्मा स तादात्म्याच्च संवसन्।।39।।

जब आत्मा परमात्मा के ध्यान में लीन होता है तब एकीकरण कहा है। सो यह एकीकरण अनन्यशरण है अर्थात् परमात्मा के सिवाय अन्य आश्रय नहीं है उसमें ही जिसका मन लीन है ऐसा तथा तद्गुण कहिये उस परमात्मा के ही अनन्त ज्ञानादि गुण जिसमें है ऐसा है तथा उसका शुद्ध स्वरूप आत्मा ही है और तत्स्वरूपता में वह परमात्मा ही है। इस प्रकार परमात्मा के ध्यान से आत्मा परमात्मा होता है।

कटस्य कर्त्ताहमिति सम्बन्धः स्याद्द्वयोर्द्वयोः।
ध्यानं ध्येयं यदात्मैव सम्बन्धः कीदृशस्तदा।।40।।

यदि कोई ऐसा कहे कि मैं कट चटाई अथवा कडे आदि का कर्त्ता हूँ तो उस पुरुष और कटका कर्ता कर्म संबंध कहा जाता है। और ध्यान तथा ध्येय जब एक आत्मा ही हो तब दोनों भावों में क्या संबंध कहा जाय अर्थात् कुछ भी संबंध नहीं हैं

क्योंकि संबंध तो दो वस्तुओं में होता है, एक ही पदार्थ में संबंध संबंधीभाव नहीं होता।

यदज्ञानाज्जन्मी भ्रमति नियतं जन्मगहने
विदित्वां य सद्यस्त्रिदशगुरुतो याति गुरुताम्।
स विज्ञेयः साक्षात्सकलभुवनानन्दनिलयः
परं ज्योतिस्त्राता परमपुरुषोऽचिन्त्यचरितः।।41।।

जिस परमात्मा के ज्ञान बिना यह प्राणी संसार रूप गहन वन में नियम से भ्रमण करता है तथा जिस परमात्मा को जानने से जीव तत्काल इन्द्र से भी अधिक महत्ता को प्राप्त होता है, उसे ही साक्षात् परमात्मा जानना। वही समस्त लोक को आनन्द देने वाला निवासस्थान है, वही परम ज्योति (उत्कृष्ट ज्ञानरूप प्रकाश सहित) है और वही त्राता (रक्षक) है, परम पुरुष है, अचिन्त्यचरित है अर्थात् जिसका चरित किसी के चिन्तवन में नहीं आता ऐसा है।

मोक्ष मार्ग का स्वरूप

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः (1) मोक्षशास्त्र

सम्यक् दर्शन Right Darshana (belief) सम्यक् ज्ञान Right Jnana (Knowledge) सम्यक् चारित्र Right Charitra (Conduct) मोक्ष मार्गः the path to liberation.

Right belief, right knowledge, right conduct these together constitute the path to liberation.

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र ये तीनों मिलकर मोक्ष का मार्ग है।

नीतिकारों ने कहा है ''पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं'' अर्थात् पराधीनता में सर्वदा, सर्वथा सुख का अभाव है। क्योंकि जीव का शुद्ध स्वरूप पूर्ण स्वतंत्रतामय सुखस्वरूप है। इसलिए प्रत्येक जीव सुख चाहता है एवं दुःख से घबराता है। अतएव प्रत्येक जीव सुख की प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करता है। परन्तु सुख के उपाय स्वरूप सम्यक्श्रद्धा, सम्यक् परिज्ञान एवं सम्यक् आचरण के बिना सुख प्राप्त नहीं कर पाता है। इसलिए समन्तभद्र आचार्य ने सुख प्राप्ति के उपाय के लिए समीचीन धर्म बतलाते

हुए कहा है-

देशयामि समीचीनं, धर्म कर्म-निवर्हणम्।
संसारदुखतः सत्वान् यो धरत्युत्तमेसुखे।।(2)

मैं (समन्तभद्राचार्य) कर्मों के नाशक, अबाधित और उपकारी उस धर्म का कथन करूँगा जो प्राणियों को संसार के शारीरिक और मानसिक आदि दुःखों से निकालकर स्वर्ग और मोक्ष आदि के सुखों को प्राप्त कराता है।

सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि, धर्मधर्मेश्वरा विदुः।
यदीय-प्रत्यनी-कानि, भवन्तिभवद्धतिः।।(3)

जो प्राणियों को संसार के दुःखों से निकालकर स्वर्ग आदि के उत्तम सुखों को प्राप्त कराता है उसे धर्म बतलाया है। इसीलिए प्राणियों को संसार के दुःखों से छुड़ाकर स्वर्ग आदि के सुखों को प्राप्त कराने के कारण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र धर्म हैं तथा मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र अधर्म हैं क्योंकि ये प्राणियों को संसार के दुःखों में ही फँसाते हैं।

रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र) को धर्म या मोक्षमार्ग इसलिए कहते हैं कि इनसे जीव बंधन में नहीं पड़ता वरन् बंधन से मुक्त होता है। जैसा कि अमृतचन्द्र सूरि ने कहा है-

दर्शनमात्मविनिश्चितिरात्मपरिज्ञानमिष्यते बोधः।
स्थितिरात्मनि चरित्रं कुत एतेभ्यो भवति बंधः।। (216)

सम्यग्दर्शन आत्मा की प्रतीति को कहा जाता है। आत्मा का सम्यक् प्रकार ज्ञान करना बोध-सम्यग्ज्ञान कहलाता है। आत्मा में स्थिर होना अर्थात् लवलीन होना सम्यक् चारित्र कहा जाता है। इनसे बंध कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

आचार्य प्रवर कुन्दकुन्द देव ने मोक्ष मार्ग का संक्षिप्त सारगर्भित वर्णन करते हुए कहा है-

सम्मत्ताणाणं जुत्तं चारित्तं रागदोसपरिहीणं।
मोक्खस्स हवदि मग्गो भव्वाणं लद्ध बुद्धीणं।।(106)

सम्यक्त्व और ज्ञान से ही युक्त, न कि असम्यक्त्व और अज्ञान से युक्त, चारित्र ही-न कि अचारित्र, रागद्वेष रहित ही-न कि रागद्वेष सहित,

भाव से मोक्ष का ही न बंध का, मार्ग ही न कि अमार्ग, भव्यों को ही-न कि अभव्यों को लब्धबुद्धियों को, (ज्ञानियों को) ही न कि अलब्धबुद्धियों को, क्षीणकषायपने में ही होते है-न कि कषायसहितपने में। इस प्रकार आठ प्रकार से नियम यहाँ देखना (समझना)

''रत्नत्रय की परिभाषा''

श्रद्धानं दर्शनं सम्यग्ज्ञानं स्यादवबोधनम्।
उपेक्षणं तु चारित्रं तत्त्वार्थानां सुनिश्चितम्।।(4) (त.सा.)

तत्त्व-अपने-अपने यथार्थ स्वरूप से सहित जीव, अजीव आदि पदार्थों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन, उनका ज्ञान होना सम्यग्ज्ञान और रागादि भावों की निवृत्ति रूप उपेक्षा होना सम्यक् चारित्र सुनिश्चित है।

कुन्दकुन्द देव ने रत्नत्रय की परिभाषा करते हुए उपरोक्त सिद्धान्त का ही प्रकारान्तर से स्पष्टीकरण रूप से वर्णन निम्न प्रकार से किया है-

सम्मतं सद्दहणं भावाणं तेसिमधिगमो णाणं।
चारित्तं समभावो विसयेसु विरूढमग्गाणं।।(107)

भावों का श्रद्धान सम्यक्त्व है, उनका अवबोध ज्ञान है, मार्ग पर आरूढ़ होकर विषयों के प्रति अवर्तता हुआ समभाव चारित्र है।

धम्मादीसद्दहणं सम्मतं णाणमंगपुव्वगदं।
चेट्ठा तवम्हि चरिया ववहारो मोक्खमग्गोति।।(160)

धर्मास्तिकाय आदि का श्रद्धान सो सम्यक्त्व, अंगपूर्व सम्बन्धी ज्ञान सो ज्ञान और तप में चेष्टा सो चारित्र इस प्रकार व्यवहार मोक्षमार्ग है।

आतम को हित है सुख, सो सुख आकुलता बिन कहिये।
आकुलता शिवमाहिं न तातें, शिवमग लाग्यो चाहिये।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान चरण शिव मग सो द्विविध विचारो।
जो सत्यारथ रूप सो निश्चय कारण सो ववहारो।।(छहढाला)

सम्यग्दर्शन का लक्षण

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्।।(2)

Belief on conviction in things ascertained as they are, (is) right belief.)

तत्त्व-वस्तु के यथार्थ का संक्षिप्त वर्णन करते हुए कहा गया है कि रत्नत्रय ही मोक्षमार्ग है। अभी इस सूत्र में सम्यग्दर्शन की परिभाषा की गई है। विश्व में जो पदार्थ जिस रूप में अवस्थित है उसका उस रूप होना तत्त्व है। तत्त्व का जो अर्थ है उसको तत्त्वार्थ कहते हैं। उस तत्त्वार्थ का श्रद्धान (प्रतीति, विश्वास, रूचि) ही सम्यक् दर्शन है। जैन दर्शन की कुंजी स्वरूप द्रव्य संग्रह में कहा भी गया है-

जीवादिसद्दहणं सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु।
दुरभिणिवेसविमुक्कं णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि।।(41)

जीव आदि पदार्थों का जो श्रद्धान करता है वह सम्यक्त्व है और वह सम्यक्त्व आत्मा का स्वरूप है और इस सम्यक्त्व के होने पर संशय , विपर्यय तथा अनध्यवसाय इन तीनों दुरभिनिवेशों से रहित होकर ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

उपरोक्त सम्यग्दर्शन की परिभाषा अधिकतः द्रव्यानुयोगनिष्ठ है। समन्तभद्र स्वामी ने चरणानुयोग की मुख्यता करके रत्नकरण्ड श्रावकाचार में सम्यग्दर्शन की परिभाषा निम्न प्रकार की है-

श्रद्धानं परमार्थना-माप्तागमतपोभृताम्।
त्रिमूढ़ापोढ़-मष्टांगं सम्यग्दर्शन-मस्मयम्।।(4)

सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु का तीन मूढ़ता रहित, आठ अंग-सहित, आठ मद रहित जैसा का तैसा श्रद्धान सम्यग्दर्शन कहलाता है।

जीव अजीव तत्त्व अरू आस्रव, बन्धरू संवर जानो।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यों का त्यों सरधानो।
है सोई समकित ववहारी अब इन रूप बखानो।
तिनको सुन सामान्य विशेषै दृढ़ प्रतीत उर आनो।।(3)

केवलज्ञान की उत्पत्ति का कारण

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम्।(1)

केवल ज्ञान perfect knowledge (is gained) by destroying the मोहनीय deluding Karmas (in the end of the 10th गुणस्थान stage and

then by simultaneous destruction of knowledge and conation observing karmas ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय and of obstructive karmas अन्तराय in the end of 12th गुणस्थान stage.

मोह का क्षय होने से ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म का क्षय होने से केवलज्ञान प्रकट होता है।

इस मोक्षशास्त्र में नवें अध्याय तक जीव तत्त्व से लेकर संवर तत्त्व पर्यन्त वर्णन हुआ है। अवशेष मोक्षतत्त्व का वर्णन इस अध्याय में किया गया है। मोक्ष का अर्थ-मुक्त होना, स्वतंत्र होना, शुद्ध होना, बंधनों से रहित होना, पूर्ण स्वावलम्बी होना है।

जीव अनादि काल से मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्र के कारण संसार में परिभ्रमण करता है। योग्य अन्तरंग-बहिरंग कारणों को प्राप्त करके सम्यग्दृष्टि बनकर सम्यग्ज्ञानी होकर सम्यक्चारित्र को धारण करता है। पहले बहिरंग परिग्रहों को त्याग करके मुनि चारित्र को स्वीकार करता है। ऐसे ही निर्ग्रंथ तपोधन धर्मध्यान एवं शुक्लध्यान को लेकर क्षपक श्रेणी पर चढ़कर मोहनीय कर्म को नाश करके पुनः ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय कर्मों को नष्ट करके केवलज्ञान आदि को प्राप्त करते है। इसका विशेष खुलासा निम्न प्रकार है-

पूर्वोक्त विधि के साथ परम तपोविशेष के द्वारा प्रशस्त अध्यवसाय की प्रकर्षता से उत्तरोत्तर विशुद्ध होते हुए शुभ प्रकृतियों का अनुभाग बढ़ता है और अप्रशस्त-अशुभ अनुभाग कृश होकर विलीन हो जाता है। कोई वेदक सम्यग्दृष्टि अप्रमत्त गुणस्थान में सात प्रकृतियों के उपशम का प्रारम्भ करता है तथा सात प्रकृतियों का उपशम करके उपशम श्रेणी पर आरूढ़ होकर चारित्र मोहनीय कर्म को उपशम करना प्रारम्भ करता है। कोई असंयत सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानों में से किसी भी एक गुणस्थान के अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यक्त्वमिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति इन सात प्रकृतियों का उपशम करना प्रारंभ करता है, पुनः अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण परिणाम करके उपशम श्रेणी पर चढ़कर अपूर्वकरण-उपशमक व्यपदेश को प्राप्त कर वहाँ नवीन परिणामों में पापकर्मों की प्रकृति, स्थिति और अनुभाग को क्षीण कर शुभ कर्मों

के अनुभाग को बढ़ाते हुए अनिवृत्ति बादर साम्पराय उपशमक गुणस्थान में पहुँच जाता है। वहाँ नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, छहनोकषाय पुंवेद, अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान दो क्रोध, दो मान, दो माया, दो लोभ, क्रोध-मान-संज्वलन नामकर्म प्रकृतियों का क्रमशः उपशम करता हुआ सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान के प्रथम समय में अर्थात् नौवें गुणस्थान के अंत भाग में माया संज्वलन का उपशम कर देता है तथा संज्वलन लोभ को कृश कर सूक्ष्मसाम्पराय नामक दसवें गुणस्थान में पहुँच जाता है। पुनः उपशांत कषाय के प्रथम समय में लोभ संज्वलन का उपशम कर समस्त मोहनीय कर्म का उपशम हो जाने से उपशांत कषाय कहलाता है। इस गुणस्थान में यदि आयु का क्षय हो जाय तो मरण हो सकता है अथवा पुनः कषायों की उदीरणा हो जाने से गिर जाता है। पुनः वही साधक या दूसरा कोई जीव विशुद्धि के अध्यवसाय से अपूर्व उत्साह को धारण करते हुए पूर्व के समान क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर बड़ी भारी विशुद्धि से क्षायिक श्रेणी में आरूढ़ होकर पूर्वकथित लक्षण वाले अधःप्रवृत्त, अपूर्वकरण और अनिवृत्ति रूप तीन कारणों के द्वारा अपूर्वकरणक्षपक अवस्था को प्राप्त कर उससे आगे अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान, क्रोध, मान, माया और लोभ इन आठ कषायों को नष्ट कर नपुंसकवेद और स्त्रीवेद को उखाड़कर छह नोकषायों को पुरुषवेद में क्षेपण कर पुरुषवेद को क्रोध संज्वलन में, क्रोध संज्वलन को मान संज्वलन में, मान संज्वलन को माया संज्वलन में, और माया संज्वलन को लोभ संज्वलन में क्षेपण कर क्रम-क्रम से बादरकृष्टि विभाग से इनका क्षय करके अनिवृत्ति बादर साम्परायक क्षपक गुणस्थान में पहुँच जाता है। तदनन्तर लोभ संज्वलन कषाय को सूक्ष्म कर सूक्ष्म साम्परायक नामक दशम गुणस्थान को प्राप्त होता है। सूक्ष्म साम्पराय अवस्था का अन्तर्मुहूर्त तक अनुभव करके समस्त मोहनीय कर्म का निर्मूल क्षय करके क्षीण कषाय (वा क्षपक मोह) नामक गुणस्थान को प्राप्त कर मोहनीय कर्म का समस्त भार उतार करके फेंक देता है। वह क्षपक उस गुणस्थान के उपान्त्य समय में निद्रा और प्रचला कर्म का नाश कर अचिंत्यविभूतियुक्त केवलज्ञान एवं केवल दर्शन स्वभाव को निष्प्रतिपक्षी रूप से प्राप्त कर कमल की तरह निर्लिप्त एवं निर्लेप होकर साक्षात् त्रिकालवर्ती सर्व द्रव्य पर्यायों के स्वभाव का ज्ञाता सर्वत्र अप्रतिहत अनंतदर्शनशाली निरवशेष पुरुषार्थ को प्राप्त कर कृतकृत्य मेघ-पटलों से विमुक्त शरत्कालीन स्वकिरणकलापों से पूर्ण चन्द्रमा

के समान सौम्यदर्शन तथा देदीप्यमान मूर्ति केवली हो जाता है।

गोम्मट्टसार जीवकाण्ड में मोहक्षय की प्रक्रिया एवं केवलज्ञान प्राप्त करने का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है-

णिस्सेसखीणमोहो, फलिहामल भायणदुय समचित्तो।
खीणकसाओ भण्णदि, णिग्गंथो वीयरायेहिं।।(72)

जिस निर्ग्रंथ का चित्त मोहनीय कर्म के सर्वथा क्षीण हो जाने से स्फटिक के निर्मल पात्र में रखे हुए जल के समान निर्मल हो गया है उसको वीतराग देव ने क्षीण कषाय नाम का बारहवें गुणस्थानवर्ती कहा है।

जिस छद्मस्थ की वीतरागता के विरोधी मोहनीय कर्म के द्रव्य एवं भाव दोनों ही प्रकारों का अथवा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशरूप चारों भेदों का सर्वथा बंध, उदय, उदीरणा एवं सत्त्व की अपेक्षा क्षय हो जाता है वह बारहवें गुणस्थान वाला माना जाता है इसलिए आगम में इसका नाम क्षीण कषाय वीतराग छद्मस्थ ऐसा बताया है। यहाँ 'छद्मस्थ' शब्द अन्त्य दीपक है और 'वीतराग' शब्द नाम, स्थापना और द्रव्य वीतराग की निवृत्ति के लिए है। तथा यहाँ पर पाँच भावों में से मोहनीय के सर्वथा अभाव की अपेक्षा से एक क्षायिक भाव ही माना गया है।

तेरहवां गुणस्थान-

(सर्वज्ञ भगवान् का स्वरूप)

केवलणाणदिवायरकिरण-कलावप्पणासियण्णाणो।
णवकेवललद्धुग्गम सुजणियपरमप्पववएसो।।(63)
असहायणाणदंसणसहिओ इदि केवलि हु जोगेण।
जुत्तोति सजोगजिण, अणाइणिहणारिसेउत्तो।।(64)

जिसका केवलज्ञान रूपी सूर्य की अविभाग प्रतिच्छेद रूप किरणों के समूह (उत्कृष्ट अनंतानंत प्रमाण) अज्ञान अंधकार सर्वथा नष्ट हो गया हो और जिसको नव केवल लब्धियों के (क्षायिक-सम्यक्त्व, चारित्र, ज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य) प्रकट होने से परमात्मा यह व्यपदेश (संज्ञा) प्राप्त हो गया है, वह इन्द्रिय आलोक आदि की अपेक्षा न रखने वाले ज्ञानदर्शन से युक्त होने के कारण केवली और योग से युक्त रहने के कारण सयोग, तथा घाति कर्मों से रहित होने के कारण

जिन कहा जाता है ऐसा अनादि निधन आर्ष आगम में कहा है।

बारहवें गुणस्थान का विनाश होते ही जिसके तीन घाति कर्म और अघाति कर्मों की 16 प्रकृति, इस तरह कुल मिलाकर 63 कर्म प्रकृतियों के नष्ट होने से अनंत चतुष्टय-अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख और अनंतवीर्य तथा नव केवल लब्धि प्रकट हो चुकी हैं किन्तु साथ ही जो योग से भी युक्त है, उस अरिहंत परमात्मा को तेरहवें गुणस्थानवर्ती कहते हैं।

मोक्ष के कारण और लक्षण

बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः।।(2)

मोक्ष Liberation (is) the freedom from all Karmic matter, owing to the non existence of the cause of bondage and to the shedding (of all the Karmas).

बंध हेतुओं के अभाव और निर्जरा से सब कर्मों का आत्यन्तिक क्षय होना ही मोक्ष है।

मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग रूप बंध के कारणों का निरोध (अभाव) हो जाने पर नूतन कर्मों का आना (आस्रव) रुक जाता है क्योंकि कारण के अभाव में कार्य का अभाव होता ही है।

तप आदि निर्जरा के कारणों का सन्निधान (निकटता) होने पर पूर्व अर्जित (संचित) कर्मों का विनाश हो जाता है।

प्रश्न-कर्मबंध संतान जब अनादि है तो उसका अंत नहीं होना चाहिए? क्योंकि जो अनादि होता है उसका अंत नहीं होता तथा दृष्ट विपरीत (प्रत्यक्ष से विपरीत) की कल्पना करने पर प्रमाण का अभाव होता है।

उत्तर-अनादि होने से अंत नहीं होता ऐसा नहीं है, क्योंकि जैसे बीज और अंकुर की संतान अनादि होने पर भी अग्नि से अन्तिम बीज के जला देने पर उससे अंकुर उत्पन्न नहीं होते हैं, उसी प्रकार ध्यानाग्नि के द्वारा अनादिकालीन मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय आदि कर्मबंध के कारणों को भस्म कर देने पर भवांकुर का उत्पाद नहीं होता, अर्थात् भवांकुर नष्ट हो जाता है। यही मोक्ष है, इस दृष्ट बात का लोप नहीं कर सकते। कहा भी है जैसे-

दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं प्रादुर्भवति नाङ्कुरः।

कर्मबीजे तथा दग्धे न रोहति भवाङ्कुरः।।

''बीज के जल जाने पर अंकुर उत्पन्न नहीं होता, उसी प्रकार कर्म बीज के जल जाने पर भवांकुर उत्पन्न नहीं होता।''

कृत्स्न (सम्पूर्ण) कर्म का कर्म अवस्था रूप से क्षय हो जाना कर्मक्षय है, क्योंकि 'सत्' द्रव्य का द्रव्यत्व रूप से विनाश नहीं है किन्तु पर्याय रूप से उत्पत्तिमान होने से उनका विनाश होता है तथा पर्याय, द्रव्य को छोड़कर नहीं है अतः पर्याय की अपेक्षा द्रव्य भी व्यय को प्राप्त होता है, ऐसा कह दिया जाता है। क्योंकि पर्याय उत्पन्न और विनष्ट होती है अतः पर्याय रूप से द्रव्य का व्यय होता है। अतः कारणवशात् कर्मत्वपर्याय को प्राप्त पुद्गल द्रव्य का कर्मबंध के प्रत्यनीक (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप) कारणों के सन्निधान होने पर उस कर्मत्वपर्याय की निवृत्ति होने पर उसका क्षय हो जाता है, उस समय वह पुद्गल द्रव्य अकर्म पर्याय से परिणत हो जाता है। इसलिए कृत्स्न कर्म क्षय की मुक्ति कहना युक्त ही है।

हेदुमभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोधो।

आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोधो।।(50)

कम्मस्साभावेण य सव्वण्हू सव्वलोगदरिसी य।

पावदि इन्दियहिदं अव्वाबाहं सुहमणंतं।।(51) (पंचास्तिकाय)

कर्मों के आवरण से प्राप्त संसारी जीव का जो क्षायोपशमिक विकल्प रूप भाव है वह अनादिकाल से मोह के उदय के वश राग-द्वेष-मोह रूप परिणमता हुआ अशुद्ध हो रहा है यही भाव है। अब इस भाव से मुक्त होना कैसे होता है सो कहते हैं। जब यह जीव आगम की भाषा से काल आदि लब्धि को प्राप्त करता है तथा अध्यात्म भाषा से शुद्ध आत्मा के सन्मुख परिणाम रूप स्वसंवेदन ज्ञान को पाता है तब पहले मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियों के उपशम होने पर फिर उनका क्षयोपशम होने पर सराग सम्यग्दृष्टि हो जाता है। तब अर्हंत् आदि पंचपरमेष्ठी की भक्ति आदि के द्वारा पर के आश्रित धर्मध्यान रूप बाहरी सहकारी कारण के द्वारा मैं अनंत ज्ञानादि स्वरूप हूँ इत्यादि भावना स्वरूप आत्मा के आश्रित धर्मध्यान को पाकर आगम में कहे हुए क्रम से असंयत सम्यग्दृष्टि को आदि लेकर अप्रमत्त संयत पर्यंत चार गुणस्थानों के

मध्य में से किसी भी एक गुणस्थान में दर्शनमोह को क्षयकर क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो जाता है। फिर मुनि अवस्था में अपूर्वकरण आदि गुणस्थानों में चढ़कर आत्मा सर्व कर्म प्रकृति आदि से भिन्न है ऐसे निर्मल विवेकमई ज्योतिरूप प्रथम शुक्लध्यान का अनुभव करता है। फिर राग-द्वेष रूप चारित्र मोह के उदय के अभाव होने पर निर्विकार शुद्धात्मानुभव रूप वीतराग चारित्र को प्राप्त कर लेता है जो चारित्र मोह के नाश करने में समर्थ है। इस वीतराग चारित्र के द्वारा मोहकर्म का क्षय कर देता है-मोह के क्षय के पीछे क्षीण कषाय नाम बारहवें गुणस्थान में अंतर्मुहूर्त काल ठहरकर दूसरे शुक्लध्यान को ध्याता है। इस ध्यान से ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अन्तराय इन तीन घातिया कर्मों को एक साथ इस गुणस्थान के अन्त में जड़-मूल से दूरकर केवलज्ञान आदि अनंत चतुष्टय स्वरूप भाव मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

दंसणणाणसमग्गं झाण णो अण्णदव्वसंजुत्तं।

जायदि णिज्जरहेदू सभावसहिदस्स साधुस्स।।(152)

इस प्रकार वास्तव में इन (पूर्वोक्त) भावयुक्त (भाव मोक्ष वाले) भगवान् केवली को जिन्हें स्वरूप तृप्तने के कारण कर्मविपाक कृत सुख, दुःख रूप विक्रिया नष्ट हो गई है उन्हें-आवरण के प्रक्षीणपने के कारण, अनंत ज्ञानदर्शन से सम्पूर्ण शुद्धज्ञान चेतनामयपने के कारण तथा अतीन्द्रियपने के कारण जो अन्य द्रव्य के संयोग से रहित है और शुद्ध स्वरूप में अविचलित चैतन्यवृत्ति रूप होने के कारण जो कथंचित् 'ध्यान' नाम के योग्य है ऐसा आत्मा का स्वरूप (आत्मा की निज दशा) पूर्वसंचित कर्मों की शक्ति का शातन (क्षीणता) अथवा उनका पतन (नाश) देखकर, निर्जरा के हेतुरूप से वर्णन किया जाता है।

जो संवरेण जुत्तो णिज्जरमाणोध सव्वकम्माणि।

ववगदवेदाउस्सो मुयदि भवं तेण सो मोक्खो।।(153)

वास्तव में केवली भगवान् को, भावमोक्ष होने पर, परम संवर सिद्ध होने के कारण उत्तर कर्म संतति निरोध को प्राप्त होकर और परम निर्जरा का कारणभूत ध्यान सिद्ध होने के कारण पूर्व कर्म संतति कि जिसकी स्थिति कदाचित् स्वभाव से ही आयुकर्म के जितनी होती है और कदाचित् समुद्घात विधान से आयुकर्म के जितनी होती है-आयुकर्म के अनुसार ही निर्जरित होती हुई अपुनर्भव (सिद्धगति) के लिए

भव छूटने के समय होने वाला जो वेदनीय-आयु-नाम-गोत्ररूप कर्मपुद्गलों का जीव के साथ अत्यन्त विश्लेष (वियोग) है वह द्रव्यमोक्ष है।

ज्ञानावरण-दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चार घातिया कर्मों के क्षय से अरहंत केवली बनते हैं। तीर्थंकर केवली समोवशरण की विभूति के साथ उपदेश करके भव्य जीवों को मोक्षमार्ग का स्वरूप बताते हैं और सामान्य केवली गंध कुटी में विराजमान होकर भव्य जीवों को उपदेश देते हैं तीर्थंकर केवली नियम से जघन्य रूप से नौ वर्ष एवं उत्कृष्ट रूप से अंतर्मुहूर्त अधिक 8 वर्ष कम, एक पूर्व कोटी वर्ष तक उपदेश करते हैं। अंत में समवशरण या गंध कुटी का विसर्जन होता है-दिव्यध्वनि का भी (उपदेश देना) संकोच हो जाता है और केवली योग निरोध करते हैं। जो मुनिश्वर 6 महीना आयु शेष रहते केवल ज्ञान प्राप्त करते हैं और उनके नाम गोत्र एवं वेदनीय कर्म की स्थिति अधिक होती है वे केवली समुद्घात भी करते हैं। अन्त में ''अ इ उ ऋ लृ'' इन पाँच लघु अक्षर के उच्चारण काल प्रमाण अयोगी गुणस्थान (14वें) में जीव रहता है। उपान्त (द्विचरम, अन्तिम समय के पहले 1 समय) समय में 72 प्रकृतियों का एवं अन्तिम समय में 13 प्रकृतियों का नाश करके जीव सिद्ध, बुद्ध-नित्य निरंजन बन जाता है।

सीलेसिं संपत्तो, णिरूद्धणिस्सेसआसवो जीवो।
कम्मरयविप्पमुक्को, गय जोगो केवली होदि।।(65) गो.सा.

जो अठारह हजार शील के भेदों का स्वामी हो चुका है और जिसके कर्मों के आने का द्वार रूप आस्रव सर्वथा बन्द हो गया है तथा सत्त्व और उदय रूप अवस्था को प्राप्त कर्मरूप रज की सर्वथा निर्जरा होने से जो उस कर्म से सर्वथा मुक्त होने के सम्मुख है, उस योग रहित केवली को चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोग केवली कहते हैं।

अट्ठविहकम्मवियला, सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठगुणा किदकिच्चा, लोयग्गणिवासिणो सिद्धा।।(68)

जो ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों से रहित है, अनंतसुखरूपी अमृत के अनुभव करने वाले शांतिमय है, नवीन कर्मबंध के कारणभूत मिथ्यादर्शनादि भावकर्मरूपी अंजन से रहित है, सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, अव्याबाध, अवगाहन, सूक्ष्मत्व, अगुरुलघु, ये आठ मुख्य गुण जिनके प्रगट हो चुके हैं, कृतकत्य हैं-जिनको कोई

कार्य करना बाकी न रहा है, लोक के अग्रभाग में निवास करने वाले हैं, उनको सिद्ध कहते हैं।

औपशमिकादिभव्यत्वानां च।(3)

There is also non existence भाव or thought activity due to the operation, subsidence and the destruction subsidence and operation of the Karma and of भव्यत्व (i.e.the capacity of becoming liberated).

औपशमिक आदि भावों और भव्यत्व भाव के अभाव होने से मोक्ष होता है।

भव्यत्व का ग्रहण अन्य पारिणामिक भवों की अनिवृत्ति के लिए है। पारिणामिक भावों में जीवत्व भाव की मोक्ष में अनिवृत्ति के लिए भव्यत्व भाव का ग्रहण किया गया है। अतः पारिणामिक भावों में भव्यत्व तथा औपशमिकादि भावों का अभाव भी मोक्ष में हो जाता है।

सम्पूर्ण द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म के अभाव से, कर्म से जायमान औपशमिक, क्षायोपशमिक, औदयिक भावपूर्ण रूप से नष्ट हो जाते हैं। औपशमिक और औदयिक भावों का वर्णन तत्त्वार्थसूत्र के दूसरे अध्याय में सविस्तार से किया गया है। केवल इन भावों का ही अभाव नहीं होता है इसके साथ भव्यत्व भाव का भी अभाव हो जाता है। भव्यत्व भाव को आगम में कुछ स्थान में पारिणामिक भी कहा है। आगमानुसार पारिणामिक भाव का अभाव नहीं होता है। क्योंकि पारिणामिक भाव उसे कहते हैं जो कर्म के उदय, उपशम, क्षयोपशम एवं क्षय की अपेक्षा नहीं रखता हो। तब प्रश्न होता है कि भव्यत्व, पारिणामिक भाव होकर मोक्ष में क्यों नहीं रहता है? तब इसका उत्तर वीरसेन स्वामी ने धवला में आगमोक्त व तार्किक शैली से किया है। उनका तर्क यह है कि भव्यत्व भाव पूर्ण शुद्ध पारिणामिक भाव नहीं है कथञ्चित् कर्मजनित है और कथञ्चित् कर्म निरपेक्ष है। भव्य उसे कहते हैं जो भावी भगवान् है अथवा जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को धारण करने की योग्यता रखता है। मिथ्यात्वादि कर्म के उदय से जीव सम्यगरत्नत्रय को प्राप्त नहीं कर पाता है इसलिये अभव्यत्व भाव कर्म सापेक्ष है। इसी प्रकार मिथ्यात्वादि कर्म के क्षय, उपशम, क्षयोपशम के

निमित्त से सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है इस अपेक्षा से भव्यत्व भाव भी कर्म सापेक्ष है। सिद्ध अवस्था में सम्पूर्ण कर्म का अभाव होने से, तथा भव्य और अभव्यत्व की शक्ति या व्यक्ति की योग्यता के अभाव से सिद्ध जीव भव्य, अभव्य व्यपदेश से रहित होते हैं।

अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः। (4)

Otherwise there remain सम्यक्त्व perfect right belief ज्ञान Perfect right knowledge दर्शन perfect conation and सिद्धत्व the state of having accomplished all.

केवलसम्यक्त्व, केवलज्ञान दर्शन और सिद्धत्व भाव का अभाव नहीं होता।

कर्मबंधन से रहित होने के बाद जीव के सम्पूर्ण वैभाविक भाव नष्ट हो जाते है क्योंकि वैभाविक भाव के निमित्तभूत कारणों का अभाव हो जाता है। वैभाविक भाव के नष्ट होने पर स्वाभाविक भाव नष्ट नहीं होते परन्तु स्वाभाविक भाव पूर्ण शुद्ध रूप में प्रगट हो जाते हैं। तत्त्वार्थसार में कहा भी है-

ज्ञानावरणहानात्ते केवलज्ञानशालिनः।
दर्शनावरणच्छेदादुद्यत्केवलदर्शनाः।।(37)
वेदनीयसमुच्छेदादव्याबाधत्वमाश्रिताः।
मोहनीयसमुच्छेदात्सम्यक्त्वमचलं श्रिताः।।(38)
आयुः कर्मसमुच्छेदादवगाहनशालिनः।
नामकर्मसमुच्छेदात्परमं सौक्ष्म्यमाश्रिताः।।(39)
गोत्रकर्मसमुच्छेदात्सदाऽगौरवलाघवाः।
अन्तरायसमुच्छेदादनन्तवीर्यामाश्रिताः।।(40)

ये सिद्ध भगवान् ज्ञानावरण कर्म का क्षय होने से केवलज्ञान से सुशोभित रहते हैं, दर्शनावरण कर्म का क्षय होने से केवलदर्शन से सहित होते हैं, वेदनीय कर्म का क्षय होने से अव्याबाधत्व गुण को प्राप्त होते हैं, मोहनीय कर्म का विनाश होने से अविनाशी सम्यक्त्व को प्राप्त होते हैं, आयुकर्म का विच्छेद होने से अवगाहना को प्राप्त होते हैं, नामकर्म का उच्छेद होने से सूक्ष्मत्व गुण को प्राप्त है, गोत्रकर्म का

विनाश होने से सदा अगुरुलघु गुण से सहित होते हैं और अन्तराय का नाश होने से अनंत वीर्य को प्राप्त होते हैं।

सिद्धों की अन्य विशेषता-

तादात्म्यादुपयुक्तास्ते केवलज्ञानदर्शने।
सम्यक्त्वसिद्धतावस्था हेत्वभावच्च निःक्रियाः।।(43)

वे सिद्ध भगवान् तादात्म्य सम्बन्ध होने के कारण केवलज्ञान और केवलदर्शन के विषय में सदा उपयुक्त रहते हैं तथा सम्यक्त्व और सिद्धता अवस्था को प्राप्त हैं। हेतु का अभाव होने से वे निःक्रिया-क्रिया से रहित हैं।

सिद्धों के सुख का वर्णन-

संसारविषयातीतं सिद्धानामव्ययं सुखम्।
अव्याबाधमिति प्रोक्तं परमं परमर्षिभिः।।(45)

सिद्धों का सुख संसार के विषयों से अतीत, अविनाशी, अव्याबाध तथा परमोत्कृष्ट है ऐसा परम ऋषियों ने कहा है।

शरीर रहित सिद्धों के सुख किस प्रकार हो सकता है?

स्यादेतदशरीरस्य जन्तोर्नष्टाष्टकर्मणः।
कथं भवति मुक्तस्य सुखमित्युत्तरं श्रृणु।।(46)
लोके चतुर्ष्विहार्थेषु सुखशब्दः प्रयुज्यते।
विषये वेदनाभावे विपाके मोक्ष एव च।।(47)
सुखो वह्निः सुखो वायुर्विषयेष्विह कथ्यते।
दुःखाभावे च पुरुषः सुखितोऽस्मीति भाषते।।(48)
पुण्यकर्मविपाकाच्च सुखमिष्टेन्द्रियार्थजम्।
कर्मक्लेशविमोक्षाच्च मोक्षे सुखमनुत्तमम्।।(49)

यदि कोई प्रश्न करें कि शरीर रहित एवं अष्टकर्मों को नष्ट करने वाले मुक्त जीव के सुख कैसे हो सकता है तो उसका उत्तर यह है, सुनो। इस लोक में विषय, वेदना का अभाव, विपाक और मोक्ष इन चार अर्थों में सुख शब्द कहा जाता है। अग्नि सुख रूप है, वायु सुख रूप है, यहाँ विषय अर्थ में सुख शब्द कहा जाता है। दुःख

का अभाव होने पर पुरुष कहता है कि मैं सुखी हूँ यहाँ वेदना के अभाव में सुख शब्द प्रयुक्त हुआ है। पुण्य कर्म के उदय से इन्द्रियों के इष्ट पदार्थों से उत्पन्न हुआ सुख होता है। यहाँ विपाक-कर्मोदय में सुख शब्द का प्रयोग है और कर्मजन्य क्लेश से छुटकारा मिलने से मोक्ष में उत्कृष्ट सुख होता है। यहाँ मोक्ष अर्थ में सुख का प्रयोग है।

मेरी निवृत्ति व मेरी प्रवृत्ति

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल : सायोनारा...)

नहीं चाहिए नहीं चाहिए, स्व-स्वरूप बिन कुछ नहीं चाहिए।
सभी चाहिए सभी चाहिए, स्व-अनन्त गुण मुझे चाहिए।
सभी पर हैं सभी पर हैं, स्व-स्वरूप से परे सभी पर हैं।
सभी मेरे हैं सभी मेरे हैं, स्व-अनन्त वैभव सभी मेरे हैं।।(1)

सभी नास्ति है सभी नास्ति है, स्व चतुष्टय परे सभी नास्ति है।
सभी अस्ति है सभी अस्ति है, स्व चतुष्टय सभी मेरे अस्ति हैं।।
सभी त्यागूँ मैं सभी त्यागूँ मैं, समस्त विभावों को सदा त्यागूँ मैं।
सभी पाऊँ मैं सभी पाऊँ मैं, स्व-स्वभाव सभी सदा पाऊँ मैं।।(2)

सुख त्यागूँ मैं सुख त्यागूँ मैं, दुःखप्रद सांसारिक सुख त्यागूँ मैं।
सुख चाहूँ मैं सुख चाहूँ मैं, आध्यात्मिक अनन्त सुख चाहूँ मैं।।
ध्यान त्यागूँ मैं ध्यान त्यागूँ मैं, आर्तरौद्र ध्यान सदा त्यागूँ मैं।
ध्यान चाहूँ मैं ध्यान चाहूँ मैं, धर्मध्यान से शुक्ल ध्यान चाहूँ मैं।।(3)

सभी त्यागूँ मैं सभी त्यागूँ मैं, राग-द्वेष-मोह-मद-त्यागूँ मैं।
सभी पाऊँ मैं सभी पाऊँ मैं, सत्य-समता-शान्ति-शुचि पाऊँ मैं।।
सभी त्यागूँ मैं सभी त्यागूँ मैं, दीन-हीन-द्वन्द्व-अहं सभी त्यागूँ मैं।
सभी पाऊँ मैं सभी पाऊँ मैं, सरल-सहज-नम्र-मृदु पाऊँ मैं।।(4)

सभी त्यागूँ मैं सभी त्यागूँ मैं, अपना-पराया-शत्रु-मित्र भाव त्यागूँ मैं।
सभी पाऊँ मैं सभी पाऊँ मैं, सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया भाऊँ मैं।।
शून्य बनूँ मैं शून्य बनूँ मैं, द्रव्य-भाव-नोकर्म से शून्य बनूँ मैं।

पूर्ण बनूँ मैं पूर्ण बनूँ मैं, स्व-शुद्ध गुण पर्यायों से पूर्ण बनूँ मैं।।(5)
ये हैं मेरे लक्ष्य व साधना प्राप्य, इस हेतु तप त्याग व ध्यान।
अनुप्रेक्षा प्रयोग अनुभव साम्य, 'कनक' चाहे शुद्ध-बुद्ध-आनन्दघन।।(6)

भीलूड़ा दि. 10.03.2019 रात्रि 11:32

सन्दर्भ-

शिवत्व प्राप्ति के उपाय

स्वं परं चेति वस्तु त्वं, वस्तुरूपेण भावय।
उपेक्षा भावनोत्कर्ष, पर्यन्ते शिवमाप्नुहि।।(22) स्व. सं.

पद्यभावानुवाद- (चाल : आत्मशक्ति....)

स्व-पर तत्त्व के परिज्ञान से, वस्तु स्वरूप की भावना करो।
उपेक्षा भावना उत्कर्ष पर्यन्त करने से, शिवपद स्वयं प्राप्त करो।।

सिद्धत्तणेण ण पुणो उप्पण्णो एस अत्थपज्जाओ।
केवलभावं तु पडुच्च केवलं दाइयं सुत्ते।।(36)

यह केवलज्ञान रूप अर्थपर्याय सिद्धपने में उत्पन्न होती हैं। केवलभाव की अपेक्षा से यह कभी नष्ट नहीं होती। इस भाव को लेकर ही सूत्र में 'केवल' को शाश्वत बताया गया है। एक बार उत्पन्न होने के बाद वह कभी नष्ट नहीं होती। इसी प्रकार किसी प्रकार का आवरण भी उस पर नहीं आता। वास्तव में यह कथन व्यवहार दृष्टि से है, परमार्थ से तो वह अनादि, अनन्त है। जीव के स्वाभाविक गुण उसमें सदा, सर्वदा विद्यमान ही रहते हैं। इसलिए केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि शाश्वत ही हैं।

शुद्धोपयोग का फल पूर्ण स्वतंत्रता

तह सो लद्धसहावो सव्वण्हू सव्वलोगपदिमहिदो।
भूदो सयमेवादा हवदि सयंभु त्ति णिद्दिट्ठो।।(6)

आगे कहते हैं कि शुद्धोपयोग से उत्पन्न जो शुद्ध आत्मा का लाभ है उसके होने में भिन्न कारक की आवश्यकता नहीं है किन्तु अपने आत्मा ही के अधीन है।

(तह) तथा (सो आदा) वह आत्मा (सयमेव) स्वयं ही (लद्धसहावो भूदो)

स्वभाव का लाभ करता हुआ अर्थात् निश्चयरत्नत्रय लक्षणमय शुद्धोपयोग के प्रसाद से जैसे आत्मा सर्व का ज्ञाता हो जाता है वैसा वह शुद्ध आत्मा के स्वभाव का लाभ करता हुआ (सव्वण्हु) सर्वज्ञ व (सव्वलोयपदिमहिदो) सर्वलोक का पति तथा पूजनीय (हवदि) हो जाता है इसलिए वह (सयंभुति) स्वयंभू इस नाम से (णिद्दिट्ठो) कहा गया है।

भाव यह है कि निश्चय से कर्त्ता कर्म आदि छः कारक आत्मा में ही है। अभिन्न कारक की अपेक्षा यह आत्मा चिदानन्दमई एक चैतन्य स्वभाव के द्वारा स्वतन्त्रता रखने से स्वयं ही अपने भाव का कर्त्ता है तथा नित्य आनन्दमय एक स्वभाव से स्वयं अपने स्वभाव को प्राप्त होता है इसलिए यह आत्मा स्वयं ही कर्म है। शुद्ध चैतन्य स्वभाव से यह आत्मा आप ही साधकतम है अर्थात् अपने भाव से ही आपका स्वरूप झलकता है इसलिए यह आत्मा आप ही करण हैं। विकार रहित परमानन्दमयी एक परिणतिरूप लक्षण को रखने वाला शुद्धात्मभाव रूप क्रिया के द्वारा अपने आप को अपना स्वभाव समर्पण करने के कारण यह आत्मा आप ही संप्रदान स्वरूप है। तैसे ही पूर्व में रहने वाले मति श्रुत आदि ज्ञान के विकल्पों के नाश होने पर भी अखण्डित एक चैतन्य के प्रकाश के द्वारा अपने अविनाशी स्वभाव से ही यह आत्मा आपका (स्वयं का) प्रकाश करता है इसलिए यह आत्मा आप ही अपादान है तथा यह निश्चय शुद्ध चैतन्य आदि गुण स्वभाव का स्वयं ही आधार होने से आप ही स्वयं अधिकरण होता है। इस तरह अभेदषट्कारक से स्वयं ही परिणमन करता हुआ यह आत्मा परमात्मास्वभाव तथा केवलज्ञान की उत्पत्ति में भिन्न कारक की अपेक्षा नहीं रखता है इसलिए आप ही स्वयंभू कहलाता है।

समीक्षा-जैसे बीज में शक्ति रूप से वृक्ष निहित है उसी प्रकार प्रत्येक जीव में भी शक्ति रूप में परमात्मा निहित है। जब योग्य बीज को जलवायु, सूर्यकिरण आदि बाह्य निमित्त मिलते हैं तब वह सुप्तरूप वृक्ष जागृत होता है और शनैः शनैः वृद्धि को प्राप्त करता हुआ विशाल वृक्षरूप में परिणमन कर लेता है। इसी प्रकार प्रत्येक आत्मा में परमात्मा सुप्त रूप में गुप्त रूप में रहता है और योग्य अन्तरंग बहिरंग साधनों से वह आत्मा ही परमात्मा रूप से परिणमति होकर प्रकट हो जाता है। पूज्यपाद स्वामी ने इष्टोपदेश में कहा भी है-

योग्योपादानयोगेन दृषदः स्वर्णता मता।
द्रव्यादिस्वादिसंपत्तावात्मनोऽप्यात्मता मता।।(2)

जिस तरह सुवर्णरूप पाषाण योग्य बाह्य कारण, योग्य उपादानरूप कारण के सम्बन्ध से पाषाण (पत्थर) सुवर्ण हो जाता है, उसी तरह द्रव्यादि चतुष्टयरूप-सुद्रव्य, सुक्षेत्र, सुकाल और स्वभावरूप-सुयोग्य सम्पूर्ण सामग्री के विद्यमान होने पर निर्मल चैतन्य स्वरूप आत्मा की उपलब्धि हो जाती है।

गीता में नारायणकृष्ण ने भी कहा है-

योऽन्तः सुखोऽन्तरागरामस्तथान्तज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छिति।।(24)

जिसे आंतरिक आनन्द है, जिसके हृदय में शांति है, जिसे निश्चित रूप से अंतर्ज्ञान हुआ है वह ब्रह्मरूप हुआ योगी ब्रह्म निर्वाण पाता है।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वेधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः।।(25)

जिनके पाप नष्ट हो गये हैं, जिनकी शंकाएँ शांत हो गई हैं, जिन्होंने मन पर अधिकार कर लिए हैं और जो प्राणी मात्र के हित में ही लगे रहते हैं, ऐसे ऋषि ब्रह्म निर्वाण पाते हैं।

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाण वर्तते विदितात्मनाम्।।(26)

जो अपने को पहचानते हैं, जिन्होंने काम क्रोध को जीता है और जिन्होंने मन को वश किया है, ऐसे यतियों को सर्वत्र ब्रह्म निर्वाण ही है।

स्पर्शान्कृत्वा वहिर्बाह्याश्चक्षुवान्तरे ध्रुवोः।
प्राणपानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौः।।(27)
यतेन्द्रिय मनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एवं सः।।(28)

बाह्य विषय-भोगों का बहिष्कार करके, दृष्टि को भृकुटी के बीच में स्थिर करके, नासिका द्वारा आने-जाने वाले प्राण और अपान वायु की गति को एक समान

रखकर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि को वश में करके तथा इच्छा, भय और क्रोध से रहित होकर जो मुनि मोक्षपरायण रहता है, वह सदा मुक्त ही है।

महात्मा बुद्ध ने भी अपने धर्मोपदेश में इसी भाव को प्रकट करने वाली गाथाएँ कही थीं जिनका संकलन धम्मपद में किया गया है जो निम्न प्रकार है-

निट्ठङ् गतो असन्तासी वीततण्हो अनङ्‌ गणो।
अच्छिन्दि भवसल्लानि अन्तिमोयं समुस्सयो।।(18)

जिसने अर्हत्व पा लिया है, जो राग आदि के त्रास से निर्भीक है जो तृष्णा-रहित और निर्मल है, जिसने भव के शल्यों को काट दिया, यह उसका अन्तिम देह है।

सब्बाभिभू सब्बविदूहमस्मि सब्बेसू धम्मेसु अनूपलित्तो।
सब्बञ्जहो तण्हक्खये विमुत्तो सयं अभिञ्ञय कमुद्दिसेय्यं।।(20)

मैं (राग आदि) सभी को परास्त करने वाला हूँ, सभी बातों का जानकार हूँ, सभी धर्मों (इन्द्रिय तृष्णा आदि) में अलिप्त हूँ, सर्वत्यागी हूँ, तृष्णा के नाश से मुक्त हूँ, (विमल ज्ञान को) अपना ही जानकर मैं अब किसको अपना गुरु बतलाऊँ?

आत्मनिष्ठता से स्वाधीनता

सापि च स्वात्मनिष्ठत्वात्, सुलभा यदि चिन्त्यते।
आत्माधीने फले तात, यत्नं किं न करिष्यति।।(23)

पद्यभावानुवाद : (चाल : आत्मशक्ति...)

आकांक्षा भी आत्मनिष्ठ है ऐसा यदि तुम सुलभ से चिन्तन करो।
सुख पाना भी है आत्माधीन, अतएव इस हेतु यत्न करो।।

मुमुक्षु का कर्त्तव्य

अविद्याभिदुरं ज्योतिः परं ज्ञानमयं महत्।
तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं, तद् द्रष्टव्यं मुमुक्षुभिः।।(49)

पूर्वोक्त विषय को आचार्य श्री और भी बताते हैं-मुमुक्ष को सतत उस आनंद स्वरूप, ज्ञानमय, आत्म प्रकाशक अविद्या रूपी अंधकार को भेदन करने वाली परम चितज्योति, विघ्नों को छेदन करने वाला महान् विपुल, इन्द्रादि से पूज्यनीय चैतन्य

प्रकाश के बारे में तो गुरु आदि से सतत पूछना चाहिये तथा उसकी इच्छा करनी चाहिये एवं उसका ही अनुभव करना चाहिये। आचार्य गुरुदेव ने शिष्य के प्रति परम करूणा से प्लावित होकर शिष्य को आत्मतत्त्व के बारे में विशेष ज्ञान कराने के लिये व उसमें स्थिर करने के लिये आत्मतत्व का सविस्तार यहाँ वर्णन किया गया है।

समीक्षा-संसारी जीव अनादि अनन्त काल से स्व-आत्मस्वरूप को भूलकर-उससे दूर होकर, उससे च्युत होकर पर द्रव्य में ही रचा है, पचा है, अनुभव किया है और अपनाया है। अतएव ऐसे चिर-विस्मरणीय उपेक्षित स्व-आत्मद्रव्य और आत्मस्वरूप का ज्ञान, श्रद्धान, आचरण और उसकी उपलब्धि बहुत ही दुरूह है, क्लिष्टसाध्य है। कुन्दकुन्द देव ने कहा भी है-

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभी णवरि ण सुलभो विहत्तस्स।।4।। समयसार

(सुद) अनन्त बार सुनी गई है (परिचिदा) अनन्त बार परिचय में आई है (अणु भूदा) अनन्त बार अनुभव में भी आई है। (सव्व रस्स वि) सब ही संसारी जीवों के काम (भोग बंध कहा) काम शब्द से स्पर्शन और रसना, इन्द्रिय के विषय और भोग शब्द से घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रिय के विषय लिये गये हैं उनके बंध या संबंध की कथा अथवा बंध शब्द के द्वारा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंध एवं उसका फल नरनारकादि रूप लिया जा सकता है, इस प्रकार काम, भोग और बंध की कथा जो पूर्वोक्त प्रकार से श्रुत-परिचित और अनुभूत है इसलिए दुर्लभ नहीं किन्तु सुलभ है। (एयत्तस्स) परन्तु एकत्व का अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र के साथ एकता को लिए हुए परिणमन रूप जो निर्विकल्प समाधि उसके बल से अपने आपके अनुभव में आने योग्य शुद्धात्मा का स्वरूप है उस एकत्व का (अवलंभो) उपलम्भ संप्राप्ति अर्थात् अपने उपयोग में ले आना (णवंरि) वह केवल (अवलंभो) उपलम्भ संप्राप्ति अर्थात् अपने उपयोग में ले आना (णवंरि) वह केवल (ण सुलभो) सुलभ नहीं है (विहतस्स) कैसे एकत्व का? रागादि से रहित एकत्व का। क्योंकि वह न तो कभी सुना गया न कभी परिचय में आया और न अनुभव में ही लाया गया।

उपर्युक्त कारण से आचार्य श्री ने कहा कि-हे मोक्ष सुख के इच्छुक भव्य! तुम सतत मोक्षस्वरूप स्व-आत्मतत्व का चिंतन, मनन, श्रवण, निनिध्यासन, ध्यान करो।

ग्रन्थकार ने समाधितंत्र में व्यक्त करते हुए कहा है-

तद् ब्रूयात्तत्परान्पृच्छेत् तदिच्छेत्तत्परो भवेत्।

येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत्।।

योगी को चाहिए कि वह उस समय तक आत्मज्योति का स्वरूप कहे, उसी के सम्बन्ध में पूछे, उसी की इच्छा करे और उसी में लीन होवे जब तक अविद्या (अज्ञान) जन्य स्वभाव दूर होकर विद्यामय न हो जावे।

अष्टावक्र गीता में भी प्रकारान्तर से इस विषय का प्रतिपादन मुनि अष्टावक्र ने निम्न प्रकार से किया है-

एको विशुद्धबोधोऽहमिति निश्चयवह्निना।

प्रज्वाल्याज्ञानगहन वीतशोकः सुखीभव।।(9)

फिर प्रश्न करता है कि, आत्मज्ञानरूपी अमृतपान किस प्रकार करूँ? तब गुरु समाधान करते हैं कि हे शिष्य! मैं एक हूँ अर्थात् मेरे विषे सजाति-विजाति का भेद नहीं और स्वागत भेद भी नहीं है, केवल एक विशुद्ध बोध और स्वप्रकाश रूप हूँ, निश्चय रूपी अग्नि से अज्ञानरूपी वन को भस्म करके शोक, मोह, राग, द्वेष, प्रवृत्ति, जन्म, मृत्यु इनके नाश होने पर शोक रहित होकर परमानन्द को प्राप्त हो।

यत्र विश्वमिदं भाति कल्पितं रज्जसर्पवत्।

आनन्दपरमानन्दः स बोधस्त्वं सुखंचर।।(10)

यहाँ शिष्य शंका करता है कि, आत्मज्ञान से अज्ञानरूपी वन के भस्म होने पर भी सत्यरूप संसारी की निवृत्ति न होने के कारण शोक रहित किस प्रकार होऊँगा? तब गुरु समाधान करते हैं कि, हे शिष्य! जिस प्रकार रज्जु के विषे सर्प की प्रतीति होती है और उसका भ्रम प्रकाश होने से निवृत्ति हो जाती है, उसी प्रकार ब्रह्मा के विषे जगत् की प्रतीति अज्ञान कल्पित है, ज्ञान होने से नष्ट हो जाती है। तु ज्ञानरूप चैतन्य आत्मा है, इस कारण सुखपूर्वक विचर। जिस स्वप्न में किसी पुरुष को सिंह मारता है तो वह बड़ा दुःखी होता है परन्तु निद्रा के दूर होने पर उस कल्पित दुःख का जिस प्रकार नाश हो जाता है उसी प्रकार तू ज्ञान से अज्ञान का नाश करके सुखी हो। फिर शिष्य प्रश्न करता है कि हे गुरो! दुःख रूपी संसार के नाश होने पर आत्मा स्वभाव से ही आनन्द स्वरूप हो जाता है, मनुष्य लोक तथा देवलोक से आत्मा का आनंद परम

उत्कृष्ट और अत्यन्त अधिक है।

जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य इत्यसौ तत्त्वसंग्रहः।

यदन्यदुच्यते किंचित्, सोऽस्तु तस्यैव विस्तरः।।(50)

The self is different from matter, matter is different from the self this is the quintenssence of all the compilations of wisdom; all the rest of knowledge is but an amplification of this!

हे सुमति वाले शिष्य! बहुत कहने से क्या? अर्थात् हेय उपादेय तत्त्व को संक्षेप से भी प्रज्ञावान के मन में निवेश किया जा सकता है इस भाव को लेकर आचार्य कहते हैं कि-

''देहादि से आत्म तत्त्व भिन्न है और आत्म तत्त्व देहादि से भिन्न हैं।'' इतने में ही भूतार्थ रूप से आत्मतत्त्व का समस्त सार गर्भित है, निर्णीत है। जो इस तत्त्व संग्रह से अधिक भेद-प्रभेद का वर्णन है वह सब विस्तार रूचि वाले शिष्यों की रूचि को ध्यान में लेकर किया गया है। उसको भी हम अभिनन्दित करते है, स्वीकार करते हैं।

भेदविज्ञान का व्यामोह त्याग कर-

अनाकुल स्व संवेद्य में स्थिर होकर अमृत बनो

स्वं परं विद्धि तत्रापि, व्यामोहं छिन्धि किन्त्विमम्।

अनाकुलस्वसंवेद्ये, स्वरूपे तिष्ठे केवले।।(24)

स्वः स्वं स्वेन स्थितं स्वस्मै स्वसमात्स्वस्याविनश्वरम्।

स्वस्मिन् ध्यात्वा लभेत् स्वोत्थमानन्दामृतं पदम्।।(25)

पद्यभावानुवाद : (चाल : आत्मशक्ति....)

स्व-पर भेद विज्ञान करके, उसका भी व्यामोह दूर करो।
अनाकुल स्व-संवेदनमय, स्व-स्वरूप में तुम स्थिर रहो।।
स्व-आत्मा में स्वयं के द्वारा, स्वयं ही स्वयं से तुम करो ध्यान।
जिससे तुम प्राप्त करो आनन्दामृतमय अविनश्वर धाम।।

न्यूरोसाइंटिस्ट्स का मानना है कि व्यस्तता एक कॉग्निटिव ओवरलोड की तरह है। यह अवस्था हमारे सोचने, प्लानिंग करने, व्यवस्थित रहने और इनोवेशन करने

की योग्यता को खत्म कर देती है। व्यस्तता से मुक्ति पाने के लिए करें कुछ खास।

जिन्दगी जीना शुरू करें, बड़े आराम से!

क्या आपको हमेशा बिजी रहने की लत लग गई है? क्या आप लोगों को बताते रहते हैं कि मैं तो काम के चक्कर में बहुत ज्यादा बिजी हूँ। अब असल सवाल तो यह है कि क्या आप वाकई बिजी हैं या फिर आपके लिए बिजीनेस एक स्टेटस सिंबल बन चुकी हैं। यह एक संकेत हैं जो बताता है कि आपकी डिमांड बनी हुई है और आप महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है। विशेषज्ञ कहते हैं कि खुद को 'अनबिजी' करें यानी हर समय व्यस्त रहना जरूरी नहीं हैं। इससे क्रिएटिविटी खत्म होती है। आप बस रूटीन का काम ही कर सकते हैं। आपको एक 'अनबिजी' मेनीफेस्टो काम में लेना होगा।

व्यस्तता का महिमामंडन न करें

जब हम कहते हैं कि हम व्यस्त हैं तो हमें लगता है कि हम जिन्दगी में जीत रहे हैं, जबकि होता इसका उलटा है। व्यस्तता नुकसान पहुँचाती है। व्यस्त दिन में से कुछ समय अपने लिए निकालें और अपने क्रियाकलापों के बारे में चिन्तन करें। सफल लोग सीख चुके हैं कि व्यस्त रहना समय खराब करना ही है।

'मस्ट डू' के भ्रम से बचें

लेखिका लॉरा वेंडस्काम अपनी किताब 'ऑफ द क्लॉक' में समझाती है कि हम पूरे दिन में अपने कई कामों को बिना डर के हटा सकते हैं। रोजमर्रा की टू डू लिस्ट में जो काम करना सबसे ज्यादा जरूरी प्रतीत होते है, कई बार उन्हें पूरा करना जरूरी नहीं होता। वे हमें सब शारीरिक और मानसिक रूप से व्यस्त रखते हैं। हमें अपना समय सही तरह से गुजारना चाहिए।

व्यस्तता से बचें

यदि आपके जीवन में इस तरह का मिसमैच है कि आप कोई काम करना चाहते हैं और कर कुछ और रहे हैं तो यह गैप आपकी एनर्जी को खत्म कर देता है। ज्यादा से ज्यादा काम करने का दबाव आपको तनावग्रस्त रखता है। प्रतिदिन कुछ समय अकेले रहने की कोशिश करें। काम के बीच में से समय निकालकर ब्रेक लें।

ये छोटे-छोटे ब्रेक्स आपको अपने रूटीन को कंट्रोल में रखने में मदद करेंगे और आप हमेशा ऊर्जावान बने रहेंगे।

सोचने का ढंग बदलें

कई बार हम अपने जीवन में कुछ इस तरह के कामों में व्यस्त रहते हैं जो हमें क्रिएटिव बनने से रोकते हैं। हमें ऐसे कामों पर फोकस करना चाहिए, जहाँ हम शांति के साथ विचार कर सकें, प्लानिंग कर सकें और प्लानिंग की एग्जीक्यूट करने के लिए किसी व्यक्ति को लगा सकें। आपको कभी अपनी व्यस्तता का रोना किसी के सामने नहीं रोना चाहिए। आपको अपने सोचने के ढंग को बदलना चाहिए ताकि सफलता मिल सके।

बिजी मोड से बाहर निकलें

अपना समय मैनेज करने के लिए कैंलेडर साथ में रखें या टू-डू लिस्ट बनाएं।

'मुझे करना पड़ेगा' के बजाय 'मैं करना चाहता हूँ' का फ्रेमवर्क बनाएं।

खुद के लिए अलार्म सेट करें।

जल्दी उठें, ताकि सुबह के समय रिलेक्स रहें।

प्राथमिकता बनाएँ, हर काम तुरन्त पूरा नहीं करना होता है।

हर रोज अपना पसंदीदा संगीत सुनने के लिए 10 मिनट निकालें।

अपने बेडरूम को पूरी तरह से 'नो वर्क जोन' बनाएं।

जीवन को कंट्रोल करें

जब हम व्यस्तता के बारे में लोगों को बताते हैं तो हम परिस्थिति को लेकर दुःखी होते रहते हैं। व्यस्तता की व्याख्या करने से हम और भी ज्यादा व्यस्त होते जाते हैं, क्योंकि हम वहीं बातें बोलते हैं जिन पर भरोसा करते हैं। लेखक जोनाथन फिल्ड्स अपनी किताब 'अनबिजीः ए मेनीफेस्टो' में बताते हैं कि जब व्यस्तता को त्यागकर खुद के बारे में जागरूक होते हैं तो ऑटोपायलट मोड पर चल रही जिन्दगी आपके कंट्रोल में आने लगती है।

4 फीसदी घटा परोपकारः विप्रो प्रमुख अजीम प्रेमजी अब तक 1.45 लाख करोड़ कर चुके हैं दान तो वहीं, मुकेश अंबानी ने 2018 में 437 करोड़ रुपए ही दान किए

देश में अमीरों की संपत्ति में 21 लाख करोड़ का इजाफा मगर दान में दरियादिली कम

दानवीर अजीम

अजीम प्रेमजी, विप्रो प्रमुख 25,750 करोड़ रु. दान

34 फीसदी शेयर दान किए पिछले दिनों विप्रो प्रमुख ने।

मुम्बई। लोग बने बनाए कानून नहीं मानते, लेकिन विप्रो प्रमुख अजीम प्रेमजी ने जो और जितना किया, उसके लिए कम से कम वे कानूनी रूप से बाध्य नहीं। विप्रो प्रमुख अजीम प्रेमजी फाउंडेशन को अब तक 1.45 लाख करोड़ रुपए दान कर चुके हैं। पिछले दिनों उन्होंने विप्रो में अपने शेयर की 34 फीसदी 52, 750 करोड़ रुपए हिस्सेदारी दान कर दी।

हाल ही में जारी इंडियास्पेंड की रिपोर्ट के अनुसार, भारत के अरबपति और अमीर हो रहे हैं। वर्ष 2017 के दौरान सबसे धनी लोगों की संपत्ति में 1 फीसदी (20.89 लाख करोड़) की वृद्धि हुई है, जो उस वर्ष केन्द्र सरकार के बजट के बराबर है।

बेन एंड कंपनी की इंडियन फिर्लेथ्रॉफी रिपोर्ट के मुताबिक, प्रेमजी को हटा दें तो 2014 के बाद भारत में 10 करोड़ से अधिक के दान में 4 फीसदी की कमी आई है, जबकि इस बीच 345 करोड़ रुपए से अधिक की संपत्ति वालों की संख्या 12 फीसदी बढ़ी है। फोर्ब्स के अनुसार 2017 में 18 प्रतिशत की बढ़ोतरी के साथ भारत में अरबपतियों की संख्या बढ़कर 121 हो गई।

अंबानी ने कमाए 69 हजार करोड़

मुकेश अंबानी ने 2018 में शिक्षा, स्वास्थ्य और ग्रामीण विकास के लिए 337 करोड़ रुपए दान किए। यह उनकी कुल संपत्ति का महज 0.1 फीसदी था। इस दौरान उनकी संपत्ति 68.69 हजार करोड़ बढ़ी। बायोकॉन की प्रबंध निदेशक किरण मजूमदार

की संपत्ति 24.13 हजार करोड़ है। 75 फीसदी दान का ऐलान किया। करीब 14.48 हजार करोड़ की संपत्ति वाले इंफोसिस के सह-संस्थापक नंदन नीलकणी भी 50 फीसदी हिस्सा दान करेंगे।

बफे ने छोड़ी 99 फीसदी संपत्ति

वैश्विक स्तर पर कुछ सबसे उदार परोपकारी लोगों ने अपनी संपत्ति का बहुत बड़ा हिस्सा दान कर दिया है। करीब 6.65 लाख करोड़ रुपए की संपत्ति वाले बिल गेट्स ने 37 फीसदी हिस्सा बिल और मेलिंडा गेट्स फाउंडेशन को दे दिया है। वॉरेन बफे इसमें अपनी अनुमानित 5.68 लाख करोड़ रुपए की संपत्ति का 99 फीसदी हिस्सा देंगे।

महात्मा गाँधी का ट्रस्टीशिप

गेट्स और बफे ने अरबपतियों के संगठन 'गिविंग प्लेज' में शामिल होने का आह्वान किया था। अजीम प्रेमजी ने इसमें शामिल होते हुए एक पत्र लिखा।

उन्होंने लिखा : आजादी के बाद आदर्शवाद का उफान था। लोग सच्चे अर्थो में राष्ट्र निर्माण चाहते थे। मुझ पर भी गहरा असर हुआ। गाँधीजी के ट्रस्टीशिप में संपत्ति रखने के विचार से प्रभावित हूँ।

मेरे अनुभव-

एकान्त-मौन से मुझे प्राप्त बहुविध लाभ

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति...)

बाल्यकाल से मैं ध्यान अध्ययन हेतु एकान्त मौन में रह रहा हूँ।
उससे मुझे हो रहे अनेक लाभ उसका वर्णन मैं कर रहा हूँ।।ध्रुव
वर्णन से मेरे होते आत्मविश्लेषण आत्मसंशोधन से आत्मविकास।
जिससे मैं स्व-उपकार कर रहा हूँ इससे शिक्षा ले करूँ अधिक विकास।
एकान्त मौन से समय-शक्ति का न दुरूपयोग व मानसिक शान्ति मिलती।
जिससे मन भी स्थिर रहता जिससे ध्यान-अध्ययन में वृद्धि होती।
जिससे मनन चिन्तन होते व स्मरणशक्ति की वृद्धि होती।
जिससे बारबार पढ़ने-सुनने की आवश्यकता भी कम होती।।

जिससे अधिक शोध-बोध व लेखन पठन-पाठन अधिक होते।
समता शान्ति व शक्ति बढ़ती संकल्प-विकल्प-संक्लेश कम होते।।
आत्मानुशासन-आत्मावलम्बन आत्मस्वतंत्रता से होती जाती वृद्धि।
परानुशासन-परावलम्बन व परतंत्रता से होती जाती हानि।।
पर नकलची व सामाजिक बुराई से हो जाती है स्व सुरक्षा।
तू-तेरा आप-पराया आदि समस्याओं से हो जाती स्व सुरक्षा।।
जिससे स्व-आत्मा के ज्ञान-ध्यान-शोध-बोध-विकास अधिक होते।
साहित्य लेखन कविता रचना प्रूफ रिडिंग आदि अधिक होते।।
वाद-विवाद, तर्क-वितर्क-कुतर्क से ले विसंवाद कलह आदि नहीं होते।
मैत्री प्रमोद माध्यस्थकारुण्य भाव में वृद्धि होकर उदार पावन भाव होते।।
गतानुगतिक लोकः न लोक पारमार्थिक से अधिक से अधिक मैं बच जाता।
लोक मूढ़ता व लोकानुरंजन तथा फैशन-व्यसनों से मैं बच जाता।
अशुद्ध अश्लील रूढ़ि परम्परा रीति-रिवाज भाषा से बच जाता।
विभिन्न (सामाजिक) प्रदूषणों से लेकर शब्द प्रदूषण से भी मैं बच जाता।।
जिससे तन-मन-इन्द्रिय-आत्मा स्वस्थ्य सबल व सक्रिय होते।
जिससे आध्यात्मिक साधना हेतु पुरुषार्थ सतत अधिक होते।।
इससे अन्तःप्रज्ञा भी बढ़ती स्वप्न-शकुन-अंगस्फूरण सत्य होते।
स्व-पर के भविष्यज्ञान भी हजारों बार अभी तक सत्य सिद्ध हुए।।
ऐसा ही विज्ञान राजनीति कानून शिक्षादि में जो होते पूर्वाभास।
वे सभी सत्य होते अभी तक हजारों हुए सत्य सिद्ध।।
गला न सूखना तनाव न होना शरीर-मन भी नहीं थकते।
शान्ति-शक्ति-स्फूर्ति मिलती अतः 'कनक' एकान्त में मौन रहते।।

दि. 18.03.2019 रात्रि 9.09

चिंता : विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट

भारतीय महानगरों में तेजी से बढ़ रहा मनोरोग, यूरोप पहले से चपेट में

जब भारत जैसे विकासशील देश कैंसर, हृदय संबंधी रोगों, मधुमेह और मोटापे के बढ़ते मामलों की चपेट में हैं, यूरोपीय देशों में कॉग्निटिव डिसऑर्डर (संज्ञात्मक विकार) जैसे डिमेंशिया और अल्जाइमर के मामले चिंता का कारण बन गए हैं। यूरोप की तरह भारतीय महानगरों में भी अब कॉग्निटिव डिसऑर्डर के मामले बढ़ रहे हैं। भारत में मानसिक स्वास्थ्य केन्द्रों में भर्ती होने वाले कम से कम 14 फीसदी रोगियों को पाँच साल से अधिक तक चिकित्सा सहायता की जरूरत होती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) की रिपोर्ट के मुताबिक, अन्य 24 फीसदी रोगियों को एक से पाँच साल तक इसी तरह की देखभाल की आवश्यकता है।

80 हजार करोड़ खर्च कर रहा यूरोप

यूरोपीय देशों में कॉग्निटिव डिसऑर्डर के रोगियों पर सालाना करीब 80 हजार करोड़ रुपए, हृदय संबंधी रोगों के इलाज के लिए 20 हजार करोड़ रुपए और कैंसर के इलाज पर 10 हजार करोड़ रुपए खर्च हो रहे हैं। कॉग्निटिव डिसऑर्डर के 50 फीसदी मामलों के लिए अल्जाइमर जिम्मेदार है। जर्मन शोधकर्ता आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस और दूसरी तकनीकों का प्रयोग कर ऐसे उपकरण बनाने में जुटे हैं, जिनकी मदद से बिगड़ते मानसिक स्वास्थ्य के संकेत हासिल किए जा सकें।

सालाना खर्च में भी हो रही बढ़ोतरी

0.07 फीसदी सालाना स्वास्थ्य बजट का हिस्सा कॉग्निटिव डिसऑर्डर पर खर्च कर रहा भारत

10-15 हजार रु. प्रतिदिन प्रति मरीज पर इलाज के लिए जरूरी

16.92 करोड़ भारतीय मानसिक विकार और नशे जैसी गंभीर बीमारियों की गिरफ्त में हैं।

1 फीसदी खर्च कर रहा केरल, गुजरात व बंगाल अपने स्वास्थ्य बजट का

52 हजार करोड़ था 2018 में स्वास्थ्य बजट

बड़ा हिस्सा कर्मचारियों के वेतन और दवा की खरीद के लिए इस्तेमाल

भारत-चीन अगले 10 वर्षों में होगी खतरनाक बढ़ोतरी

हाल में 'द लांसेट' में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत और चीन में मानसिक बीमारियाँ अगले 10 वर्षों में बहुत तेजी से बढ़ेंगी। वर्तमान में दोनों देशों में

दुनिया के 42 प्रतिशत मनोरोगी रह रहे हैं।

देहात्म बुद्धि रूपी भ्रान्ति-कारण व निवारणोपाय

जानन्नप्यात्मनस्तत्त्वं विविक्तं भावयन्नपि

पूर्वविभ्रमसंस्काराद् भ्रांति भूयोऽपि गच्छति।।45 स.तं.

अचेतनमिदं दृश्यमदृश्यं चेतनं ततः।

क्व रुष्यामि क्व तुष्यामि मध्यस्थोऽहं भवाम्यतः।।46।।

पद्य भावानुवाद-

आत्मतत्त्व को जानने पर व अन्य से भिन्न मानने/(भाने) पर भी।

पूर्व विभ्रम संस्कार के कारण, पुनरपि देहात्म बुद्धि हो जाती।।(45)

इस भ्रान्ति के निवारण हेतु, अन्तरात्मा करता भेद विज्ञान।

दृश्यमान जड़ व अदृश्यमान चेतन है अतः मैं क्यों करू राग द्वेष।।46

बहिरात्मा व अन्तरात्मा की ग्रहण-त्याग प्रवृत्ति

त्यागादाने बहिर्मूढः करोत्यत्यात्मामात्मवित्।

नान्तर्बहिरुपादानं न त्यागो निष्ठितात्मनः।।(47)

पद्यभावानुवाद- (चाल : आत्मशक्ति...)

बाह्य त्याग व ग्रहण करता मूढ़, अन्तरंग करता है आत्मज्ञानी।
न अन्तर-बाह्य ग्रहण व त्याग करते, वे हैं कृतकृत्य आत्मज्ञानी।।(1)

समीक्षा-

अज्ञानी-मोही भेदविज्ञान बिन, नहीं जानता स्व-पर भेद।
अतएव उसका ग्रहण व त्याग, होता है केवल मोहाश्रित काम।।(2)
द्वेष से अनिष्ट को त्याग करे व, राग से इष्ट को ग्रहण करे।
इससे और भी अधिक कर्म बान्धे, संसार चक्र में भ्रमण करे।।(3)
अन्तरात्मा भेदविज्ञान से, जानते हैं स्व-पर भेदज्ञान।
राग-द्वेषादि को पर मानकर, करते उसका अन्तरंग से त्याग।।(4)
समता-शान्ति व सहिष्णुता को, मानते हैं स्व-आत्मिक गुण।

अतएव इसे ग्रहण करके, आत्मा को करते अधिक गुणवान्।।(5)
कृतकृत्य परमात्मा तो होते हैं, पूर्णतः शुद्ध-बुद्ध व आनन्द।
स्व-स्वभाव में ही स्थित होने से, नहीं करते ग्रहण व त्याग।।(6)

अन्तरात्मा की अन्तरंग त्याग-ग्रहण प्रवृत्ति

युञ्जीत मनसाऽऽत्मानं वाक्कायाभ्यां वियोजयेत्।

मनसा व्यवहारं तु त्यजेद्वाक्काययोजितम्।।(48)

पद्यभावानुवाद- (चाल : आत्मशक्ति...)

मन से (भावश्रुत) आत्मा को करे सम्बन्ध, तथा वचन-काय से त्याग करे।
वचन-काय से किया हुआ कार्य, मन से उसका वियोग करे।।(1)

समीक्षा-

राग-द्वेषादि अन्तरंग त्याग के लिए, आत्मा को मन से सम्बन्ध करे।
आत्मनिष्ठ हो वचन-काय से, निस्पृह भाव से काम करे।।(2)
भावश्रुत रूप आत्मज्ञान करे वे, निस्पृह-समता से काम करे।
वचन-काय से काम करने पर भी, अनासक्त रूप से प्रवृत्ति करे।।(3)
पाँच समिति में प्रवृत्त होकर, परके कर्त्ता-भोक्तादि न बने।
संकल्प-विकल्प-संक्लेश त्यागकर, मधुकर/(गोचरी) वृत्ति काम करे।।(4)
आकर्षण-विकर्षण-द्वन्द्व-वर्चस्व, त्यागकर ज्ञान-ध्यान-तप करे।
ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि त्यागकर, आत्मविशुद्धि में तत्पर रहे।।(5)

बहिरात्मा व अन्तरात्मा के विश्वास योग्य

जगद्देहात्मदृष्टीनां विश्वास्यं रम्यमेव च।

स्वात्मन्येवात्मदृष्टीनांक्व विश्वासः क्व वा रतिः।।(49)

पद्यभावानुवाद-

देहात्मदृष्टि वालों के लिये, स्त्री पुत्रादि विश्वास योग्य होते।
आत्मा में ही आत्मदृष्टि वाले, स्त्री पुत्रादि में कैसे विश्वास करें।।

समीक्षा-

मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा स्त्री पुत्रादि में अहंकार-ममकार करें।

स्व-आत्म तत्त्व के विश्वास बिना, स्त्री पुत्रादि में विश्वास करें।।2
इससे भिन्न अन्तरात्मा स्त्री पुत्रादि को पर स्वरूप माने।
आत्म तत्त्व में विश्वास करें स्त्री पुत्रादि से मोह न करे।।3

मोही पर को अपनाता

वपुगृहं धनं दाराः पुत्रा मित्राणि शत्रवः।
सर्वथान्यस्वभावानि मूढः स्वानि प्रपद्यते।।8।। इष्टो

All the objects, the body, the house, the wealth, the wife, the son, the friend, the enemy and the like are quite different in their nature from the soul; the foolish an, however, looks upon then as his own.

स्व-पर विवेकहीन मूढ़ मोही जीव शरीर, घर, धन, स्त्री, पुत्र, मित्र यहाँ तक कि शत्रु को भी जो सर्वथा स्वयं से भिन्न है उसे भी अपना मान लेता है। सर्वथा सर्व प्रकार से अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूप से जो स्व स्वरूप से अन्य है, भिन्न है ऐसे परद्रव्य को भी दृढ़तर मोह से आविष्ट जीव अपना मान लेता है। शरीर जो कि अचेतन परमाणुओं से (रक्त, माँस, हड्डी, चर्म आदि) निर्मित होने के कारण अचेतन स्वरूप है उसे भी अपना मान लेता है। इसी प्रकार घर, धन स्पष्ट रूप से भौतिक जड़ वस्तु से निर्मित है उसे भी अपना मान लेता है। भार्या, पुत्र, मित्र तथा शत्रु जो कि शारीरिक दृष्टि से तथा आत्मिक दृष्टि से भी भिन्न है उसे भी अपना मान लेता है। यहाँ पर शरीर आदि को हितकारी मानता है और शत्रु आदि को मेरा अहितकारी मानकर उसमें भी मेरा शत्रु है ऐसा अपनापन रखता है।

समीक्षा-शुद्ध निश्चयनय से स्वशुद्ध द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव ही स्व-चतुष्टय है और इससे भिन्न समस्त चेतन-अचेतन द्रव्य, द्रव्य-क्षेत्र, काल भाव से भिन्न है, पर है तथापि मोही जीव मोह के कारण पर आत्म स्वरूप को भी स्व-स्वरूप मान लेता है, जिससे उसकी स्वार्थ सिद्धि होती हो, इन्द्रियजनित सुख मिलता हो उसको अपना हितकारी मानकर अपना मानता है और राग करता है तथा जिससे स्वार्थसिद्धि नहीं होती है, इन्द्रियजनित सुख नहीं मिलता हो उसको अपकारी मानकर उससे द्वेष करता है। एक के प्रति रागात्मक सम्बन्ध है तो दूसरे के प्रति द्वेषात्मक संबंध है। मिथ्यादृष्टि

जीव दर्शन मोहनीय तथा चारित्र मोहनीय कर्म के कारण श्रद्धा रूप से तथा आचरण रूप से शरीर आदि पर वस्तु में मोह करता है परन्तु सम्यग्दृष्टि जीव श्रद्धा रूप से परद्रव्य को पर मानते हुए भी जब तक चारित्रमोहनीय कर्म का उदय रहता है तब तक वह पर द्रव्य को व्यवहार रूप से, आचरण रूप से अपना मानता है।

साधुओं को जनसम्पर्क त्यजनीय

श्लोक-जेनेभ्यो वाक् ततःस्पन्दो मनसश्चित्तविभ्रमाः।
भवन्ति तस्मात्संसर्ग जनैर्योगी ततस्त्यजेत्।।(72)

(राग : आत्मशक्ति से...)

हिन्दी-जन-सम्पर्क सह वार्तालापों से, स्पन्दित होता मन विभ्रम चित्त भी।
जन-सम्पर्क तथा वार्तालाप दोनों, त्याग करते मुमुक्षु श्रमण योगी।।

श्लोक-आत्मज्ञानात्परं कार्य न बुद्धौ धारयेच्चिरम्।
कुर्यादर्थवशात् किंचिद्वाक्कायाभ्यामतत्परः।।(50)

हिन्दी-आत्मज्ञानपरे अन्य सभी कार्य, नहीं धारणीय है अधिक काल।
आवश्यकतानुसार कुछ कार्य, करणीय वाक् काया से अतत्पर।।

श्लोक-अज्ञापितं न जानन्ति यथा मां ज्ञापितं तथा।
मूढात्मानस्ततस्तेषां वृथा में ज्ञापनश्रमः।।(58 समाधितंत्र)

हिन्दी-समझाने या असमझाने पर भी, मूढ़ न समझते ऐसी अवस्था में ही।
समझाने का मेरा श्रम व्यर्थ जाता, अतएव मूढ़ को नहीं समझाता।

श्लोक-व्यवहारे सुषुप्तो यः स जागर्त्यात्मगोचरे।
जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्तश्चात्मगोचरे।।(78 समाधितंत्र)

हिन्दी-व्यवहार में सुप्त होते ज्ञानी-ध्यानी, आध्यात्मिकता में होते पारगामी।
व्यवहार में जागृत होते भोगी-अज्ञानी, आध्यात्मिकता से होते प्रतिगामी।

श्लोक-तद्‌ब्रूयात्तत्परान्पृच्छेत्तदिच्छेत्तत्परो भवेत्।
येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत्।।(43 समाधितंत्र)

हिन्दी-आत्मा के लिए बोलो तथाहि पूछो, उसकी इच्छा करो तत्पर बनो।
अज्ञानता को त्यागो विद्यामय ही बनो, ऐसा ही ज्ञानी-ध्यानी श्रमण बनो।।

श्लोक-पैशून्य हास्यगर्भ कर्कशमसमंजसं प्रलापितं च।
अन्यदपि यदुत्सूत्रं तत्सर्वं गर्हितं गदितम्।।(96 पु.सि.)
हिन्दी-पैशून्य हास्य गर्भ कर्कश वचन, त्यजनीय है असमंजस व प्रलाप।
अन्य भी जो उत्सूत्र व गर्हित कथन, त्यजनीय (है) सभी ये असत्य वचन।
श्लोक-अरतिकरं भीतिकरं खेदकरं वैरशोक कलहकरम्।
यदपरमपि तापकरं परस्य तत्सर्वमप्रियं ज्ञेयम्।।(98 पु.सि.)
हिन्दी-अरतिकर व भीतिकर जो कथन, त्यजनीय सभी खेदकर भी वचन।
वैर शोक कलहकर जो वचन, त्यजनीय (सभी) तापकर अप्रिय वचन।
श्लोक-मिथ्यापदेश दानं रहस्योऽभ्याख्यान कूटलेखकृती।
न्यासाऽपहार अतिचाराः भवन्तिमन्त्रभेदाश्च।।(184 पु.सि.)
हिन्दी-मिथ्या-उपदेश रहस्य उद्घाटन कथन, कूटलेखकरण न्यासापहार हरण।
गुप्त अभिप्राय का भी प्रगटीकरण, अतिचार पाँचों सत्य कथन में।।
श्लोक-धर्मनाशे क्रियाध्वंसे सुसिद्धान्तार्थ विप्लवे।
अपृष्टैरपि वक्तव्यं तत्स्वरूपप्रकाशने।।(ज्ञानार्णव)
हिन्दी-धर्म के नाश में या क्रिया के ध्वंस में, सुसिद्धांत अर्थ के विप्लव (समय) में।
बिना पूछे भी कथन करणीय, तत्तस्वरूप प्रकाशन के लक्ष्य में।।
श्लोक-अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथम्।
जिनशासन माहात्म्य प्रकाशः स्यात्प्रभावना।। (81 र.श्रा.)
हिन्दी-अज्ञान-तिमिर से व्याप्त संसार में, उसे दूर करने के प्रयोजन में।
जिनशासन माहात्म्य प्रकाशनार्थे, प्रभावना हो पवित्र भाव से।।
गाथा-रुसउ वा परो मा वा विसं वा परियितउ।
भासियव्वा हिय भासा सपक्खगुण करिया।।(श्वे. साहित्य)
हिन्दी-कोई हो रोष या कोई हो तोष, कोई विष माने कोई अमृत।
स्व-पर हितकर वचन ही योग्य, अहितकर वचन सभी ही त्याज्य।
शिक्षा-समता-शांति-मौन मेरे तो श्रेय, हितकर कथन प्रिय।
असत्य विसंवाद कलह अप्रिय, अनुशासनहीन अव्यवस्था अप्रिय।।

अधिकांश जन होते (है) संकीर्ण स्वार्थी, रूढ़िवादी पंथ-मत के दम्भी।
ईर्ष्या-द्वेष-घृणा से होते आवेशित, सत्य-समता से होते वे वंचित।।
आत्महित हेतु वे होते न तत्पर, सत्ता-संपत्ति व प्रसिद्धि के आतुर।
अव्यवस्थित ज्ञान तथाहि व्यवहार, न करते कर्त्तव्य विनय सदाचार।।
दम्भ प्रदर्शन हेतु होते वे आतुर, छिद्रान्वेषण निन्दा में होते हैं भरपूर।
फैशन-व्यसन व भोगोपभोग में, अस्त-व्यस्त व संत्रस्त जीवन में।।
इनसे विपरीत मेरे भाव-व्यवहार, अतः मैं चाहूँ मौन-एकांतवास।
राग-द्वेष-मोह मैं किसी से न करूँ, 'कनक' स्व-स्वभाव हेतु करूँ प्रयास।।

सत्य महाव्रत व मौन

यः संयमधुरां धत्ते धैर्यमालम्ब्य संयमी।
स पालयति यत्नेन वाग्वने सत्यपादपम्।।1।।

जो संयमी मुनि धैर्यावलंबन करके संयम की धुरा को (मुनि दीक्षा को) धारण करता है वह मुनि वचनरूपी वन में सत्यरूपी वृक्ष को यत्न के साथ पालन करता है।

अहिंसाव्रतरक्षार्थं यमजातं जिनैर्मतम्।
नारोहति परां कोटिं तदेवासत्यदूषितम्।।2।।

जिनेन्द्र भगवान् ने जो यमनियमादि व्रतों का समूह कहा है वह एक मात्र अहिंसा व्रत की रक्षा के लिए ही कहा है। क्योंकि अहिंसाव्रत यदि असत्य वचन से दूषित हो तो वह उत्कृष्ट पद को प्राप्त नहीं होता अर्थात् असत्य वचन के होने से अहिंसा व्रत पूर्ण नहीं होता।

असत्यमपि तत्सत्यं यत्सत्त्वाशंसकं वचः।
सावद्यं यच्च पुष्णाति तत्सत्यमपि निन्दितम्।।3।।

जो वचन जीवों का इष्ट हित करने वाला हो, वह असत्य हो तो भी सत्य है और जो वचन पापसहित हिंसारूप कार्य को पुष्ट करता हो, वह सत्य हो तो भी असत्य और निन्दनीय है।

अनेकजन्मजक्लेशशुद्ध्यर्थं यस्तपस्यति।
सर्वं सत्त्वहितं शश्वत्स ब्रूते सूनृतं वचः।।4।।

जो मुनि अनेक जन्म में उत्पन्न क्लेशों (दुःखों) की शान्ति के लिए तपश्चरण करता है वह जीवों के हितरूप निरन्तर सत्य वचन ही बोलता है। क्योंकि असत्य वचन बोलने से मुनिपन नहीं संभवता है।

सूनृतं करुणाक्रान्तमविरुद्धमनाकुलम्।

अग्राम्यं गौरवाश्लिष्टं वचः शास्त्रे प्रशस्यते।।5।।

जो वचन सत्य हो, करुणा से व्याप्त हो, विरुद्ध न हो, आकुलतारहित हो, छोटे ग्रामकासा गँवारीवचन न हो और गौरवसहित हो अर्थात् जिसमें हलकापन नहीं हो वह वचन शास्त्रों में प्रशंसित किया गया है।

मौनमेव हितं पुंसां शाश्वत्सर्वार्थसिद्धये।

वचो वाचि प्रियं तथ्यं सर्वसत्त्वोपकारि यत्।।6।।

पुरुषों को प्रथम तो समस्त प्रयोजनों का सिद्ध करने वाला निरन्तर मौन ही अवलंबन करना हितकारी है। और यदि वचन कहना ही पड़े तो ऐसा कहना चाहिये जो सबको प्यारा हो, सत्य हो और समस्त जनों का हित करने वाला हो।

यो जिनैर्जगतां मार्गः प्रणीतोऽन्यन्तशाश्वतः।

असत्यबलतः सोऽपि निर्दयैः कथ्यतेऽन्यथा।।7।।

जिनेन्द्र सर्वज्ञ देवाधिदेव ने जगत् के जीवों को जो अन्तरहित शाश्वत (सनातन, ध्रुव) मार्ग कहा है, उस मार्ग को भी निर्दय पुरुषों ने असत्य के बल से अन्यथा वर्णन किया है।

विषयी तथा कषायी पुरुष अपने विषय कषाय पुष्ट करने के लिये उत्तम मार्ग का भी उत्थापन करके कुमार्ग को चलाते हैं। यह मिथ्यात्व का माहात्म्य है। संसार में मिथ्यात्व बड़ा बलवान् है।

विचर्च्यासत्यसंदोहं खलैर्लोकः खलीकृतः।

कुशास्त्रैः स्यमुखोद्‌गीर्णैरुत्पाद्य गहनं तमः।।8।।

दुष्ट निःसंसार पुरुषों ने असत्य के समूह का विशेष प्रकार से आन्दोलन करके अपने कपोलकल्पित मिथ्या शास्त्रों द्वारा गहन अज्ञानान्धकार को उत्पन्न करके इस जगत् को दुष्ट वा निःसार बना दिया है। सो ठीक है जो स्वार्थी होते हैं वे ऐसी ही दुष्टता करते हैं, किन्तु पर के हिताहित में कुछ भी विचार न करके जिस किसी प्रकार से

अपना स्वार्थ साधन करते हैं।

जयन्ति ते जगद्वन्द्या यैः सत्यकरुणामये।

अवञ्चकेऽपि लोकोऽयं पथि शश्वत्प्रतिष्ठितः।।9।।

जिन पुरुषों ने इस लोक को सत्यरूप, करुणामय तथा वंचनारहित मार्ग में निरन्तर चलाया वे ही जयशाली हैं और वे ही जगत् में वन्दनीय व पूजनीय है।

असद्वदनवल्मी के विशाला विषयसर्पिणी।

उद्वेजयति वागेव जगदन्तर्विषोल्बणा।।10।।

दुष्ट पुरुषों के मुखरूपी बाँबी में अन्तरंग में विष से उत्कृष्ट ऐसी विस्तीर्ण विषवाली जो असत्य वाणीरूपी सर्पिणी रहती है, वह जगत् भर को दुःख देती है।

न सास्ति काचिद्वयवहारवर्तिनी न यत्र वाग्विस्फुरति प्रवर्तिका।

ब्रुवन्नसत्यामिह तां हताशयः करोति विश्वव्यवहारविप्लवम्।।11।।

इस जगत् में व्यवहार में प्रवृतनेवाली वाणी ऐसी नहीं है कि जिसमें समस्त व्यवहारों को सिद्ध करने वाली स्याद्वादरूप सत्यार्थ वाणी स्फुरायमान न हो, किन्तु ऐसी स्याद्वादरूप सत्यार्थ वाणी को भी मिथ्यादृष्टि नष्टचित्तपुरुष असत्य कहते हुए समस्त व्यवहार का लोप करते हैं। **भावार्थ**-मिथ्यादृष्टि (सर्वथा एकान्ती) स्याद्वाद का निषेध करते हैं अतएव वह नष्टाशय है। क्योंकि सर्वथा एकान्त असत्य है। उस असत्य वचन से न तो लोक व्यवहार की सिद्धि होती है और न धर्मव्यवहार की ही सिद्धि होती है। ऐसे असत्य वचनों को कहते हुए मिथ्यादृष्टि समस्त व्यवहारों का लोप करते हैं।

पृष्टैरपि न वक्तव्यं न श्रोतव्यं कथंचन।

वचः शङ्काकुलं पापं दोषाढयं चाभिसूयकम्।।12।।

जो वचन सन्देहरूप हो तथा पापरूप हो और दोषों से संयुक्त हो एवं ईर्ष्या को उत्पन्न करने वाला हो वह अन्य के पूछने पर भी नहीं कहना चाहिये तथा किसी प्रकार सुनना भी नहीं चाहिये।

भावार्थ-निषिद्धवचन का प्रसंग भी नहीं करना चाहिए।

मर्मच्छेदि मनःशल्यं च्युतस्थैर्यं विरोधकम्।

निर्दयं च वचस्त्याज्यं प्राणैःकण्ठगतैरपि।।13।।

तथा मर्म का छेदने वाला, मन में शल्य उपजाने वाला, स्थिरतारहित (चंचल रूप), विरोध उपजाने वाला तथा दयारहित वचन कण्ठगत प्राण होने पर भी नहीं बोलना चाहिए।

धन्यास्ते हृदये येषामुदीर्णः करुणाम्बुधिः।
वाग्वीचिसञ्चयोल्लासैर्निर्वापयति देहिनः।।14।।

इस जगत् में वे पुरुष धन्य है, जिनके हृदय में करुणारूप समुद्र उदय होकर वचनरूप लहरों के समूहों के उल्लासों से जीव को शान्ति प्रदान करता है। **भावार्थ**-करुणारूप वचनों को सुनकर दुःखी जीव भी सुखी हो जाते हैं।

धर्मनाशे क्रियाध्वंसे सुसिद्धान्तार्थविप्लवे।
अपृष्टैरपि वक्तव्यं तत्स्वरूपप्रकाशने।।15।।

जहाँ धर्म का नाश हो, क्रिया बिगड़ती हो तथा समीचीन सिद्धान्त का लोप होता हो उस जगह समीचीन धर्मक्रिया और सिद्धान्त प्रकाशनार्थ बिना पूछे भी विद्वानों को बोलना चाहिये क्योंकि यह सत्पुरुषों का कार्य है।

या मुहुर्मोहयत्येव विश्रान्ता कर्णयोर्जनम्।
विषमं विषमृत्सृज्य साऽवश्यं पन्नगी न गीः।।16।।

जो वाणी लोक के कानों में बारबार पड़ी हुई तथा विषम विष को उगलती हुई जीवों को मोहरूप करती है और समीचीन मार्ग को भुलाती है वह वाणी नहीं है किन्तु सर्पिणी है। **भावार्थ**-जिन वचनों को सुनते ही संसारी प्राणी उत्तम मार्ग को छोड़कर कुमार्ग में पड़ जाय वह वचन सर्प के समान हैं।

असत्येनैव विक्रम्य चार्वाकद्विजकौलिकैः।
सर्वाक्षपोषकं धूर्तैः पश्य पक्षं प्रतिष्ठितम्।।17।।

इस असत्य वचन के प्रभाव से ही चार्वाक (नास्तिकमती) और ब्राह्मणकुल (मीमांसक आदि) पाखण्डियों ने सत्यार्थ मार्ग से च्युत होकर समस्त इन्द्रियों के विषयों को पोषने वाला अपना पक्ष (मत) स्थापन किया है।

मन्ये पुरजलावर्त्तप्रतिमं तन्मुखोदरम्।

यतो वाचः प्रवर्त्तन्ते कश्मलाः कार्यनिष्फलाः।।18।।

आचार्य कहते हैं कि मैं ऐसा जानता हूँ कि चार्वाक अन्यमती तथा अन्य अनेक असत्यवादियों के मुख का जो छिद्र है वह नगर के जल निकलने के पौनाले (मौरी) के समान है। क्योंकि जैसे नगर के पौनाले का जल मैला होता है तथा किसी के काम का नहीं होता, वैसे ही उनके मुख से जो वचन निकलते हैं वे भी मलीन हैं व कार्य से शून्य और निःसार है।

प्राप्नुवन्त्यतिघोरेषु रौरवादिषु संभवम्।
तिर्यक्ष्वथ निगोदेषु मृषावाक्येन देहिनः।।19।।

इस असत्य वचन से प्राणी अति तीव्र रौरवादि नरकों के बिलों में तथा तिर्यग्योनि एवं निगोद में उत्पन्न हुए दुःखों को प्राप्त होते हैं।

न तथा चन्दनं चन्द्रो मणयो मालतीस्त्रजः।
कुर्वन्ति निर्वृतिं पुंसां यथा वाणी श्रुतिप्रिया।।20।।

जीवों को जिस प्रकार कर्णप्रिय वाणी सुखी करती है, उसी प्रकार चंदन, चन्द्रमा, चन्द्रमणि, मोती तथा मालती के पुष्पों की माला आदि शीतल पदार्थ सुखी नहीं कर सकते यह प्रसिद्ध लोकोक्ति है।

अपि दावानलप्लुष्टं शाड्‍वलं जायते वनम्।
न लोकः सुचिरेणापि जिह्वानलकदर्थितः।।21।।

दावानल अग्नि से दग्ध हुआ वन तो किसी काल में हरित (हरा) हो भी जाता है परन्तु जिह्वा रूपी अग्नि से (कठोर मर्मच्छेदी वचनों से) पीड़ित हुआ लोक बहुत काल बीत जाने पर भी हरित (प्रसन्नमुख) नहीं होता।

भावार्थ-दुर्वचन का दाह मिटाना कठिन है।

सर्वलोकप्रिय तथ्ये प्रसन्ने ललिताक्षरे।
वाक्ये सत्यपि किं ब्रूते निकृष्टः परुषं वचः।।22।।

जो वचन सर्वलोक को प्रिय, सत्य तथा प्रसन्न करने वाले व ललिताक्षर वाले हैं उनके होते हुए भी नीचपुरुष कठोर वचन किसलिए कहते है, सो मालूम नहीं होता है।

सतां विज्ञाततत्त्वानां सत्यशीलावलम्बिनाम्।

चरणस्पर्शमात्रेण विशुद्ध्यति धरातलम्।।23।।

जो महापुरुष सत्यवचन बोलने वाले हैं, तत्त्वों के यथार्थ स्वरूप को जानते हैं और सत्य शीलादि के अवलंबी हैं उनके चरणों के स्पर्श मात्र से यह धरातल पवित्र होता है। ऐसे ही लोग उत्तम पुरुष हैं और जो असत्य बोलते हैं, वे ही नीच हैं।

यमव्रतगुणोपेतं सत्यश्रुतसमन्वितम्।
यैर्जन्म सफलं नीतं ते धन्या धीमतां मताः।।24।।

जिन पुरुषों ने अपना जन्म यमव्रतादि गुणों से युक्त सत्यशास्त्रों के अध्ययनपूर्वक सफल किया है, वे ही धन्य और विद्वानों के द्वारा पूजनीय है।

नृजन्मन्यपि यः सत्यप्रतिज्ञाप्रच्युतोऽधमः।
स केन कर्मणा पश्चाज्जन्मपङ्कात्तरिष्यति।।25।।

जो अधम पापी नीचपुरुष मनुष्य जन्म पाकर भी सत्य प्रतिज्ञा से रहित है वह पापी फिर संसार रूप कर्दम से किस कार्य से पार होगा? **भावार्थ**-तरने का अवसर तो मनुष्य जन्म ही है। इसमें ही धर्माचरण तथा प्रतिज्ञादि बन सकते हैं। इसके चले जाने पर फिर तरने का अवसर प्राप्त होना कठिन है, अतएव मनुष्य जन्म को सत्यशीलादि से सफल करना चाहिए।

अदयैः संप्रयुक्तानि वाक्शस्त्राणीह भूतले।
सद्यो मर्माकणि कृन्तन्ति शितास्त्राणीव देहिनाम्।।26।।

निर्दय पुरुषों के द्वारा चलाए हुए वचनरूप शस्त्र इस पृथ्वी तल पर जीवों के मर्म को तीक्ष्ण शस्त्रों के समान तत्काल छेदन करते हैं, क्योंकि असत्य वचन के समान दूसरा कोई भी शस्त्र नहीं है।

व्रतश्रुतयमस्थानं विद्याविनयभूषणम्।
चरणज्ञानयोर्बीजं सत्यसंज्ञं व्रतं मतम्।।27।।

यह सत्यनामा व्रत, व्रत श्रुत और यमों का तो स्थान है तथा विद्या और विनय का भूषण हैं क्योंकि विद्या और विनय सत्य वचन से ही शोभा को प्राप्त होते हैं। और सम्यक्चारित्र तथा सम्यग्ज्ञान का बीज उत्पन्न करने का कारण सत्य वचन ही है।

न हि सत्यप्रतिज्ञस्य पुण्यकर्मावलम्बिनः।

प्रत्यूहकरणे शक्ता अपि दैत्योरगादयः।।28।।

सत्य प्रतिज्ञावाले पुण्यकर्मावलंबी पुरुष का दुष्ट दैत्य तथा सर्पादिक कुछ भी बुरा करने को समर्थ नहीं हो सकते।

चन्द्रमूर्तिरिवानन्दं वर्द्धयन्ती जगत्त्रये।
स्वर्गिभिर्धियते मूर्ध्ना कीर्त्तिः सत्योत्थिता नृणां।।29।।

तीन लोक में चन्द्रमा के समान आनन्द को बढ़ाने वाली सत्य वचन से उत्पन्न हुई मनुष्यों की कीर्ति को देवता भी मस्तक पर धारण करते हैं।

खण्डितानां विरूपाणां दुर्विधानां च रोगिणाम्।
कुलजात्यादिहीनानां सत्यमेकं विभूषणम्।।30

जिनके हाथ नाक आदि अवयव कटे हों तथा जो विरूप हों, और जो दरिद्री तथा रोगी हों, वा कुलजात्यादि से हीन हो उनका भूषण सत्यवचन बोलना ही है, अर्थात् यही उनकी शोभा करने वाला है। क्योंकि जो उक्त समस्त बातों से हीन और सत्यवचन बोलता हो, उसकी सब कोई प्रशंसा करते हैं।

यस्तपस्वी जटी मुण्डो नग्नो वा चीवरावृतः।
सोऽप्यसत्यं यदि ब्रूते निन्द्यः स्यादन्त्यजादपि।।31

जो तपस्वी हो, जटाधारी हो, मस्तक मुंडाये हो अथवा नग्न (दिगम्बर) हो, वा वस्त्रधारी हो और असत्य बोलता हो तो वह मुंडाल से भी बुरा और अतिशय निन्दनीय है।

कुटुम्बं जीवितं वित्तं यद्यसत्येन वर्द्धते।
तथाऽपि युज्यते वक्तुं नासत्यं शीलशलिभिः।।32।।

यदि असत्य वचन से अपने कुटुम्ब, जीवन और धन की वृद्धि हो तो भी शील से शोभित पुरुषों को असत्य वचन कहना उचित नहीं है।

एकतः सकलं पापं असत्योत्थं ततोऽन्यतः।
साम्यमेव वदन्त्यार्यास्तुलायां धृतयोस्तयोः।।33।।

आर्य पुरुषों ने तराजू में एक तरफ तो समस्त पापों को रखा और एक तरफ असत्य से उत्पन्न हुए पाप को देखकर तौला तो दोनों समान हुए।

भावार्थ-असत्य अकेला ही समस्त पापों के बराबर हैं।

मूकता मतिवैकल्यं मूर्खता बोधविच्युतिः।

बाधिर्यं मुखरोगित्वमसत्यादेव देहिनाम्।।34।।

गूंगापन, बुद्धि की विकलता, मूर्खता, अज्ञानता, बधिरता तथा मुख में रोग होना इत्यादि जो सब ही जीवों के होते हैं, वे असत्य वचन बोलने के पाप से ही होते हैं।

श्वापाकोलूकमार्जारवृकगोमायुमण्डलाः।

स्वीक्रियन्ते क्वचिल्लोकैर्न सत्यच्युतचेतसः।।35।।

चंडाल, उल्लू (घूघू), बिलाव, भेड़िया और कुत्ता आदि यद्यपि निन्दित हैं तथापि इन्हें अनेक लोग अंगीकार करते हैं, परन्तु असत्यवादियों को कोई अंगीकार नहीं करता, अतएव असत्यवादी इन सबसे भी अधिक निन्दनीय है।

प्रसन्नोन्नतवृतानां गुणानां चन्द्ररोचिषाम्।

सङ्घातं घातयत्येव सकृदप्युदितं मृषा।।36।।

एक बार भी बोला हुआ असत्य वचन चन्द्रमा की किरणों के समान प्रसन्न (निर्मल) तथा उन्नत गुणों के समूह को नष्ट करता है।

भावार्थ-असत्य वचन ऐसा मलीन है कि चन्द्रवत् निर्मल गुणों को भी मलीन कर देता है।

न हि स्वप्नेऽपि संसर्गमसत्यमलिनैः सह।

कश्चित्करोति पुण्यात्मा दुरितोल्मुकशङ्कया।।37।।

जो असत्य से मलीन पुरुष हैं, उनके साथ, पापरूप कालिमा के भय से कोई पुण्यात्मा पुरुष स्वप्न में भी साक्षात् (मुलाकात) नहीं करते।

भावार्थ-झूठे की संगत से सच्चे को भी कालिमा लगती है।

जगद्वन्द्ये सतां सेव्ये भव्यव्यसनशुद्धिदे

शुभे कर्मणि योग्यः स्यान्नसत्यमलिनो जनः।।38।।

जगत् के वंदनीय, सत्पुरुषों के पूजनीय, संसार के कष्ट आपदाओं से शुद्धि के देने वाले शुभ कार्यों में असत्य से मैले पुरुष योग्य नहीं गिने जाते।

भावार्थ-शुभ कार्यों में झूठे का अधिकार नहीं है।

महामतिभिर्निष्ठ्युतं देवदेवैर्निषेधितम्।

असत्यं पोषितं पापैर्दुःशीलाधमनास्तिकैः।।39।।

बड़े-बड़े बुद्धिमानों ने तो असत्य वचन को त्याग दिया है और देवाधिदेव सर्वज्ञ वीतराग ने इसका निषेध किया है, किन्तु खोटे स्वभाववाले नीच नास्तिक पापियों ने इसका पोषण किया है। ठीक ही है, पापियों को पाप ही इष्ट होता है। महापुरुष जिसकी निन्दा करते हैं, नीच उसकी प्रशंसा ही किया करते हैं।

सुतस्वजनदारादिवित्तबन्धुकृतेऽथवा।

आत्मार्थे न वचोऽसत्यं वाच्यं प्राणात्ययेऽथवा।।40।।

पुत्र, स्वजन, स्त्री, धन और मित्रों के लिये अथवा अपने लिए प्राण जाने पर भी असत्य वचन नहीं बोलना चाहिये, यही उपदेश है।

परोपरोधादतिनिन्दितं वचो ब्रुवन्नरो गच्छति नारकीं पुरीं।

अनिन्द्यवृत्तोऽपि गुणी नरेश्वरो वसुर्यथाऽगादिति लोकविश्रुति।।41।।

मनुष्य अन्य के अनुरोध से (प्रार्थना से) अन्य के लिए अति निन्दनीय असत्य कह कर नरकपुरी को चला ज़ाता है। जैसे वसु राजा अनिन्द्य आचरणवाला और गुणी था, परन्तु अपने सहाध्यायी गुरुपुत्र (पर्वत) के लिये झूठी साक्षी देने से नरक को गया। यह जगत्प्रसिद्ध वार्त्ता है (इसकी कथा पुराणों में प्रसिद्ध है।) इस कारण परके लिये भी झूठ बोलना नरक को ले जाता है।

चञ्चन्मस्तकमौलिरत्नविकटज्योतिश्छटाडम्बरै-

र्देवाः पल्लवयन्ति यच्चरणयोः पीठे लुठन्तोऽप्यमी।

कुर्वन्ति ग्रहलोकपालखचरा यत् प्रातिहार्यं नृणां

शाम्यन्ति ज्वलनादयश्च नियतं तत्सत्यवाचः फलम्।।42।।

अर्थ-जगत्प्रसिद्ध देव भी अपने देदीप्यमान (चकमते हुए) मस्तक परके मुकुटों के रत्नों की उत्कट ज्योति की छटा के आडंबरों से जिन मनुष्यों के चरणयुगलो के नीचे के सिंहासन के निकट लोटते हुए चरणों की शोभा की प्रफुल्लित करते हैं (बढाते हैं) तथा सूर्यादिक ग्रह, लोकपाल और विद्याधर जिनके द्वार पर द्वारपाल होकर रहते हैं और अग्नि, जलादिक नियम से उपशमरूप हो जाते हैं, उनके सत्य

वचन बोलने का ही यह फल है।

भावार्थ-जिन मनुष्यों की सेवा प्रसिद्ध देवादिक भी करते हैं ऐसे महान् पुरुष तीर्थंकर तथा चक्रवर्त्यादिक होते हैं। उनके अग्नि में प्रवेश करने पर और जल में गिरने पर भी वे (अग्न्यादि) उनकी सहायता करते हैं। यह सब सत्य वचन का ही फल है।

मनोरोधे भवेद्रुध्दं विश्वमेव शरीरिभिः।
प्रायोऽसंवृतचित्तानां शेषरोधोऽप्यपार्थकः।।6।।

जिसने मनका रोध किया उसने सब ही रोका, अर्थात् जिसने अपने मन को वश किया उसने सबको वश किया और जिसने अपने मन को वशीभूत नहीं किया उसका अन्य इन्द्रियादिक का रोकना भी व्यर्थ ही है।

कलङ्कविलयः साक्षान्मनः शुद्ध्यैव देहिनाम्।
तस्मिन्नपि समीभूते स्वार्थसिद्धिरुदाहृता।।7।।

मन की शुद्धता से साक्षात् कलंक का विलय होता है और जीवों के उनका समभावस्वरूप होने पर स्वार्थ की सिद्धि कही है; क्योंकि जब मन रागद्वेषरूप नहीं प्रवर्तता तब ही अपने स्वरूप में लीन होता है, यही स्वार्थ की सिद्धि है।

चित्तप्रपञ्चजानेकविकारप्रतिबन्धकाः।
प्राप्नुवन्ति नरा नूनं मुक्तिकान्ताकरग्रहम्।।8।।

जो पुरुष चित्त के प्रपंच से उत्पन्न हुए अनेक प्रकार के विकारों को रोकनेवाले हैं वे ही निश्चयतः मुक्तिरूपी स्त्री करग्रहण को प्राप्त होते हैं।

अतस्तदेव संरुध्य कुरु स्वाधीनमञ्जसा।
यदि छेत्तुं समुद्युक्तस्त्वं कर्मनिगडं दृढम्।।9।।

आचार्य भगवन् कहते हैं कि अतएव हे भव्यात्मन्! यदि तू कर्मरूपी दृढ बेडियों को कोटने के लिये उद्यमी हुआ है तो उस मनको ही समस्त विकल्पों से रोककर शीघ्र ही अपने वश में कर।

सम्यगस्मिन्समं नीते दोषा जन्मभ्रमोद्भवाः।
जन्मिनां खलु शीर्यन्ते ज्ञानश्रीप्रतिबन्धकाः।।10।।

इस मन को भले प्रकार समभावरूप प्राप्त करने से संसारपरिभ्रमण से उत्पन्न हुए जो दोष जीवों के ज्ञानरूप लक्ष्मीकी प्राप्ति में बाधक हैं वे निश्चयकरके नष्ट हो

जाते हैं।

एक एव मनोदैत्यजयः सर्वार्थसिद्धिदः।
अन्यत्र विफलः क्लेशो यमिनां तज्जयं विना।।11

संयमी मुनियों को एक मात्र मनरूपी दैत्य का जीतना ही समस्त अर्थों की सिद्धि का देनेवाला है; क्योंकि इस मन को जीते बिना अन्य व्रत नियम तप व शास्त्रादि क्लेश करना व्यर्थ ही है।

एक एव मनोरोधः सर्वाभ्युदयसाधकः।
यमेवालम्ब्य संप्राप्ता योगिनस्तत्त्वनिश्चयम्।।12।।

एक मन का रोकना समस्त अभ्युदयों का साधनेवाला है, क्योंकि मनोरोध का आलंबन करके ही योगीश्वर तत्त्वनिश्चयता को प्राप्त हुए हैं।

पृथक्करोति यो धीरः स्वरावेकतां गतौ।
स चापलं निगृह्णाति पूर्वमेवान्तरात्मनः।।13।।

जो धीरवीर पुरुष एकता को प्राप्त हुए आत्मा और शरीरादि पर वस्तु को पृथक् पृथक् करके अनुभव करते हैं वे सबसे पहिले अन्तरात्मा की अर्थात् मन की चंचलता को रोक लेते हैं।

मनः शुद्धैव शुद्धिः स्याद्देहिनां नात्र संशयः।
वृथा तद्व्यतिरेकेण कायस्यैव कदर्थनम्।।14।।

निः सदेह मन की शुद्धि से ही जीवों के शुद्धता होती है, मन की शुद्धि के बिना केवल काय को क्षीण करना वृथा है।

ध्यानशुद्धिं मनःशुद्धिः करोत्येव व केवलम्।
विच्छिनत्त्यपि निः शङ्क कर्मजालानि देहिनाम्।।15।।

मन की शुद्धता केवल ध्यान की शुद्धता को ही नहीं करती है किन्तु जीवों के कर्मजाल (कर्मोंके समूह) को भी निःसंदेह काटती है।

भावार्थ-मन की शुद्धता से ध्यान की निर्मलता भी होती है और कर्मों की निर्जरा भी होती है।

पादपङ्कजसंलीनं तस्यैतद्भुवनत्रयम्।

यस्य चित्तं स्थिरीभूय स्वरूपरूपे लयं गतम्।।16।।

जिस मुनि का मन स्थिर होकर आत्मस्वरूप में लीन हो गया उसके चरणकमलों में ये तीनों जगत् भले प्रकार लीन हुए समझने चाहिये।

मनः कृत्वाशु निःसङ्गं निःशेषविषयच्युतम्।

मुनिभृङ्गैः समालीढं मुक्तेर्वदनपङ्कजम्।।17।।

जिन मुनिरूपी भ्रमरों ने अपने मन को निःसंगता से शीघ्र ही समस्त विषयों से छुड़ाया उन्होंने ही मुक्तिरूपी स्त्री के मुखरूपी कमल का आलिंगन किया।

यथा यथा मनःशुद्धिर्मुनेः साक्षात्प्रजायते।

तथा तथा विवेकश्रीर्हृदि धत्ते स्थिरं पदम्।।18।।

मुनि के जैसे-जैसे मन की शुद्धता साक्षात् होती है वैसे-वैसे विवेक अर्थात् भेदज्ञानरूप लक्ष्मी अपने हृदय में स्थिर पद को धारण करती है।

भावार्थ-मन की शुद्धता से उत्तरोत्तर विवेक बढ़ता है।

चित्तशुद्धिमनासाद्य मोक्तुं यः सम्यगिच्छति।

मृगतृष्णातरङ्गिण्यां स पिबत्यम्बु केवलम्।।19।।

जो पुरुष चित्त की शुद्धता को न पाकर भले प्रकार मुक्त होना चाहता है वह केवल मृगतृष्णा की नदी में जल पीता है।

भावार्थ-मृगतृष्णा में जल कहाँ से आयेगा? उसी प्रकार चित्त की शुद्धता के बिना मुक्ति कहाँ से होगी?

तद्ध्यानं तद्धि विज्ञानं तद्ध्येयं तत्त्वमेव वा।

येनाविद्यामतिक्रम्य मनस्तत्त्वे स्थिरी भवेत्।।20।।

वही तो ध्यान है, वही विज्ञान है और वही ध्येय तत्त्व है कि जिसके प्रभाव से अविद्या को उल्लंघनकर मन निजस्वरूप में थिर हो जाय।

विषयग्रासलुब्धेन चित्तदैत्येन सर्वथा।

विक्रम्य स्वेच्छयाजस्रं जीवलोकः कदर्थितः।।21।।

विषय ग्रहण करने में लुब्ध ऐसे इस चित्तरूपी दैत्य (राक्षस) ने सर्व प्रकार पराक्रम (आक्रमण) करके अपनी इच्छानुसार इस जगत् को पीड़ित किया है।

अवार्यविक्रमः सोऽयं चित्तदन्ती निवार्यताम्।

न यावद्ध्वंसयत्येष सत्संयमनिकेतनम्।।22।।

हे मुने! यह चित्तरूपी हस्ती ऐसा प्रबल है कि इसका पराक्रम अनिवार्य है, सो जब तक यह समीचीन संयमरूपी घर को नष्ट नहीं करता, उसे पहले-पहले तू इसका निवारण कर; यदि यह चित्त निरर्गल (स्वच्छन्दी) रहेगा तो संयम को बिगाड़ेगा।

विभ्रमद्विषयारण्ये चलच्चेतोवलीमुखः।

येन रुद्धो ध्रुवं सिद्धं फलं तस्यैव वाञ्छितम्।।23।।

यह चंचलचित्तरूपी बंदर विषयरूपी वन में भ्रमता रहता है, सो जिस पुरुष ने इसको रोका, वश किया, उसी के वांछित फल की सिद्धि है।

चित्तमेकं न शक्नोति जेतुं स्वातन्त्र्यवर्ति यः।

ध्यानवार्तां ब्रुवन्मूढ़ स किं लोके न लज्जते।।24।।

जो पुरुष स्वतन्त्रता से वर्तने वाले एक मात्र चित्त को जीतने में समर्थ नहीं है वह मूर्ख ध्यान की चर्चा करता हुआ लोक में लज्जित क्यों नहीं होता?

भावार्थ-चित्त को तो जीत नहीं सकता और लोक में ध्यान की चर्चावार्ता करे कि मैं ध्यानी हूँ, ध्यान करता रहता हूँ सो वह बड़ा निर्लज्ज है।

यदसाध्यं तपोनिष्ठैर्मुनिभिर्वीतमत्सरैः।

तत्पदं प्राप्यते धीरैश्चित्तप्रसरबन्धकैः।।25।।

जो पद निर्मत्सर तपोनिष्ठ मुनियों के द्वारा भी असाध्य है, वह पद चित्त के प्रसार को रोकने वाले धीर पुरुषों के द्वारा ही प्राप्त किया जाता है।

भावार्थ-केवल बाह्य तप से उत्तम पद पाना असंभव है।

अनन्तजन्मजानेककर्मबन्धस्थितिर्दृढा।

भावशुद्धिं प्रपन्नस्य मुनेः प्रक्षीयते क्षणात्।।26।।

जो अनन्त जन्म से उत्पन्न हुई दृढ़ कर्मबन्ध की स्थिति है सो भावशुद्धि को प्राप्त होने वाले मुनि के क्षणभर में नष्ट हो जाती है। क्योंकि कर्मक्षय करने में भावों की शुद्धता ही प्रधान कारण है।

यस्य चित्तं स्थिरीभूतं प्रसन्नं ज्ञानवासितम्।

सिद्धमेव मुनेस्तस्य साध्यं किं कायदण्डनैः।।27।।

जिस मुनि का चित्त स्थिरीभूत है, प्रसन्न है, रागादिक की कलुषता जिसमें नहीं है और ज्ञान की वासनासहित है उस मुनि के साध्य अर्थात् अपने स्वरूपादि की प्राप्ति आदि सब कार्य सिद्ध ही हैं। अतएव उस मुनि को बाह्यतपादिक से काय को दंडने से कुछ लाभ नहीं है।

तपःश्रुतयमज्ञान-तनुक्लेशादिसंश्रयम्।
अनियन्त्रितचित्तस्य स्यान्मुनेस्तुषखण्डनम्।।28।।

जिस मुनि ने अपने चित्त को वश नहीं किया उसका तप, शास्त्राध्ययन, व्रतधारण, ज्ञान, कायक्लेश इत्यादि सब तुषखंडन के समान निःसार (व्यर्थ) हैं, क्योंकि मन के वशीभूत हुए बिना ध्यान की सिद्धि नहीं होती।

एकैव हि मनःशुद्धिर्लोकाग्रपथदीपिका।
स्खलितं बहुभिस्तत्रतामनासाद्य निर्मलाम्।।29।।

मन की शुद्धता ही एक मोक्षमार्ग में प्रकाश करने वाली दीपिका (चिराग) है। उस निर्मल दीपिकाऐं न पाने से अनेक मोक्षमार्गी च्युत हो गये।

असन्तोऽपि गुणाः सन्ति यस्यां सत्यां शरीरिणाम्।
सन्तोऽपि यां विना यान्ति सा मनःशुद्धिः शस्यते।।30।।

जिस मन की शुद्धता होते हुए अविद्यमान गुण भी विद्यमान हो जाते हैं और जिसके न होते विद्यमान गुण भी जाते रहते हैं वही मन की शुद्धि प्रशंसा करने योग्य है।

अपि लोकत्रयैश्वर्य सर्वाक्षप्रीणनक्षमम्।
भजत्यचिन्त्यवीर्योऽयं चित्तदैत्यो निरंकुशः।।31

यह चित्तरूपी दैत्य अचिन्त्यपराक्रमी है सो निरंकुश होकर समस्त इन्द्रियों को तृप्त करने में समर्थ ऐसे तीन लोक के ऐश्वर्य को भोगता है।

भावार्थ-जब तक यह मन रुकता नहीं तब तक अपने संकल्पों में यह इन्द्र के सुख भोगता है जिससे कि अनेक कर्म बँधते हैं।

शमश्रुतयमोपेता जिताक्षाः शंसितव्रताः।
विदन्त्यनिर्जितस्वान्ताः स्वस्वरूपं न योगिनः।।32।।

जो योगी शमभाव, शास्त्राध्ययन और यम-नियमादि से युक्त हैं और जितेन्द्रिय हैं तथा जिनके व्रत प्रशंसा करने योग्य हैं वे भी यदि मन को नहीं जीते हुए हों तो अपने स्वरूप को नहीं जान सकते।

भावार्थ-मन को जीते बिना आत्मा का अनुभव नहीं होता।

विलीनविषयं शान्तं निःसङ्गं त्यक्तविक्रियम्।
स्वस्थं कृत्वा मनः प्राप्तं मुनिभिः पदमव्ययम्।।33।।

मुनिगणों ने अपने मन को विलीन विषय, शान्त, निःसंग (परिग्रह के ममत्व रहित), विकार रहित स्वस्थ करके ही अव्ययपद (मोक्षपद) को पाया है।

भावार्थ-जब मन को अन्य विकल्प व विकारों से रहित करके आत्मस्वरूप में स्थिर करे तब ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

दिक्चक्रं दैत्यधिष्ण्यं त्रिदशपतिपुराण्यम्बुवाहान्तरालं
द्वीपाम्भोधिप्रकाण्डं खचरनरसुराहीन्द्रवासं समग्रम्।
एतत्त्रैलोक्यनीडं पवनचयचितं चापलेन क्षणार्द्धे-
नाश्रान्तं चित्तदैत्यो भ्रमति तनुमतां दुर्विचिन्त्यप्रभावः।।34।।

जीवों के मनरूपी दैत्य का प्रभाव दुर्विचिन्त्य है। यह किसी के चिन्तवन में नहीं आ सकता, क्योंकि यह अपनी चंचलता के प्रभाव से दशों दिशाओं में, दैत्यों के समूह में, इन्द्र के पुरों में, आकाश में तथा द्वीपसमुद्रों में, विद्याधर मनुष्य देव धरणीन्द्रादि के निवास स्थानों में तथा वातवलयों सहित तीन लोकरूपी घर में सर्वत्र आधे क्षण में ही भ्रमण कर आता है; इसका रोकना अतिशय कठिन है। जो योगीश्वर इसे रोकते हैं वे धन्य हैं।

प्रशमयमसमाधिध्यानविज्ञानहेतो-र्विनयनयविवेकोदारचारित्रशुद्ध्यै।
य इह जयति चेतः पन्नगं दुर्निवारं स खलु जगति योगिव्रातवन्द्यो मुनीन्द्रः।।35।।

इस जगत् में जो मुनि प्रशम (कषायों का अभाव), यम (त्याग), समाधि (स्वरूप में लय), ध्यान (एकाग्रचित्त), विज्ञान (विशिष्ट ज्ञान) अर्थात् भेदज्ञान के लिए तथा विनय व नय के स्वरूप की प्राप्ति के लिए, विवेक और उदार चारित्र की शुद्धता के लिए चित्तरूपी दुर्विचार सर्प को जीतते हैं वे योगियों के समूह द्वारा वंदनीय हैं और मुनियों में इन्द्र हैं।

अभिप्राय ऐसा है कि मन को वश किये बिना ध्यान की सिद्धि नहीं होती और इसके वश करने से सर्व सिद्धि होती है।

म्लेच्छाधमजनैर्जुष्टं दुष्टभूपालपालितम्।
पाषण्डिमण्डलाक्रान्तं महामिथ्यात्ववासितम्।।23।।
कौलकापालिकावासं रुद्रक्षुद्रादिमन्दिरम्।
उद्भ्रान्तभूतवेतालं चण्डिकाभवनाजिरम्।।24।।
पण्यस्त्रीकृतसंकेतं मन्दचारित्रमन्दिरम्।
क्रूरकर्माभिचाराढयं कुशास्त्राभ्यासवञ्चितम्।।25।।
क्षेत्रजातिकुलोत्पन्न शक्ति स्वीकारदर्पितम्।
मिलितानेकदुः शीलकल्पिताचिन्त्यसाहसम्।।26।।
द्यूतकारसुरापानविटबन्दिव्रजान्वितम्।
पापिसत्त्वसमाक्रान्तं नास्तिकासारसेवितम्।।27।।
क्रव्यादकामुकाकीर्णं व्याधविध्वस्तश्वापदं।
शिल्पिकारुकविक्षिप्तमग्रिजीविजनाञ्चितम्।।28।।
प्रतिपक्षशिरःशूले प्रत्यनीकारवलम्बितम्।
आत्रेयीखण्डितव्यङ्गसंसृतं च परित्यजेत्।।29।।

ध्यान करने वाला मुनि आगे लिखे स्थानों को छोड़े। म्लेच्छ पापी जनों के रहने का स्थान, दुष्ट राजा (जमींदार) के अधिकार का स्थान, पाखण्डी भेषियों के समूह से घिरा हुआ स्थान, तथा महामिथ्यात्व का स्थान, कुलदेवता योगिनी का स्थान, रुद्र नीच देवादिक का मंदिर जिसमें उद्धत भूत वेताल नाचते हों, तथा चंडिका देवी के भवनों का प्रांगण (चौक) तथा व्यभिचारिणी स्त्रियों के संकेत किये स्थान, कुचारित्री पाखण्डियों का मंदिर तथा क्रूरकर्म और अभिचार से पूर्ण स्थान, जिसमें कुशास्त्रों का अभ्यास होता हो ऐसा स्थान, तथा जमींदारी जाति और कुल से उत्पन्न हुई शक्ति से अधिकार में आ जाने से गर्वित अर्थात् यह हमारा निवास है अन्य को प्रवेश नहीं करने दें ऐसा स्थान, तथा जिसमें अनेक दुःशील खोटे पुरुषों ने मिलकर कोई अचिंत्य साहसिक कार्य रचा हो ऐसा स्थान, अथवा द्यूतक्रीड़ावाले जुआरी, मद्यपायी, व्यभिचारी, बंदीजन

इत्यादि के समूह सहित स्थान, तथा पापी प्राणियों से घिरा हुआ, तथा नास्तिकों के द्वारा सेवित हो, तथा राक्षस कामी पुरुषों से व्याप्त, व्याध-शिकारियों ने जहाँ पर जीववध किया हो, तथा शिल्पी (शिलावट कारीगर), कारुक (मोची आदि) का विक्षिप्त (छोड़ा हुआ) हो, तथा अग्निजीवी (लुहार ठठेरे आदिक) से युक्त हो ऐसा स्थान, तथा शत्रु के मस्तक पर शूल की समान शत्रु की सेना का स्थान तथा रजस्वला भ्रष्टचारित्री नपुंसक अंगहीनों के रहने का स्थान-इत्यादि स्थानों को ध्यान करने वाला छोड़े। अर्थात् इन स्थानों से बचकर योग्य स्थान में ध्यान करना चाहिये।

विद्रवन्ति जना पापाः सञ्चरन्त्यभिसारिकाः।
क्षोभयन्तीङ्गिताकारैर्यत्र नार्योऽपशङ्किता।।30।।

तथा जहाँ पर पापीजन उपद्रव करते हों, जहाँ अभिसारिका स्त्रियाँ विचरती हों, तथा जहाँ स्त्रियाँ निःशंकित होकर कटाक्ष इंगितकारादिक से क्षोभ उत्पन्न करती हों ऐसे स्थान का ध्यानी मुनि त्याग करे।

किं च क्षोभाय मोहाय यद्विकाराय जायते।
स्थानं तदपि मोक्तव्यं ध्यानविध्वंसशङ्कितैः।।31

जो मुनि ध्यानीविध्वंसक के भय से भयभीत हैं उनको क्षोभकारक, मोहक तथा विकार करने वाला स्थान भी छोड़ देना चाहिये।

तृणकण्टकवल्मीकविषमोपलकर्दमैः
भस्मोच्छिष्टास्थिरक्ताद्यैर्दूषितां सन्त्यजेद्भुवम्।।32।।

तथा जो जगह तृण, कंटक, वल्मीक (बांबी), विषम पाषाण, कर्दम, भस्म, उच्छिष्ट, हाड, रुधिरादिक निंद्य वस्तुओं से दूषित हो, उसको ध्यान करने वाला छोड़े।

काककौशिकमार्जाररखरगोमायुमण्डलैः।
अवघुष्टं हि विघ्नाय ध्यातुकामस्य योगिनः।।33।।

तथा जो स्थान काक उलूक बिलाव गर्दभ श्रृगाल श्वानादिक से अवघुष्ट हो अर्थात् जहाँ ये शब्द करते हों वह स्थान योगी मुनिगणों के ध्यान को विघ्नकारक है।

ध्यानध्वंसनिमित्तानि तथान्यान्यपि भूतले।
न हि स्वप्नेऽपि सेव्यानि स्थानानि मुनिसत्तमैः।।34।।

जो जो पूर्वोक्त स्थान कहे उसी प्रकार अन्य स्थान भी जो ध्यान के विघ्नकारक हों, वे सब ही स्थान ध्यानी मुनिजनों को छोड़ देने चाहिये। ऐसे स्थान स्वप्न में भी सेवने योग्य नहीं हैं।

कुछ लोग अपने विचारों के साथ अकेले रहने से आतंकित होते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि वे परेशान करने वाली चीज़ों के बारे में सोच सकते हैँ। यदि उनके पास कुछ ख़ाली पल होंगे, तो उन्हें कोई दुःखद चीज़ याद आ जाएगी या भविष्य की चिन्ता होने लगेगी। इसलिए अपनी असहज भावनाओं को दूर रखने की कोशिश में वे अपने मन को ज़्यादा से ज़्यादा व्यस्त रखते हैं।

एकांत में रहने को अक्सर ग़लती से अकेला रहना मान लिया जाता है। अकेलेपन का संबंध खराब नीन्द, उच्च रक्तचाप, कमज़ोर प्रतिरोधक तंत्र और बढ़े हुए तनाव हॉर्मोनों के साथ जोड़ा गया है। लेकिन अकेले रहने से हमेशा अकेलापन उत्पन्न नहीं होता है। वास्तव में, कई लोग तो भीड़ भरे कमरे में दूसरों से घिरे होने के बावजूद अकेलापन महसूस करते हैं। अकेलापन तो यह अहसास है कि आपका वहाँ कोई नहीं है। दूसरी ओर, एकांत अपने विचारों के साथ अकेले रहने का चयन है।

अगर हम ठहरकर खुद के नवीनीकरण का समय न निकालें, तो दैनिक ज़िम्मेदारियों और संबंधों की सतत देखभाल भी हम पर हावी हो सकती है। दुर्भाग्य से, एकांत के लाभों को अक्सर नज़रअंदाज किया जाता है या कम माना जाता है। शोध बताता है कि हममें से जो लोग एकांत से डरते हैं, वे कुछ मुख्य लाभों से वंचित रह सकते हैं।

- थोड़ा अकेले रहना बच्चों के लिए अच्छा है। 1997 में एक अध्ययन हुआ, ''द इमर्जेन्स ऑफ सॉलिट्यूड एज़ अ कंस्ट्रक्टिव डोमेन ऑफ़ एक्सपीरिएंस इन अर्ली एडोलेसेंस।'' इसमें यह पाया गया कि पाँचवीं से लेकर नवें ग्रेड तक के जो बच्चे थोड़ा समय अकेले में गुज़ारते थे, उनमें व्यवहार की कम समस्याएँ होती थीं। उन्हें डिप्रेशन भी कम होता था और उनके ग्रेड पॉइंट का एवरेज ज्यादा था।

- ऑफिस में एकांत उत्पादकता को बढ़ा सकता है : हालाँकि कई ऑफ़िस खुले कार्यस्थल और बड़े विचारमंथन सत्रों को बढ़ावा देते हैं, लेकिन 2000 के

अध्ययन ''कॉग्निटिव स्टिमुलेशन इन ब्रेनस्टॉर्मिंग'' ने पाया कि थोड़ा एकांत स्थान मिलने पर ज़्यादातर लोगों का प्रदर्शन बेहतर हुआ। हर एक से दूर कुछ समय बिताने को बढ़ी हुई उत्पादकता से जोड़ा गया है।

- एकांत का समय आपकी परानुभूति को बढ़ा सकता है : जब लोग खुद के साथ समय गुजारते हैं, तो उनके दूसरों के प्रति संवेदनशील होने की ज़्यादा संभावनाएँ होती है। यदि आप अपने सामाजिक दायरे में बहुत समय बिता रहे हैं, तो यह बहुत संभव है कि आपमें एक ''हम बनाम वे'' मानसिकता विकसित हो जाएगी, जिसकी वजह से आप अपने सामाजिक दायरे के बाहर के लोगों से कम सहानुभूतिपूर्ण तरीके से व्यवहार कर सकते हैं।
- अकेले समय गुज़ारने से सृजनात्मकता को चिंगारी मिलती है : कई सफल चित्रकार, लेखक और संगीतार एकांत को अपने बेहतर प्रदर्शन का श्रेय देते हैं। शोध बताता है कि समाज की माँगों से दूर समय बिताने से सृजनात्मकता बढ़ सकती है।
- एकाकी योग्यताएँ मानसिक स्वास्थ्य के लिए अच्छी होती हैं : हालाँकि सामाजिक योग्यताओं के महत्त्व पर बहुत ज़ोर दिया जाता है, लेकिन प्रमाण सुझाता है कि एकाकीपन की योग्यताएँ भी स्वास्थ्य और कल्याण के लिए इतनी ही महत्त्वपूर्ण हो सकती हैं। अकेलेपन के समय को झेलने की योग्यता संबंधी बढ़ी हुई ख़ुशी, जीवन सन्तुष्टि और बेहतर तनाव प्रबंधन से जोड़ा गया है। जो लोग अकेले खुश रहते हैं, उन्हें डिप्रेशन भी कम होता है।
- एकांत मरम्मत का काम भी करता है : अकेले गुज़ारा गया समय आपको अपनी बैटरी को रिचार्ज करने का समय देता है। शोध दर्शाता है कि प्रकृति में अकेले समय बिताने से आराम मिलता है और नवीनीकरण होता है।

खामोशी को सहन करने का अभ्यास

हममें से ज़्यादातर लोग दिन भर अपने आस-पास बहुत सारे शोर-शराबे के आदी होते हैं। कई बार तो लोग सक्रियता से शोरगुल की तलाश करते हैं, ताकि उन्हें अपने विचारों के साथ अकेले न रहना पड़े। क्या आप या आपका कोई परिचित पृष्ठभूमि की आवाज़ के लिए टीवी या रेडियो चलाकर सोता है? सतत शोर से खुद पर

बमबारी करके अपने विचारों को डुबाने की कोशिश करना स्वास्थ्यवर्धक नहीं है। अपने दिन में बस कुछ शांत पल शामिल करके आप अपनी बैटरी रिचार्ज कर सकते हैं। शांति से अकेले बैठने के लिए हर दिन कम से कम दस मिनट का समय निकालें और सोचने के अलावा कुछ भी न करें। यदि आपको निरन्तर शोर और गतिविधि की आदत है, तो ख़ामोशी पहले पहल असहज महसूस हो सकती है। बहरहाल, अभ्यास के साथ यह काम ज़्यादा आसान हो जाता है। नीचे दिए गए काम करने के लिए अकेले में रहने के समय का इस्तेमाल करें।

- अपने लक्ष्यों पर विचार करें : अपने व्यक्तिगत या पेशेवर लक्ष्यों के बारे में हर दिन कुछ पल सोंचे। यह मूल्यांकन करें कि आप कैसा प्रदर्शन कर रहे हैं और क्या आप कोई परिवर्तन करना चाहते हैं।
- अपनी भावनाओं पर ध्यान दें : अपनी जाँच करें कि आप शारीरिक और भावनात्मक दोनों दृष्टियों से कैसा महसूस कर रहे हैं। अपने तनाव के स्तर के बारे में सोचें। आकलन करें कि क्या आप खुद की अच्छी परवाह कर रहे हैं और सोचें कि किन तरीक़ों से आप अपनी जिन्दगी को बेहतर बना सकते हैं।
- भविष्य के लिए लक्ष्य बनाएँ : आप अपने भविष्य को कैसा देखना चाहते हैं, इस बारे में सपने देखना न छोड़ें। आप जिस तरह का जीवन देखना चाहते हैं, उसे वैसा बनाने का पहला क़दम यह निर्णय लेना है कि आप भविष्य को कैसा देखना चाहते हैं।
- जर्नल में लिखें : जर्नल लिखना एक शक्तिशाली साधन है, जो आपकी भावनाओं को बेहतर समझने और सीखने में मदद करता है। शोध अध्ययन दर्शाते हैं कि अपने अनुभवों और उनसे उत्पन्न भावनाओं के बारे में लिखने से प्रतिरक्षा तंत्र मज़बूत होता है, तनाव कम होता है और मानसिक सेहत बेहतर होती है।

हम एक ऐसे संसार में रहते हैं, जहाँ हम लोगों के साथ लगातार जुड़े रह सकते हैं। लेकिन डिजिटल कनेक्टिविटी की बदौलत हमें अपने विचारों के साथ अकेले रहने के अवसर कम मिलते हैं। मैसेज देखने के लिए फ़ोन की तरफ़ हाथ बढ़ाने, सोशल मीडिया पर नज़र रखने और ऑनलाइन समाचार पढ़ने में आपका

बहुत सारा समय लग सकता है। यहाँ-वहाँ कुछ मिनट बिताकर हम एक दिन में कई घंटे यूँ ही गँवा सकते हैं। सतत संवाद आपकी दैनिक गतिविधियों में बाधा डालता है और तनाव व चिंता के स्तर को बढ़ा सकता है। प्रौद्योगिकी को कुछ समय बंद रखें और अपने दैनिक जीवन में शांत समय को शामिल करने के लिए नीचे दिए क़दमों को आज़माएँ:

- जब आप सचमुच टीवी न देख रहे हों, तो उसे बंद कर दें।
- रेडियो चलाए बिना कार में यात्रा करें।
- सेल फ़ोन लिए बिना टहलने जाएँ।
- सिर्फ़ विराम लेने के लिए कभी-कभार अपने सारे इलेक्ट्रॉनिक उपकरण बंद कर दें।

खुद के साथ एक डेट तय करें

अकेले समय बिताना तभी सार्थक होता है, जब इसे चुना जाए। मिसाल के तौर पर, जो बुजुर्ग लोग अकेले और समाज से अलग-थलग रहते हैं, उनके अकेलापन महसूस करने की ज़्यादा संभावना है और उन्हें एकांत से कम लाभ मिलेंगे। लेकिन जो लोग व्यस्त जीवन जीते हैं, जिसमें बहुत सारा सामाजिक मेल-मिलाप शामिल है, उनके लिए कुछ समय अकेले में बिताना विश्राम और नवीनीकरण का अवसर प्रदान कर सकता है। यदि आप अकेले समय बिताने के विचार पर असहज महसूस करते हैं, तो कुंजी है एकांत में सकारात्मक अनुभव बनाना। हर दिन कुछ मिनट अकेले निकालने के अलावा महीने में कम से कम एक बार खुद के साथ डेट तय करें।

''डेट'' कहने से आपको यह याद रहती है कि आप कोई चीज़ अकेले करने का चुनाव कर रहे हैं, इसलिए नहीं क्योंकि आपको सामाजिक संबंधों की कमी है, बल्कि इसलए क्योंकि यह करना एक अच्छी चीज़ है। 2011 में एक शोध अध्ययन ''एन एक्सरसाइज टु टीच द साइकोलॉजिकल बेनिफिट्स ऑफ़ सॉलिट्यूड : द डेट विथ द सेल्फ़'' ने पाया कि खुद के साथ डेट पर जाने वाले बहुसंख्यक लोगों को शांति का अनुभव हुआ। वे जो करना चाहते थे, उसे सामाजिक बंधनों या अपेक्षाओं के बिना करने में उन्हें स्वतंत्रता का आनंद मिला। जिन कुछ प्रतिभागियों

को यह अनुभव आनन्ददायक नहीं लगा, वे अकेले रहने में सहज नहीं थे। बहरहाल, अकेले ज़्यादा समय रहने से यह गतिविधि भविष्य में ज़्यादा आनंददायक बन सकती है। अगर आप किसी चीज से नफ़रत करते हैं, तो संभवतः आप इसे लंबे समय तक जारी नहीं रखेंगे। ऐसी एकाकी गतिविधियों को खोजना सबसे अच्छा है, जिनमें आपको मज़ा आता है, ताकि आप उन्हें अपनी दिनचर्या में शामिल कर सकें।

यदि आप प्रकृति से प्रेम करते हैं, तो जंगलों में समय बिताने के बारे में सोचें। यदि आप अच्छे भोजन से प्रेम करते हैं, तो अपने मनपसंद रेस्तराँ में जाएँ। एकांत का आनन्द लेने के लिए आपको घर पर रुकने की जरूरत नहीं है। इसके बजाय कोई ऐसा काम करने का विकल्प चुनें, जो आप लोगों के साथ रहने पर सामान्य तौर पर नहीं कर सकते। बस यह सुनिश्चित करें कि अकेले में आप किसी पुस्तक में अपनी नाक दफ़न न कर लें या किसी को टेक्स्ट मैसेज भेजने में समय न बिताएँ। खुद के साथ डेट तय करने का मक़सद ही अपने विचारों के साथ अकेले रहना है।

ध्यान लगाना सीखें

हालाँकि एक समय था, जब ध्यान को एक ऐसी चीज़ माना जाता था, जो सिर्फ़ संन्यासी या हिप्पी लगाते थे, लेकिन अब यह आम जनता में लोकप्रिय होने लगा है। कई डॉक्टर, सीईओ, मशहूर हस्तियाँ और नेता अपने मानसिक, शरीरिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर ध्यान के शक्तिशाली प्रभाव की कद्र करने लगे हैं। शोध दर्शाता है कि ध्यान आपकी मानसिक तरंगो को बदल देता है और समय के साथ आपके मस्तिष्क की शरीरिक संरचना भी बदल जाती है। अध्ययनों ने दर्शाया है कि सीखने, स्मृति और भावना नियंत्रण से संबद्ध मस्तिष्क क्षेत्र वास्तव में कुछ महीनों के ध्यान के बाद ही घने होने लगते हैं।

ध्यान के बहुत से भावनात्मक लाभ बताए गए है, जिनमें नकारात्मक भावानाएँ कम करने और तनावपूर्ण स्थितियों पर नया दृष्टिकोण हासिल करने में सहायता मिलना शामिल है। कुछ अध्ययन बताते हैं कि ध्यान से चिंता और डिप्रेशन कम होता है। आध्यात्मिक लाभ मिलते हैं, सो अलग। कुछ लोग दावा करते हैं कि अकेला ध्यान ही प्रबुद्धता प्रदान करता है, जबकि बाक़ी लोग प्रार्थना और ध्यान को मिश्रित करने की सलाह देते हैं।

अतिरिक्त शोध बताता है कि ध्यान बहुत से शारीरिक रोगों में मदद कर सकता है, जिनमें अस्थमा, कैंसर, नींद की समस्याएँ, दर्द और हृदय रोग शामिल हैं। हालाँकि इनमें से कुछ शोधों पर चिकित्सकों ने सवाल उठाए हैं, लेकिन इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि ध्यान का आपके शरीर पर शक्तिशाली प्रभाव पड़ता है। यक़ीन न हो, तो विम हॉफ़ से पूछ लें।

हॉफ को बर्फ़मानव का उपनाम दिया गया है, क्योंकि वे ध्यान का इस्तेमाल करके भारी ठंड सहन करने की क्षमता रखते हैं। यह अधेड़ हॉलैंडवासी अपने हैरतअंगेज़ कारनामों से बीस विश्व कीर्तिमान बना चुके है, जिनमें एक घंटे से ज़्यादा समय तक बर्फ़ में बैठे रहना शामिल है। वे माउंट किलिमिंजारो पर चढ़ चुके हैं, पोलर सर्कल में मैराथन दौड़ चुके हैं और माउंट एवरेस्ट की चढ़ाई भी आधी चढ़ चुके हैं (पैर की चोट की वजह से उन्हें अपनी यह यात्रा अधूरी छोड़नी पड़ी) और वह भी सिर्फ़ शॉर्ट्स पहनकर। संदेहवादी शोधकर्ताओं ने उन पर बहुत से परीक्षण किए, क्योंकि कई मानते थे कि उन्होंने किसी तरह की धोखाधड़ी की होगी, लेकिन वैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुँचे कि बहुत ठंडे बाहरी तापमान के बावजूद वे ध्यान लगाकर अपने शरीर के तापमान को एक निश्चित स्तर पर रख सकते हैं। हॉफ़ ने दूसरे लोगों को भी यह सिखाया है कि वे ध्यान के ज़रिये अपने शरीर के तापमान को कैसे नियंत्रित कर सकते हैं।

हालाँकि एक घंटे तक आइस बाथ में डूबने की क्षमता कोई ऐसी योग्यता नहीं है, जिसकी हममें से ज्यादातर को ज़रूरत हो-या हम ऐसा करना चाहें-लेकिन हॉफ़ की कहानी निश्चित रूप से मस्तिष्क और शरीर के बीच के अविश्वसनीय संबंध को प्रदर्शित करती है। ध्यान के बहुत से प्रकार होते हैं, इसलिए यह पता लगाने के लिए थोड़ा शोध करना चाहिए कि कौन सा प्रकार आपके लिए सर्वश्रेष्ठ है। ज़रूरी नहीं है कि यह लंबी या औपचारिक प्रक्रिया हो। इसके बजाय ध्यान बस ऐसी चीज़ हो सकती है, जिसे आप हर दिन पाँच मिनट अपने मन को शांत करने और आत्म-जागरूकता का बेहतर अहसास विकसित करने के लिए करते हैं।

सरल ध्यान के कदम

इसके सबसे सरल रूप में आप कभी भी और कहाँ भी कुछ आसान क़दमों

में ध्यान लगा सकते हैं।

तनावरहित मुद्रा में बैठ जाएँ-ऐसी मुद्रा खोजें, जिसमें आपका मेरुदंड सीधा रहे, कुर्सी पर या फ़र्श पर।

अपनी साँस पर ध्यान केंद्रित करें-गहरी, धीमी साँसे लें और साँस लेते या छोड़ते समय सचमुच अपनी साँस को महसूस करें।

अपनी चेतना अपनी साँस पर लौटाएँ-आपका मन भटकेगा और विचार आपके दिमाग़ में दाखिल होंगे। ऐसा होने पर अपना ध्यान साँस पर दोबारा केंद्रित करें।

सचेतनता संबंधी योग्यताएँ

सचेतनता का इस्तेमाल अक्सर ध्यान के पर्यायवाची के रूप में किया जाता है, लेकिन ये दोनों अलग हैं। सचेतनता इस बात की तीक्ष्ण जागरूकता विकसित करने के बारे में है कि इस पल में जो हो रहा है, उस पर कोई निर्णय या आलोचना न रहे। आज के संसार में हम दिन में लगभग हर मिनट कई काम एक साथ करने के बारे में ललचाते हैं। कुत्ते को टहलाते समय हम टेक्स्ट मैसेज भेजते हैं, किचन की सफ़ाई करते समय रेडियो सुनते हैं या अपने लैपटॉप पर टाइप करते समय किसी के साथ बातचीत जारी रखने की कोशिश करते हैं। हम जो कर रहे हैं, उस बारे मे सचेतन होने के बजाय हम अचेतन होते हैं। हमारा दिमाग़ किसी बातचीत के बीच में भटक जाता है। हमें यह याद ही नहीं रहता कि हमने अपनी कार की चाबियों को कहाँ रखा, हालाँकि वे कुछ पल पहले ही हमारे हाथ में थीं। हम जब शॉवर में होते हैं, तो हमें यह भी याद नहीं रहता कि हम अपने बाल धो चुके हैं या नहीं।

सचेतनता पर शोध से पता चला है कि इसके बहुत से लाभ होते हैं, जो कमोबेश ध्यान जैसे ही हैः तनाव कम होता है, डिप्रेशन के लक्षण कम होते हैं, स्मृति बेहतर होती है, भावनात्मक प्रतिक्रियाशीलता कम होती है और संबंधों में बेहतर संतुष्टि मिलती है। कई शोधकर्ता तो यहाँ तक मानते हैं कि सचेतनता ख़ुशी पाने की कुंजी हो सकती है। इसका संबंध बेहतर शारीरिक स्वास्थ्य लाभों से भी जोड़ा गया है, जैसे रोग प्रतिरोधक क्षमता का बढ़ना और तनाव से इन्फ़ेमेशन कम होना।

क्या ''सही'' है या ''गलत'' या चीज़ों को कैसा होना चाहिए, इस बारे में सोचने के बजाय सचेतनता आपको उस पल के अपने विचारों को उसी रूप में स्वीकार करने

की अनुमति देती है, जैसे वे हैं। चेतनता आपकी जागरूकता को बढ़ाती है और आप दिन में जो भी कर रहे हैं, हर गतिविधि पर ''एकाग्र'' रहने में मदद करती है। यह अपने विचारों के साथ अकेले रहने में ज़्यादा आरामदेह बनने के लिए प्रोत्साहित करती है, साथ ही यह वर्तमान पल में रहने में भी आपकी मदद करती है।

ध्यान की तरह ही आप पुस्तकों, वीडियो, वर्कशॉप और रिट्रीट के ज़रिये सचेतनता की योग्यताएँ सीख सकते हैं। इसे अलग-अलग लोग अलग-अलग तरीक़े से सिखाते हैं, इसलिए अगर एक तरीक़ा आपके लिए काम न करे, तो सचेतनता के बारे में ज़्यादा जानने के लिए दूसरे अवसरों को टटोलें। योग्यताएँ विकसित करने की कुंजी यह याद रखना है कि इस काम में अभ्यास और समर्पण की ज़रूरत होती है। लेकिन इन योग्यताओं को सीखने से आपके जीवन की गुणवत्ता बदल सकती है और आपको एकांत के बारे में एक नया दृष्टिकोण मिल सकता है।

सचेतनता का अभ्यास करने के तरीक़े

कई अलग-अलग अभ्यास सचेतनता का अभ्यास शुरू करने में आपकी मदद कर सकते हैं। आप जितना ज़्यादा अभ्यास करेंगे, उतने ही ज़्यादा जागरूक बनेंगे और अपनी सभी दैनिक गतिविधियों में पूरी तरह से जाग्रत बनेंगे। यहां कुछ अभ्यास बताए जा रहे हैं, जिनसे आपको सचेतनता विकसित करने में मदद मिल सकती हैं।

- **अपने शरीर की जाँच करे**-अपने शरीर के प्रत्येक हिस्से पर धीरे-धीरे ध्यान दें, अपने पंजों की अँगुली से लेकर अपने सिर के सबसे ऊपरी हिस्से तक। अपने शरीर के उन हिस्सों की तलाश करें, जहाँ तनाव महसूस हो रहा है। उस तनाव को शिथिल करने और अपनी माँसपेशियों को तनावरहित करने का अभ्यास करें।
- **दस तक गिनें**-अपनी आँखें बंद करके धीरे-धीरे दस तक गिनने का अभ्यास करें। अगर आपका मन रास्ते में भटकने लगे, तो इस बात पर ग़ौर करें। धीरे-धीरे अपने ध्यान को गिनने पर वापस केन्द्रित करें।
- **चेतन होकर अवलोकन करें**-अपने घर में पड़ी रोज़मर्रा की कोई वस्तु खोजें, जैसे पेन या कप। उस वस्तु को अपने हाथ में लेकर उस पर अपना

पूरा ध्यान केन्द्रित करें। कोई आकलन या आलोचना रखे बिना यह अवलोकन करें कि यह कैसी दिखती है और कैसी महसूस होती है। यहाँ और सभी पर ध्यान केन्द्रित करने की कोशिश करें।

- **भोजन का सचेतन कौर खाएँ**-आहार का एक छोटा टुकड़ा लें, जैसे किशमिश या काजू और अधिकाधिक संभव इन्द्रियों से इसकी पड़ताल करें। इसे देखें और इसकी बनावट व रंग पर ग़ौर करें। इसके बाद अवलोकन करें कि यह आपके हाथ में कैसा महसूस होता है। फिर इसकी गंध पर ध्यान दें। अब इसे अपने मुँह में रखकर इसका स्वाद लें। इसे धीरे-धीरे चबाएँ, इसके स्वाद पर ध्यान दें और कम से कम बीस सेंकड तक यह अवलोकन करें कि यह आपके मुँह में कैसा महसूस होता है।

अकेले समय गुज़ारने से आप ज़्यादा शक्तिशाली कैसे बनेंगे

अपने मन को शांत रखने और अपने विचारों के साथ अकेले रहने की योग्यताएँ सीखना एक शक्तिशाली और जीवन बदलने वाला अनुभव हो सकता है। अपनी पुस्तक टेन परसेंट हैप्पियर में डैन हैरिस विस्तार से बताते हैं कि ध्यान से उनका जीवन किस तरह बदला। एबीसी के नाइटलाइन के सह-उद्घोषक और गुड मॉर्निंग अमेरिका के सप्ताहांत उद्घोषक के नाते उन्हें हर दिन टीवी पर अपने सर्वश्रेष्ठ स्वरूप में रहने की ज़रूरत थी। लेकिन एक दिन न्यूज़ पढ़ने के बीच में उन्हें दहशत का दौरा पड़ गया। जब वे अचानक चिंता से व्याकुल हो गए, तो वे बोलने में अटकने लगे और उनकी साँस फूलने लगी, जिससे वे उस खंड को छोटा करने के लिए विवश हो गए। उन्हें बाद में पता चला कि दहशत का वह दौरा-जिसे वे अपने जीवन का सबसे शर्मनाक पल मानते हैं-संभवतः भावातिरेक और कोकीन के इस्तेमाल की वजह से पड़ा था, जिससे उन्होंने अपने हाल के डिप्रेशन को ठीक करने की कोशिश की थी। हालाँकि वे कई हफ़्तों से कोकीन नहीं ले रहे थे, लेकिन प्रभाव उनके मस्तिष्क में मौजूद था। दहशत के दौरे ने उन्हें खुद दवाएँ लेना छोड़ने के लिए प्रोत्साहित किया और उन्होंने तनाव के प्रबंधन का नया तरीक़ा खोजने का संकल्प लिया।

इसी समय के आस-पास हैरिस को धर्म संबंधी एक सीरीज़ पर रिपोर्ट बनाने

का काम सौंपा गया। इस काम के सिलसिले में उन्हें ध्यान के बारे में पता चला। हालाँकि उन्होंने शुरू में महसूस किया कि ध्यान जैसी चीज़ में उनकी कभी रुचि नहीं होगी, लेकिन उन्होंने जितना ज़्यादा सीखा, उनकी मानसिकता उतनी ही ज़्यादा खुलती गई। अंततः उन्होंने खुद यह खोजा कि ध्यान उन्हें चिंता के विचारों को शांत करने की यथार्थवादी रणनीतियाँ प्रदान कर सकता है।

हालाँकि वे स्वीकार करते हैं कि उन्हें शुरूआत में लोगों को यह बताने में संकोच होता था कि वे ध्यान लगाते हैं, लेकिन फिर उन्होंने यह पहचाना कि उनकी कहानी बताने से दूसरे लोगों को मदद मिल सकती है। वे स्पष्ट है कि ध्यान से उनकी जीवन में जादू से हर चीज़ सही नहीं हुई है, लेकिन इससे उनकी मनोदशा 10 प्रतिशत सुधर गई है। अपनी पुस्तक में वे कहते हैं, ''जब तक हम अपने मन में सीधे न देखें, तब तक हम सचमुच नहीं जान सकते कि हमारा जीवन किस बारे में है।''

चाहे आप ध्यान लगाने का चुनाव करें या अपने लक्ष्यों पर सोचने के लिए बस थोड़े शांत समय का इस्तेमाल करें, अकेले समय बिताना वह सर्वश्रेष्ठ तरीक़ा है, जिससे आप खुद को सचमुच समझ सकते हैं। जिस तरह उन प्रियजनों के साथ गुणवत्तापूर्ण समय बिताना महत्त्वपूर्ण होता है, जिनसे आप परिचित होना चाहते हैं, उसी तरह यह अनिवार्य है कि आप ख़ुद को जानने में समय बिताएँ। आत्म-जागरूकता का बेहतर अहसास विकसित होने पर आप यह पहचान सकते हैं कि वह कौन सी चीज़ है, जो आपको अपनी पूरी संभावना तक पहुँचने से रोक रही है।

समस्या-निवारण और कुछ बाधाएँ

यदि आप किसी रेगिस्तानी टापू पर फँसे होने के सपने देख रहे हैं, तो इसका मतलब है कि आपको बहुत समय से एकांत की ज़रूरत है। अकेले समय तय करने से न घबराएँ। यह स्वार्थपूर्ण काम या समय की बर्बादी नहीं है। इसके बजाय यह उन सबसे लाभकारी चीज़ों में से एक है, जो आप कर सकते हैं। इससे आपका जीवन बहुत सारे तरीक़ों से बेहतर बन सकता है और इससे आप यह भी सीखेंगे कि एक काम से दूसरे काम तक हड़बड़ी में दौड़ने और आस-पास की घटनाओं से बेख़बर रहने के बजाय हर पल का आनंद कैसे लें।

क्या सहायक है

- यह सीखना कि मौन की कद्र कैसे करना है।
- अपने विचारों के साथ हर दिन कुछ मिनट अकेले रहना।
- महीने में कम-से-कम एक बार अपने साथ डेट तय करना।
- अपने मन को शांत करने के लिए ध्यान लगाना सीखना।
- एक समय में एक काम पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए सचेतनता का अभ्यास करना।
- अपनी भावनाओं को व्यवस्थित करने के लिए जर्नल लिखना।
- अपनी प्रगति और लक्ष्यों पर हर दिन विचार करना।

क्या सहायक नहीं है

- सारे समय पृष्ठभूमि में आवाज़ रखना।
- हड़बड़ी में एक गतिविधि से दूसरी पर जाना और लगातार कोई चीज़ करने पर ध्यान केन्द्रित करना।
- अपने कैलेंडर को सामाजिक कार्यक्रमों से इस तरह भरना, ताकि खुद के लिए कोई समय न बचे।
- यह विश्वास करना कि ध्यान से कोई सहायता नहीं मिल सकती।
- दिन भर मल्टीटास्किंग करना और अचेतन रहना।

(13 काम जो समझदार लोग नहीं करते द्वारा - ऐमी मॉरिन)

मैं ही मेरे द्वारा मुझे पूर्णतः देखूँ

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल : 1. कहाँ गये चक्री...2. तुम दिल की ... 3. क्या मिलिए..)

मैं ही मेरे आदि मध्य व अन्त को देखूँ।
सर्वज्ञ द्वारा उपदिष्ट ज्ञान ज्योति से देखूँ।।(ध्रुव)
मैं हूँ द्रव्य अतः मैं सत्य, सत्य होने से स्वयंभू।
स्वयंभू होने से मैं अकृतिम, अतएव मैं शाश्वत हूँ।।
अतएव मेरा आदि न अन्त, तथाहि मेरा न मध्य।
द्रव्य गुण पर्याय से ले काल तक मैं हूँ शाश्वत सत्य।।(1)

मैं हूँ जीव द्रव्य चैतन्यमय अनन्त चेतना युक्त।
निगोदिया (सूक्ष्मजीव) से सिद्ध तक मैं चेतना से युक्त।।
निगोदिया में एक अक्षर के अनन्तवाँभाग होता है ज्ञान।
आध्यात्मिक विकास से सिद्ध में मेरा होगा अनन्त ज्ञान।।(2)

ऐसा ही मेरे दर्शन सुख वीर्य प्रभुत्व आदि।
होते हैं आत्मिक विकास से वृद्धि भी अनन्त तक।।
भले मैं अनन्त काल से निगोदिया से चारों गति में।
चौरासी लक्ष योनि मध्य में भ्रमा हूँ अनन्त तक।।(3)

अनन्त जन्म मरण व सुख दुःख भोगा हूँ अभी तक।
किन्तु अभी आत्म श्रद्धा प्रज्ञाचर्या से बनूँगा सिद्ध तक।।
अतएव मैं सभी क्षुद्र भावना व लक्ष्य को छोड़कर।
अनन्त आध्यात्मिक विकास हेतु पुरुषार्थ करूँ निरन्तर।।(4)

इस हेतु बाधाकारक समस्त राग-द्वेष व मोह।
ईर्ष्या तृष्णा घृणा मद वैर विरोध से ले द्वन्द्व फन्द।।
संकीर्णता व कट्टरता अन्धश्रद्धान व भेदभाव।
सब कुछ त्याग कर रहा हूँ जो अनात्म भाव।।(5)

ऐसा ही समस्त द्रव्य क्षेत्र काल भाव छोड़ रहा हूँ।
एकान्त मौन निष्पृहता से आत्मा को ध्या रहा हूँ।।
समता शान्ति व आत्मविशुद्धि से स्व को पा रहा हूँ।
इससे प्राप्त आत्मानन्द को बढ़ाता ही जा रहा हूँ।।(6)

ऐसी क्रमवृद्धि द्वारा स्व अनन्तवैभव को पाऊँ।
तब ही 'सूरी कनक' स्व ज्ञान ज्योति से स्व को पूर्ण देखूँ।।(7)

भीलूड़ा दि. 14.03.2019 रात्रि 9.00

सन्दर्भ-

उपशम से क्रोध का हनन करे, मृदुता से मान को जीते, ऋजु भाव से माया को और सन्तोष से लोभ को जीते।

आत्मस्वरूप एवं परस्वरूप

एकोऽहं निर्ममः शुद्धो ज्ञानी योगोन्द्रगोचरः।
बाह्यः संयोगजा भावा मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा।।(27) इष्टो.

I am, one, I am without delusion, I am the knower of things, I am knowable by master ascetics; all other conditions that arise by the union of the not-self are foeign to my nature in every way.

द्रव्यार्थिक नय से मैं एक हूँ, मैं ही पूर्व परावस्थाओं में अनुश्रुत रूप में रहने के कारण मैं एक हूँ यह मेरा है, मैं इसका हूँ, इसी प्रकार अभिप्राय से शून्य होने के कारण निर्मम हूँ। शुद्ध नय की अपेक्षा द्रव्य कर्म, भावकर्म से निर्मुक्त होने के कारण मैं शुद्ध हूँ। स्व-पर प्रकाश होने के कारण मैं ज्ञानी हूँ। अनन्त पर्यायों को युगपत् जानने वाले केवलज्ञानी और श्रुतकेवली के शुद्धोपयोगस्वरूप ज्ञान का विषय हूँ, मैं स्वसंवेद्य के द्वारा जानने योग्य हूँ। जो द्रव्यकर्म के सम्बन्ध से प्राप्त भाव तथा देह आदि है वे सर्व मेरे से सर्वथा सर्व प्रकार से बाह्य है, भिन्न है।

समीक्षाः इस श्लोक में आचार्य श्री ने स्वयं को अनुभव करने के/ध्यान करने के/प्राप्त करने के कुछ उपाय बताये हैं। भले व्यवहार नय से द्रव्य कर्म आदि के संयोग से जीव में विभिन्न वैभाविक भाव तथा शरीर आदि पाये जाते हैं तथापि शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से यह आत्मा के स्वभाव नहीं है। ये सब पर संयोगज अशुद्ध भाव है। आचार्य कुन्दकुन्द देव ने समयसार में कहा भी है-

अहमिक्को खलु सुद्धो णिम्मओ णाणदंसणमग्गो।
तह्मि ठिओ तच्चिट्ठो सेस सव्वे खय णेमि।।73।।

टीका-यह मैं आत्मा हूँ सो प्रत्यक्ष अखंड, अनंत, चैतन्यमात्र ज्योति हूँ। अनादि, अनंत, नित्य उदयरूप, विज्ञानघन स्वभाव रूप से तो एक हूँ और समस्त कर्त्ता कर्म, करण, सम्प्रदान, आदान, अधिकरण स्वरूप जो कारकों का समूह उसकी प्रक्रिया से पार उतरा दूरवर्ती निर्मल, चैतन्य अनुभूति मात्र रूप से शुद्ध हैं। जिनका द्रव्य स्वामी है ऐसे जो क्रोधादि भाव उनकी विश्वरूपता (समस्तरूपता) उनका स्वामित्व से सदा ही अपने नहीं परिणमने के कारण उनसे ममता रहित हूँ। तथा वस्तु का स्वभाव सामान्य विशेष स्वरूप है इसलिए चैतन्यमात्र तेज पूंज भी वस्तु है इस

कारण सामान्यविशेष स्वरूप जो ज्ञानदर्शन उनसे पूर्ण हूँ। ऐसा आकाशादि द्रव्य की तरह परमार्थ स्वरूप वस्तु विशेष हूँ। इसलिए मैं इसी आत्मस्वभाव में समस्त पर द्रव्य से प्रवृत्ति की निवृत्ति करके निश्चल स्थित हुआ समस्त परद्रव्य के निमित्त से जो विशेष रूप चैतन्य में चंचल कल्लोलें होती भी, उनके विरोध से इस चैतन्य स्वरूप को ही अनुभव करता हुआ अपने ही अज्ञान से आत्मा में उत्पन्न क्रोधादिक भावों का क्षय करता हूँ ऐसा आत्मा में निश्चय कर तथा जैसे बहुत काल का ग्रहण किया जो जहाज या वह जिसने छोड़ दिया है, ऐसे समुद्र के भँवर की तरह शीघ्र ही दूर किये हैं समस्त विकल्प जिसने, ऐसा निर्विकल्प, अचलित निर्मल आत्मा को अवलम्बन करता विज्ञानघन होता हुआ यह आत्मा आस्रवों से निवृत्त होता है।

आदिमध्यान्तहीनोऽहमाकाशसदृशोऽस्म्यहम्।
आत्मचैतन्यरूपोऽह महामानंदचिद्घनः।
आनन्दामृतरूपोऽह मात्मसंस्भोऽहगन्तरः
आत्मकामोहमाकाशात्परमात्मेश्वरोऽस्म्यहम्।।92।।
ईशानोऽ स्म्यह मीडियोऽहमनुत्रमपुरूषः।
उत्कृष्टोऽहमुपद्रष्टाद्रह नुतरोऽस्म्यहम्।।93।।
केवलोऽहं कविः कर्माध्यक्षोऽहं करणाधियः।
गुहाशयोऽहं गोप्ताऽहं चक्षुषश्रक्षुरस्म्यहम्।।94।।
चिदानन्दोऽस्म्यहं चेताश्रिद्घनश्रिन्मयोऽस्म्यहम्।(उपनिषद्)
ज्योतिर्मयाऽस्म्यहंज्यायान्ज्योतिषांज्योतिरस्म्यहम्।।95।।

मैं आदि मध्य और अन्त से रहित हूँ आकाश के सदृश हूँ, मैं आत्म चैतन्य रूप हूँ, आनन्द चेतन घन हूँ। मैं आनन्दामृत रूप हूँ, आत्म संस्थित हूँ, अन्तर हूँ, आत्मा काम हूँ और आकाश में परमात्मा परमेश्वर स्वरूप हूँ। मैं ईशान हूँ, पूज्य हूँ, उत्तम पुरुष हूँ, उत्कृष्ट हूँ, उपदृष्टा हूँ और पर से भी परे हूँ। मैं केवल हूँ, कवि हूँ, कर्माध्यक्ष हूँ, कारण का अधिपति हूँ, मैं गुप्त आशय हूँ, गुप्त रखने वाला हूँ और नेत्रों का नेत्र हूँ, मैं चिदानन्द हूँ, चेतना

देने वाला हूँ, चिद्घन और चिन्मय हूँ, मैं ज्योतिर्मय हूँ, और मैं ज्योतियों में श्रेष्ठ ज्योति हूँ।

अणोरणीयान तद्वन् महानंद विश्रमिदं विचित्रम्।

पुरातनोऽहं पूरीषोऽहमीशो हिरण्ययोऽहं शिवरूपमस्मि।।20।।

अपाणिपादोऽहमचिन्त्यशक्तिः पश्च्याम्यचक्षु च श्रृणोम्यकर्णः।

अहं विजानामि विविक्तिरूपो न चास्ति वेत्ता मम चित्त सदाहम्।।21।।

वेदैरनकैरहमेव वेद्यो वेदान्मकृद्वेदविवेदेब चाहम्।।22।।

न पुण्यपापे मम नास्ति नाशो न जन्म देहेन्द्रिय बुद्धिरस्ति।

न भूमिरापो ममवहिरस्ति न चानिलो मेऽस्ति च चाम्बरं च।।23।।

मैं छोटे से भी छोटा और बड़े से भी बड़ा हूँ। इन अद्भुत संसार को मेरा ही स्वरूप मानना चाहिए। मैं ही शिव और ब्रह्मा का स्वरूप हूँ। मैं ही परमात्मा और विराट पुरुष हूँ। वह शक्ति जिसके न हाथ-पैर हैं और न जिसके सम्बन्ध में चिन्तन किया जा सकता है, वह परब्रह्म मैं ही हूँ। सर्वदा चित्त स्वरूप रहता हूँ मुझे कोई जान और समझ नहीं सकता, मैं बुद्धि के बिना ही सब कुछ जानने, स्थूल कानों के बिना सब कुछ सुनने और स्थूल आँखों के बिना सब कुछ देखने की सामर्थ्य रखता हूँ। मैं ही देव का उपदेश करता हूँ, मैंने ही वेदान्त की रचना की है और सारे वेद मेरे ही सम्बन्ध में चर्चा करते हैं मैं जन्म और नाम से परे हूँ। पाप और पुण्य मुझे छू नहीं सकते। मैं शरीर, मन, बुद्धि और इन्द्रियों से रहित हूँ। मेरे भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश कुछ सम्बन्धि नहीं है।

त्यक्त्वा लोकांश्च वेदांश्च विषयाणीन्द्रियाणि च

आत्मन्येव स्थितो यस्तु स याति परमां गतिम्।।11।

नामगोत्रादिवरणं देश काल श्रुतं कुलम्।

वयो व्रतं व्रतंशील ख्यान्नैव सद्यतिः।।2।।

शुद्धोपयोगका वर्णन

बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा का निश्चय करके शुद्धोपयोग का वर्णन

अज्ञातस्वस्वरूपेण परमात्मा न बुध्यते।

आत्मैव प्राग्विनिश्चेयो विज्ञातुं पुरुषं परम्।।1।। (ज्ञानावर्णन)

जिसने अपने आत्मा का स्वरूप नहीं जाना वह पुरुष परमात्मा को नहीं जान सकता, इस कारण परमपुरुष-परमात्मा को जानने की इच्छा रखने वाला पहले अपने आत्मा का ही निश्चय करें। **भावार्थ**-यदि आत्मा सर्वथा परमात्मा ही हो तो निश्चय ही क्या करना है, और यदि परमात्मा नहीं है तो अपने को परका निश्चय करने से क्या फल? इस कारण आत्मा जैसा है वैसा प्रथम निश्चय करने से परमात्मा जाना जाता है।

आत्मतत्त्वानभिज्ञस्य न स्यादात्मन्यवस्थितिः।

मुह्यत्यन्तः पृथक् कर्त्तुं स्वरूपं देहदेहिनोः।।2।।

यहाँ यह विशेष है कि आत्मतत्त्व के यथार्थ स्वरूप को नहीं जानने वाले पुरुष के आत्मा में निश्चय ठहरना नहीं होता। और अन्तरङ्ग में शरीर आत्मा को भिन्न-भिन्न करने व समझने में मोह को प्राप्त होकर भूल जाता है कि इस देह में द्रव्यइंद्रिय, भाव-इन्द्रिय, द्रव्यमन, भावमन, दर्शन, ज्ञान, सुख, दुःख, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, अज्ञान आदि जो अनेक भाव दिखते हैं; इनमें से आत्मा कौनसा? इस प्रकार भ्रम उत्पन्न होता है, इस कारण पहले आत्मा का निश्चय करना चाहिए।

तयोर्भेदापरिज्ञानान्नात्मलाभः प्रजायते।

तदभावात्स्वविज्ञानसूतिः स्वप्नेऽपि दुर्घटा।।3।।

उस देह और आत्मा के भेदविज्ञान बिना आत्मा का लाभ (प्राप्ति) नहीं होता और आत्मा के लाभ बिना भेदविज्ञान की उत्पत्ति स्वप्न में भी दुर्घट है, अर्थात् दुर्लभ है।

अतः प्रागेव निश्चेयः सम्यगात्मा मुमुक्षुभिः।

अशेषपरपर्यायकल्पनाजालवर्जितः।।4।।

इस कारण ही मोक्षाभिलाषियों को समस्त परद्रव्यों की पर्यायकल्पनाओं से रहित आत्मा का ही निश्चय करना चाहिए।

त्रिप्रकारं स भूतेषु सर्वेष्वात्मा व्यवस्थितः।

बहिरन्तः परश्चेति विकल्पैर्वक्ष्यमाणकैः।5।।

वह आत्मा समस्त देहधारियों में बहिरात्मा, अन्तरात्मा व परमात्मा के भेद से

तीन प्रकार से व्यवस्थित (अवस्थारूप) है, सो आगे कहे भेदों से जानना।

आत्मबुद्धिः शरीरादौ यस्य स्यादात्मविभ्रमात्।

बहिरात्मा स विज्ञेयो मोहनिद्रास्तचेतनः।।6।।

जिस जीव के शरीरादि पदार्थों में आत्मा के भ्रम से आत्मबुद्धि हो कि यह मैं ही हूँ, अन्य अर्थात् पर नहीं है सो मोहरूपी निद्रा से अस्त हो गई हैं चेतना जिसकी ऐसी बहिरात्मा है।

बहिर्भावानतिक्रम्य यस्यात्मन्यात्मनिश्चयः।

सोऽन्तरात्मा मतस्तज्ज्ञैर्विभ्रमध्वान्तभास्करैः।।7।।

तथा जिस पुरुष के बाह्य भावों को उल्लंघन करके आत्मा में ही आत्मा का निश्चय हो सो विभ्रमरूप अन्धकार को दूर करने में सूर्य के समान उस आत्मा के जानने वाले पुरुषों ने अन्तरात्मा कहा है।

निर्लेपो निष्कलः शुद्धो निष्पन्नोऽन्यन्तनिर्वृतः।

निर्विकल्पश्च शुद्धात्मा परमात्मेति वर्णितः।।8।।

और जो निर्लेप है अर्थात् जिसके कर्मों का लेप नहीं, निष्कल कहिये शरीररहित है, शुद्ध है, जिसके रागादिक विकार नहीं है, तथा जो निष्पन्न हैं अर्थात् सिद्धरूप हैं (जिसको कुछ करना नहीं), और अत्यन्त निर्वृत्त हैं अर्थात् अविनाशी सुखरूप हैं, तथा निर्विकल्प हैं अर्थात् जिसमें भेद नहीं है ऐसे शुद्धात्मा को परमात्मा कहा गया है।

यहाँ प्रश्न है कि यदि आत्मा ऐसा है तो आत्मा को देहादिक पदार्थों के समूह से पृथक् करके निर्विकल्प अतीन्द्रिय ऐसा किस प्रकार ध्यान करे? उसका उत्तर कहते है-

अपास्य बहिरात्मानं सुस्थिरेणान्तरात्मना।

ध्यायेद्विशुद्धमत्यन्तं परमात्मानमव्ययम्।।10।।

अर्थः योगी मुनि बहिरात्मा को छोड़कर भले प्रकार स्थिर अन्तरात्मा होकर अत्यन्त विशुद्ध अविनाशी परमात्मा का ध्यान करे। सो ही कहते है-

संयोजयति देहेन चिदात्मानं विमूढधीः।

बहिरात्मा ततो ज्ञानी पृथक् पश्यति देहिनम्।।11।।

जो बहिरात्मा है सो चैतन्यस्वरूप आत्मा का देह के साथ संयोजन करता

(जोड़ता) है अर्थात् एक समझता है; और जो ज्ञानी (अन्तरात्मा) है सो देह से देही (चैतन्यस्वरूप आत्मा) को पृथक् ही देखता है। यही बहिरात्मा और अन्तरात्मा के ज्ञान में भेद है। जो बहिरात्मा आत्मस्वरूप से अतिशय करके निरन्तर विमुख इन्द्रियों के द्वारा व्यापार रूप हुआ शरीर को ही आत्मा मानता है।

सुरं त्रिदशपर्यायैर्नृपर्यायैस्तथा नरम्।

तिर्यञ्चं च तदङ्गे स्वं नारकाङ्गे न नारकम्।।13।।

वेत्त्यविद्यापरिश्रान्तो मूढस्तत्र पुनस्तथा।

किन्त्वमूर्तं स्वसंवेद्यं तद्रूपं परिकीर्तितम्।।14।।

अविद्या (मिथ्याज्ञान) से परिश्रान्त (खेदखिन्न) मूढ़ बहिरात्मा देव के पर्यायों सहित आत्मा को तो देव मानता है और मनुष्य पर्यायों सहित अपने को मनुष्य मानता है, तथा तिर्यंच अङ्ग में रहते हुए को तिर्यंच और नारकी के शरीर में रहते हुए को नारकी मानता है सो भ्रम है; क्योंकि पर्याय का रूप आत्मा का रूप नहीं है। आत्मा का रूप तो अमूर्त्तिक हैं, स्वसंवेद्य है अर्थात् अपने द्वारा ही अपने को जानने योग्य है।

तथा वही बहिरात्मा अज्ञानी जिस प्रकार अपने शरीर को आत्मा जानता है उसी प्रकार परके अचेतन देह को देखकर परका आत्मा मानता है अर्थात् उसको पर की बुद्धि से निश्चय करता है।

स्वात्मेतरविकल्पैस्तैः शरीरेष्ववलम्बितम्।

प्रवृत्तैर्वञ्चितं विश्वमनात्मन्यात्मदर्शिभिः।।16।।

अपने शरीर में तो अपना आत्मा जाने और पर के शरीर में पर का आत्मा जाने इस प्रकार शरीर में अवलंबनस्वरूप प्रवर्त्ते हुए विकल्पों से अनात्मा में आत्मा को देखने वाले अज्ञानी जनों ने इस लोक को ठग लिया।

ततः सोऽत्यन्तभिन्नेषु पशुपुत्राङ्गनादिषु।

आत्मत्वं मनुते शश्वदविद्याज्वरजिह्मितः।।17।।

इस कारण से मिथ्याज्ञानरूपी ज्वर से निरन्तर पीड़ित होकर बहिरात्मा अज्ञानी से अपने से अत्यन्त भिन्न पशु पुत्र स्त्री आदि में भी आत्मपना मानता है।

साक्षात्स्वानेव निश्चित्य पदार्थांश्चेतनेतरान्।

स्वस्यैव मन्यते मूढस्तन्नाशोपचयादिकम्।।18।।

यह मूढ़ बहिरात्मा अपने से भिन्न चेतन अचेतन पदार्थों को साक्षात् अपने ही निश्चय करके उनके नाश होने और संचय में होने में अपना ही नाश और संचय होना मानता है।

अनादिप्रभवः सोऽयमविद्याविषमग्रहः।
शरीरादीनि पश्यन्ति येन स्वामिति देहिनः।।19।।

यह पूर्वोक्त अनादि से उत्पन्न हुआ अविद्यारूपी विषम आग्रह है जिसके द्वारा यह मूढ़ प्राणी शरीरादिक को अपना मानता है, अर्थात् वह शरीर है सो मैं ही हूँ इस प्रकार देखता है।

वपुष्यात्मेति विज्ञानं वपुषा घटयत्यमून्।
स्वस्मिन्नात्मेति बोधस्तु भिनत्त्यङ्गं शरीरिणाम्।।20।।

शरीर में यह आत्मा है ऐसा ज्ञान तो जीवों को शरीरसहित करता है, और आपमें ही आप है अर्थात् आत्मा में ही आत्मा है, इस प्रकार का विज्ञान जीवों को शरीर से भिन्न करता है।

वपुष्यात्मतिः सूते बन्धुवित्तादिकल्पनम्।
स्वस्य संपदमेतेन मन्वानं मुषितं जगत्।।21।।

शरीर में जो आत्मबुद्धि है सो बन्धु धन इत्यादि की कल्पना उत्पन्न कराती है, तथा इस कल्पना से ही जगत् अपनी सम्पदा मानता हुआ ठगा गया है।

तनावात्मेति यो भावः स स्याद्बीजं भवस्थितेः।
बहिर्वीताक्षविक्षेपस्तत्त्यक्त्वान्तर्विशेत्ततः।।22।।

शरीर में ऐसा जो भाव है कि ''यह मैं आत्मा ही हूँ'' ऐसा भाव संसार की स्थित का बीज है। इस कारण, बाह्य में नष्ट हो गया है इन्द्रियों का विक्षेप जिसके ऐसा पुरुष उस भावरूप संसार के बीज को छोड़कर अन्तरंग में प्रवेश करो, ऐसा उपदेश है।

अक्षद्वारैस्ततश्च्युत्वा निमग्नो गोचरेष्वहम्।
तानासाद्याहमित्येतन्न हि सम्यगवेदिषम्।।23।।

ज्ञानी ऐसे विचारता है कि इन्द्रियों के द्वारों से मैं आत्मस्वरूप से छूटकर

विषयों में मग्न हो गया तथा उन विषयों को प्राप्त होकर यह **अहंपद से जाना जाय ऐसे आत्मस्वरूप को भले प्रकार नहीं जाना।**

बाह्यात्मानमपास्यैवमन्तरात्मा ततस्त्यजेत्।
प्रकाशयत्ययं योगः स्वरूपं परमेष्ठिनः।।24।।

इस पूर्वोक्त प्रकार से बाह्य शरीरादिक में आत्मबुद्धि को छोड़कर अन्तरात्मा होता हुआ इन्द्रियों के विषयादिक में भी आत्मबुद्धि को छोड़ें। इस प्रकार यह योग परमेष्ठी के स्वरूप को प्रकाश करता है।

यद्यद्दृश्यमिदं रूपं तत्तदन्यन्न चान्यथा।
ज्ञानवच्च व्यतीताक्षमतः केनाऽत्र वच्म्यहम्।।25।।

जो-जो देखने योग्य यह रूप है सो-सो अन्य है, और ज्ञानवान् जो मेरा रूप है सो अन्य प्रकार (अन्यरूप सदृश) नहीं है यह व्यतीताक्ष (इन्द्रियज्ञान से अतीत) है; इस कारण मैं जिसके साथ वचनालाप करू? **भावार्थ**-मूर्तिक पदार्थ इन्द्रियों से ग्रहण करने योग्य होता है सो वह तो जड़ है, कुछ भी जानता नहीं है, और मैं ज्ञानमूर्ति हूँ; पुद्गलमूर्त्ति से रहित हूँ, इन्द्रियाँ मुझे ग्रहण नहीं करती अर्थात् इन्द्रियाँ मुझे नहीं जान सकती; इस कारण परस्पर वार्तालाप किससे करूँ? इस प्रकार विचार कर विषयों में आत्मबुद्धि छोड़े।

यज्जनैरपि बोध्योऽहं यज्जनान्बोधयाम्यहम्।
तद्विभ्रमपदं यस्मादहं विधुतकल्मषः।।26।।

जो ''लोगों द्वारा मैं सम्बोधने योग्य हूँ तथा जो मैं लोगों को सम्बोधता हूँ'' ऐसा भाव है वह भी विभ्रम का स्थान है। क्योंकि मैं तो पाप से रहित हूँ अर्थात् आत्मा तो निष्कलंक है, इसे कौन सम्बोधे? और यह किसको सम्बोधे?

यः स्वमेव समादत्ते नादत्ते यः स्वतोऽपरम्।
निर्विकल्पः स विज्ञानी स्वसंवेद्योऽस्मि केवलम्।।27।।

जो आत्मा आपको ही ग्रहण करता है तथा आपसे पर है उसको नहीं ग्रहण करता सो यह विज्ञानी (भेदज्ञानी) विकल्परहित होकर, इस प्रकार भावना करता है कि मैं एक अपने ही जानने योग्य हूँ; इस प्रकार विचार कर परसे परस्पर देने लेने का व्यवहार छोड़ देता है।

जातसर्पमतेर्यद्वच्छृङ्खलायां क्रियाभ्रमः।

तथैव में क्रियाः पूर्वास्तन्वादौ स्वमिति भ्रमात्।।28।।

जिसकी साँकल में सर्प की बुद्धि है ऐसे पुरुष जैसे क्रिया का भ्रम होता है, उसी प्रकार मेरे भी शरीरादिक में आत्मबुद्धिरूप भ्रम से, भेदज्ञान होने से पहले, भ्रमरूप क्रिया अनेक हुई।

शृंखलायां यथा वृत्तिर्विनष्टे भुजगभ्रमे।

तन्वादौ में तथा वृत्तिर्नष्टात्मविभ्रमस्य वै।।29।।

तथा जब साँकल में सर्प का भ्रम था सो नष्ट हो जाने पर साँकल में जिस प्रकार यथावत् प्रवृत्ति होती है, उसी प्रकार मेरे शरीरादिक में आत्मा का भ्रम नष्ट हो जाने पर मैं भ्रम से रहित हो गया, तब मेरे शरीरादिक में यथावत् प्रवृत्ति हो गई, उनको परद्रव्य माने, तब ऐसी भावना से परद्रव्य का ममत्व छोड़े।

एतदेवैष एकं द्वे बहूनीति धियः पदम्।

नाहं यच्चात्मनात्मानं वेत्त्यात्मनि तदस्म्यहम्।।30।।

तथा इस प्रकार विचार करे कि यह तो नुपंसक है, यह स्त्री है, और यह पुरुष है, तथा यह एक है, दो हैं, बहुत हैं, ऐसे लिंग और संख्या की बुद्धि का स्थान मैं नहीं हूँ, क्योंकि मैं तो अपने द्वारा अपने को आपमें ही जानने वाला हूँ, इस प्रकार लिंग संख्या का विकल्प भी छोड़े।

यदबोधे मया सुप्तं यद्बोधे पुनरुत्थितम्।

तद्रूपं मम प्रत्यक्षं स्वसंवेद्यमहं किल।।31।।

जिसका ज्ञान नहीं होते तो मैं सोया और जिसका ज्ञान होते हुए मैं उठा (जगा) वह रूप भी मेरे जानने योग्य प्रत्यक्ष है, वह ही मैं हूँ; इस प्रकार विचार करें।

ज्योतिर्मयं ममात्मानं पश्यतोऽत्रैव यान्त्यमी।

क्षयं रागादयस्तेन नारिः कोऽपि प्रियो न मे।।32।।

फिर यह विचारे कि मैं अपने को ज्योतिर्मय ज्ञानप्रकाश देखता हूँ, मेरे रागादिक यहाँ ही क्षय को प्राप्त होते हैं; इस कारण मेरे न तो कोई शत्रु है और न कोई मित्र है।

अदृष्टमत्स्वरूपोऽयं जनो नारिर्न में प्रियः।

साक्षात्सुदृष्टरूपोऽपि जनो नारिः सुहृन्न मे।।33।।

नहीं देखा है मेरा स्वरूप जिसने ऐसा लोक न तो मेरा शत्रु है और न मेरा मित्र है, और जिसने साक्षात् मेरा स्वरूप देखा वह लोक भी मेरा न शत्रु है और न मित्र है ही है; इस प्रकार विचार करे।

अतः प्रभृति निःशेषं पूर्वं पूर्वं विचेष्टितम्।

ममाद्य ज्ञाततत्त्वस्य भाति स्वप्नेन्द्रजालवत्।।34।।

यहाँ से लगाकर, तत्त्वस्वरूप के जानने से पहिले पहिले जो मैंने सर्व प्रकार की चेष्टायें की, अब स्वरूप जानने से मुझे वे सब स्वप्रसदृश अथवा इन्द्रजालवत् प्रतिभासती हैं।

यो विशुद्धः प्रसिद्धात्मा परं ज्योतिः सनातनः।

सोऽहं तस्मात्प्रपश्यामि स्वस्मिन्नात्मानमच्युतम्।।35।।

विशुद्ध (निर्मल) है और प्रसिद्ध है आत्मस्वरूप जिसका ऐसा परमज्योति सनातन जो सुनने में आता है सो मैं ही हूँ, इस कारण अपने में ही अविनाशी परमात्मा को मैं प्रकटतया देखता हूँ; इस प्रकार अपने को ही परमात्मस्वरूप देखे।

बाह्यात्मानमपि त्यक्त्वा प्रसन्नेनान्तरात्मना।

विधूतकल्पनाजालं परमात्मानमामनेत्।।36।।

फिर बाह्य आत्मा को भी छोडकर प्रसन्नरूप अन्तरात्मा के द्वारा मिटे हैं कल्पना के जाल (समूह) जिसके ऐसे परमात्मा को अभ्यासगोचर करे।

बन्धमोक्षावुभावेतौ भ्रेमतरनिबन्धनौ।

बन्धश्च परसम्बन्धाद्भेदाभ्यासात्ततः शिवम्।।37।।

बन्ध और मोक्ष ये दोनों भ्रम और निर्भ्रम है कारण जिनका ऐसे हैं। उनमें से परके संबंध से तो बंध है और परद्रव्य के भेद के अभ्यास से मोक्ष है।

अलौकिकमहो वृत्तं ज्ञानिनः केन वर्ण्यते।

अज्ञानी बध्यते यत्र ज्ञानी तत्रैव मुच्यते।।38।।

अहो! देखो, ज्ञानीपुरुषका यह बडा अलौकिक चारित्र किसके द्वारा वर्णन किया जाय? क्योंकि जिस आचरण में अज्ञानी कर्म से बंध जाता है उसी आचरण में

ज्ञानी बंध से छूट जाता है यह आश्चर्य की बात है।

यज्जन्मगहने खिन्नं प्राङ्मया दुःखसंकुले।

तदात्मेतरयोर्नूनमभेदेनावधारणात्।।39।।

फिर ऐसा विचार करे कि मैं दुःख से भरे हुए इस संसाररूप गहन वन में जो खेदखिन्न हुआ सो आत्मा और अनात्मा के अभेद के द्वारा, अवधारणा हुए भेदविज्ञान के बिना ही संसार में दुःखी हुआ हूँ; ऐसा निश्चय करे।

मयि सत्यपि विज्ञानप्रदीपे विश्वदर्शिनि।

किं निमज्जत्ययं लोको वराको जन्मकर्दमे।।40।।

मुझ समस्त को दिखानेवाले ज्ञानस्वरूप दीपक के होते हुए भी यह वराक लोक संसाररूपी कर्दम में क्यों डूबता है, अर्थात् आत्मा की ओर क्यों नहीं देखता कि जिससे संसाररूपी कर्दम में न डूबे? इस प्रकार देखे।

आत्मन्येवात्मनात्मायं स्वयमेवानुभूयते।

अतोऽन्यत्रैव मां ज्ञातुं प्रयासः कार्यनिष्फलः।।41।।

यह आत्मा आत्मा में ही आत्मा के द्वारा स्वयमेव अनुभवन किया जाता है, इससे अन्यत्र आत्मा के जानने का जो खेद है सो कार्य निष्फल है, अर्थात् उस कार्य का फल नहीं है, इस प्रकार जाने।

स एवाहं स एवाहमित्यभ्यस्यन्ननारतम्।

वासनां दृढयन्नेव प्राप्नोत्यात्मन्यवस्थितिम्।।42।।

'वही मैं हूँ, वही मैं हूँ' इस प्रकार निरन्तर अभ्यास करता हुआ पुरुष इस वासना को दृढ़ करता हुआ आत्मा में अवस्थिति को प्राप्त होता है, अर्थात् ठहर जाता है।

स्याद्यद्यत्प्रीतयेऽज्ञस्य तत्तदेवापदास्पदम्।

बिभेत्ययं पुनर्यस्मिंस्तदेवानन्दमन्दिरम्।।43।।

अज्ञानी पुरुष के जो जो विषयादिक वस्तु प्रीति के अर्थ हैं वह वह ज्ञानी के आपदा का स्थान है तथा अज्ञानी जिस तपश्चरणादि में भय करता है वही ज्ञानी के आनन्द का निवास है, क्योंकि अज्ञानी को अज्ञान के कारण विपर्यय भासता है।

सुसंवृतेन्द्रियग्रामे प्रसन्ने चान्तरात्मनि।

क्षणं स्फुरति यत्तत्त्वं तद्रूपं परमेष्ठिनः।।44।।

भले प्रकार संवररूप किये हैं इन्द्रियों के समूह जिसने और अन्तरंग में प्रसन्न (विशुद्धपरिणाम स्वरूप) अन्तरात्मा के होने पर जो उस समय तत्त्व का स्फुरण होता है वही परमेष्ठी का रूप है। **भावार्थ**-शुद्ध नय के द्वारा क्षणमात्र भी अनुभव करने पर जो शुद्धात्मा का स्वरूप प्रतिभासता है वही परमेष्ठी अरहंतसिद्ध का स्वरूप है।

यः सिद्धात्मा परः सोऽहं योऽहं स परमेश्वरः।

मदन्यो न मयोपास्यो मदन्येन च चाप्यहम्।।45।।

जो सिद्ध का आत्मस्वरूप है वही परमात्मा परमेश्वरस्वरूप मैं हूँ, मेरे मुझसे अन्य कोई उपासना करने योग्य नहीं है तथा मुझसे अन्य करके मैं उपासना करने योग्य नहीं हूँ इस प्रकार अद्वैतभावना करें।

आकृष्य गोचरव्याघ्रमुखादात्मानमात्मना।

स्वस्मिन्नेव स्थिरीभूतश्चिदानन्दमये स्वयम्।।46।।

फिर इस प्रकार भावना करे कि मैं अपने आत्मा को इन्द्रियों के विषयरूपी व्याघ्र के मुख से खींच (काढ) कर, आत्मा के द्वारा ही मैं चिदानन्दमय अपने आत्मा में स्थिररूप हुआ हूँ, इस प्रकार चैतन्य और आनन्दरूप विषें लीन हों।

पृथगित्थं न मां वेत्ति यस्तनोर्वीतविभ्रमः।

कुर्वन्नपि तपस्तीव्रं न स मुच्येत बन्धनैः।।47।।

विभ्रमरहित जो मुनि पूर्वोक्तप्रकार आत्मा को देह से भिन्न नहीं जानता है वह तीव्र तप करता हुआ भी कर्मबंधन से नहीं छूटता।

भेदविज्ञानी मुनि आत्मा और परके अन्तर्भेदी विज्ञानरूप अमृत के वेग से आनन्दरूप होता हुआ व तप करता हुआ भी शरीर से उत्पन्न हुए खेद क्लेशादि से खिन्न नहीं होता है।

रागादिमलविश्लेषाद्यस्य चित्तं सुनिर्मलम्।

सम्यक् स्वं स हि जानाति नान्यः केनापि हेतुना।।49।।

जिस मुनि का चित्त रागादिक मल के भिन्न होने से भले प्रकार निर्मल हो गया हो वही मुनि सम्यक्प्रकार आत्मा (अपने) को जानता है, अन्य किसी हेतु से नहीं

जान सकता।

निर्विकल्पं मनस्तत्त्वं न विकल्पैरभिद्रुतम्।

निर्विकल्पमतः कार्यं सम्यक्तत्त्वस्य सिद्धये।।50।।

निर्विकल्प मन तो तत्त्वस्वरूप है, और जो मन विकल्पों से पीडित है वह तत्त्वस्वरूप नहीं है, इस कारण सम्यक्प्रकार तत्त्व की सिद्धि के लिये मन को विकल्परहित करना, यह उपदेश है।

अज्ञानविप्लुतं चेतः स्वतत्त्वादपवर्त्तते।

विज्ञानवासितं तद्धि पश्यत्यन्तः पुरः प्रभुम्।।51।।

जो मन अज्ञान से बिगडा हुआ (पीडित) है वह तो निजस्वरूप से छूट जाता है, और जो मन विज्ञान कहिये सम्यग्ज्ञान से वासित है अपने अन्तरंग में प्रभु भगवान् परमात्मा को देखता है, यह विधि है। इस कारण अज्ञान को दूर करना चाहिये।

मुनि का मन यदि मोह के उदय से रागादिक से पीडित हो तो मुनि उस मन को आत्मस्वरूप में लगाकर, उन रागादिक क्षणमात्र में क्षेपण करता है अर्थात् दूर करता है।

जिस काया में अज्ञानी आत्मा रत (रागी) हुआ है, उस काया से बुद्धिपूर्वक भिन्न किये हुए चिदानन्द स्वरूप में लगाया हुआ मन काया में प्रीति छोड देता है।

स्वविभ्रमोद्भवं दुःखं स्वज्ञानेनैव हीयते।

तपसाऽपि न तच्छेद्यमात्मविज्ञानवर्जितैः।।54।।

अपने विभ्रम से उत्पन्न हुआ दुःख अपने ही ज्ञानसे दूर होता है और जो आत्मा के विज्ञान से रहित पुरुष हैं वे तप के द्वारा भी उस दुःख को दूर नहीं कर सकते।

भावार्थ-आत्मज्ञान के बिना केवल तप करने मात्र से दुःख नहीं मिटता।

रूपायुर्बलवित्तादि-सम्पत्तिं स्वस्य वाञ्छति।

बहिरात्माथ विज्ञानी साक्षात्तेभ्योऽपि विच्युतिम्।।55।।

जो बहिरात्मा है वह तो अपने लिये सुंदर रूप, आयु, बल, धन इत्यादिक चाहता है, और जो भेदविज्ञानी पुरुष है वह अपने में रूपादिक विद्यमान हों उनसे भी विच्युति कहिये छूटना चाहता है।

कृत्वाहंमतिमन्यत्र बध्नाति स्वं स्वतश्च्युतः।

आत्मन्यात्ममतिं कृत्वा तस्माद् ज्ञानी विमुच्यते।।56।।

अपने आत्मस्वभाव से च्युत हुआ बहिरात्मा अन्य पदार्थों में अहंबुद्धि करके अपने आपको बाँधता है अर्थात् कर्मबन्ध करता है, और ज्ञानीपुरुष आत्मा में ही आत्मबुद्धि करके उस परपदार्थ से छूट जाता है।

आत्मानं वेत्त्यविज्ञानी त्रिलिङ्गी संगतं वपुः।

सम्यग्वेदी पुनस्तत्त्वं लिङ्गसंगतिवर्जितम्।।57।।

भेदविज्ञान रहित बहिरात्मा तीन लिंगों से चिह्नित शरीर को आत्मा जानता है और सम्यग्ज्ञानी पुरुष आत्मतत्त्व को इन लिंगों की संगति से रहित जानता है।

समभ्यस्तं सुविज्ञातं निर्णीतमपि तत्त्वतः।

अनादिविभ्रमात्तत्त्वं प्रस्खलत्येव योगिनः।।58।।

फिर ऐसी भावना करता है कि योगी मुनि का तत्त्व कहिये आत्मा का पदार्थ स्वरूप भले प्रकार अभ्यासरूप (परमार्थनिर्णय) किया हुआ भी अनादि विभ्रम के कारण डिग जाता है।

भावार्थ-विभ्रम का संस्कार ऐसा तीव्र होता है कि जाना हुआ आत्मस्वरूप भी छूट जाता है।

अचिद्दृश्यमिदं रूपं न चिद्दृश्यं ततो वृथा।

मम रागादयोऽर्थेषु स्वरूपं संश्रयाम्यहम्।।59।।

यह रूप (मूर्ति) अचेतन हैं और दृश्य अर्थात् इन्द्रियग्राह्य हैं और यह चेतन दृश्य (इन्द्रियग्राह्य) नहीं हैं, इस कारण मेरे रूपादिक परपदार्थों में जो रागादिक हैं वे सब वृथा (निष्फल) हैं, मैं अपने स्वरूप का आश्रय करता हूँ; इस प्रकार विचारे।

करोत्यज्ञो ग्रहत्यागौ बहिरन्तस्तु तत्त्ववित्।

शुद्धात्मा न बहिर्वान्तस्तौ विदध्यात्कथंचन।।60।।

अज्ञानी बाह्य त्याग ग्रहण करता है और तत्त्वज्ञानी अन्तरंग त्याग ग्रहण करता है, और जो शुद्धात्मा है सो बाह्य और अन्तरंग के दोनों ही त्याग ग्रहण नहीं करता है।

वाक्कायाभ्यां पृथक् कृत्वा मनसात्मानमभ्यसेत्।

वाक्तनुभ्यां प्रकुर्वीत कार्यमन्यत्र चेतसा।।61।।

मुनि आत्मा को वचन और काय से भिन्न करके मन से अभ्यास करे तथा अन्य कार्यों को वचन और कायसे करे, चित्त से नहीं करे, चित्त से तो आत्मा का ही अभ्यास करे।

विश्वासानन्दयोः स्थानं स्याज्जगदज्ञचेतसाम्।

क्वानन्द क्व च विश्वासः स्वस्मिन्नेवात्मवेदिनाम्।।62।।

अज्ञानचित्तवालों के तो यह जगत् विश्वास और आनन्द का स्थान है और अपने आत्मा में ही आनन्द के जानने वालों के कहाँ तो आनन्द और कहाँ विश्वास? अर्थात् कहीं भी नहीं, अपने में ही आनन्दरूप है।

स्वबोधादपरं किञ्चिन्न स्वान्ते विभृयात्क्षणम्।

कुर्यात्कार्यवशात्किञ्चिद्वाक्कायाभ्यामनादृतः।।63।।

आत्मज्ञानी मुनि ज्ञान के सिवाय किसी कार्य को मन में क्षण मात्र भी नहीं धारण करता। यदि अन्य कार्यो को किसी कारणवशतः करता भी है तो वचन और काय से बिना आदर के करता है, मन में तो ज्ञान की ही वासना निरन्तर रहती है।

यदक्षविषयं रूपं मुद्रूपात्तद्विलक्षणम्।

आनन्दनिर्भरं रूपमन्तज्योर्तिमयं मम।।64।।

आत्मज्ञानी मुनि यह विचारता है कि जो इन्द्रियों के विषयरूप मूर्ति है सो तो मेरे आत्मस्वरूप से विलक्षण है, मेरा रूप तो आनन्द से भरा अन्तरंग ज्योतिर्मयी (ज्ञानप्रकाशमय) है।

अन्तर्दुःखं बहिः सौख्यं योगाभ्यासोद्यतात्मनाम्।

सुप्रतिष्ठितयोगानां विपर्यस्तमिदं पुनः।।65।।

योग के अभ्यास में उद्यमरूप है आत्मा जिनका ऐसे साधक मुनियों के अन्तरंग में दुःख और बाह्य में सुख है, और जिनका योग सुप्रतिष्ठित है उनके इससे विपर्यस्त है अर्थात् अन्तरंग में तो सुख है और बाह्य में दुःख है।

भावार्थ-योगी साधक अवस्था में तो योगाभ्यास को सुखरूप जान उद्यम करता है, परन्तु साधना करते समय कुछ पीड़ा होती है; और जब अभ्यास सिद्ध हो जाता है तब परके देखने में तो दुःख दीखता है किन्तु अन्तरंग में सुखी होता है।

तद्विज्ञेयं तदाख्येयं तच्छ्रव्यं चिन्त्यमेव वा।

येन भ्रान्तिमपास्योच्चैः स्यादात्मन्यात्मनः स्थितिः।।66।।

मुनिजनों को यह करना योग्य है कि जिससे भ्रांति को छोड़कर आत्मा की स्थिति आत्मा में ही हो और यही विषय जानना चाहिये तथा इसको ही वचन से कहना व सुनना तथा इसको ही विचारना चाहिये।

विषयेषु न तत्किञ्चित्स्याद्धितं यच्छरीरिणाम्।

तथाऽप्येष्वेव कुर्वन्ति प्रीतिमज्ञा न योगिनः।।67।।

यद्यपि इन इन्द्रियों के विषयों में ऐसा कुछ भी नहीं है जो जीवों को हितकर हो, तथापि ये अज्ञान को जोड़ने वाले मूर्ख प्राणी उन विषयों में ही प्रीति करते हैं, सो यह अज्ञान की चेष्टा है।

अनाख्यातमिवाख्यातमपि न प्रतिपद्यते।

आत्मानं जड़धीस्तेन वन्ध्यस्तत्र ममोद्यमः।।68।।

जड़धी (मूर्ख) कहते हुए भी बिना कहे के समान आत्मा को प्राप्त नहीं होता सो यहाँ मेरे कहने का उद्यम वृथा (निष्फल) है, इस प्रकार विचार करे।

तन्नाहं यन्मया किञ्चित्प्रज्ञापयितुमिष्यते।

योऽहं न स परग्राह्यस्तन्मुधा बोधनोद्यमः।।69।।

जो कुछ मैं पर को जानना चाहता हूँ सो मैं वह आत्मा नहीं हूँ और जो मैं आत्मा हूँ वह आत्मा परके ग्रहण करने योग्य नहीं है; इस कारण मेरे परके संबोधन का जो उद्यम है, सो वृथा है, क्योंकि, आत्मा आपसे ही जाना जाता है, परका कहना सुनना निमित्तमात्र है, इसलिए इसमें आग्रह करना वृथा है।

निरुद्धज्योतिरज्ञोऽन्तः स्वतोऽन्यत्रैव तुष्यति।

तुष्यत्यात्मनि विज्ञानी बहिर्विगतविभ्रमः।।70।।

अज्ञानी तो अपने से भिन्न परवस्तु में ही सन्तुष्ट होता है, क्योंकि उसकी अन्तर्ज्योति रुद्ध हो गई है, और ज्ञानीपुरुष आत्मा में ही सन्तुष्ट होता है, क्योंकि उसके बाह्य विभ्रम नष्ट हो गया है।

यावदात्मेच्छयाऽऽदत्ते वाक्चित्तवपुषां व्रजम्।

जन्म तावदमीषां तु भेदज्ञानाद्भवच्युतिः।।71।।

यह प्राणी जब तक वचन मन काय के समूह को आत्मा की इच्छा से ग्रहण करता है तब तक इसके संसार है, तथा इनका जब भेदज्ञान है तब उससे संसार का अभाव होता है।

जिस प्रकार वस्त्र के जीर्ण होते, रक्त होते, दृढ़ होते वा नष्ट होते, आत्मा या शरीर जीर्ण रक्तादिक स्वरूप नहीं होता, उसी प्रकार शरीर के जीर्ण या ध्वस्त होते हुए आत्मा जीर्णादिकरूप नहीं होता। यह दृष्टान्त दाष्टान्त जानना।।72।।

चलमप्यचलप्रख्यं जगद्यस्यावभासते।

ज्ञानयोगक्रियाहीनं स एवास्कन्दति ध्रुवम्।।73।।

जिस योगी मुनि को चलस्वरूप भी यह जगत् अचल के समान दिखता है, वही मुनि इन्द्रियज्ञान की और योग की क्रिया हीन ऐसे शिव (निर्वाण) को प्राप्त होता है।

भावार्थ-जब अपने परिणाम स्थिरीभूत होते हैं तब समस्त पदार्थ ज्ञान में निश्चल प्रतिबिम्बस्वरूप ही भासते हैं और तब ही मुक्त होता है।

यह आत्मा स्वयं तो ज्ञानज्योति-प्रकाशमय है, और देहसहित देही औदारिक तैजस और कार्माण इन तीन शरीरों से ढ़का हुआ है, सो यह आत्मा जब तक अपने ज्ञानमय आत्मा को नहीं जानता तब तक बंध का अभाव कहाँ से होगा? अर्थात् नहीं होगा।

क्षरते मिलते पुद्गल परमाणुओं के स्कन्धों के निवेश से रचा हुआ जो यह शरीर है, उसको यह मूढ़ बहिरात्मा अनादि से उत्पन्न हुए विभ्रम से आत्मा जानता है। यही संसार का बीज है।

मुक्तिरेव मुनेस्तस्य यस्यात्मन्यचला स्थितिः।

न तस्यास्ति ध्रुवं मुक्तिर्न यस्यात्मन्यवस्थितिः।।76।।

जिस मुनि की आत्मा में अचलस्थिति है उसी की मुक्ति होती है, और जिसकी आत्मा में अवस्थिति नहीं है उसकी नियम से मुक्ति नहीं होती; क्योंकि आत्मा में जो अवस्थिति है वही सम्यग्दर्शनज्ञानपूर्वक चारित्र है और उसी से मुक्ति है।

दृढ़ः स्थूलः स्थिरो दीर्घो जीर्णः शीर्णो लघुर्गुरुः।

वपुषैवमसंबधन्स्वं विन्द्याद्वेदनात्मकम्।।77।।

शरीरसहित मैं दृढ़ हूँ, स्थूल (मोटा) हूँ, स्थिर हूँ, लंबा हूँ, जीर्ण हूँ, शीर्ण (अतिकृश) हूँ, हलका हूँ और भारी हूँ इस प्रकार आत्मा को शरीर सहित संबंध रूप नहीं करता हुआ पुरुष ही आत्मा को ज्ञानस्वरूप जानता है अर्थात् अनुभव करता है।

जनसंसर्गे वाक्चित्तपरिस्पन्दमनोभ्रमाः।

उत्तरोत्तरबीजानि ज्ञानी जनस्ततस्त्यजेत्।।78।।

लोक का संसर्ग होने से वचन और चित्त का चलना होता हैं और मन को भ्रम होता है, ये उत्तरोत्तर बीजस्वरूप हैं, अर्थात् लोक के संसर्ग से तो परस्पर वचनालाप होता है और उस वचनालाप से चित्त चलायमान होता है और चित्त चलने से मन में भ्रम होता है; इस कारण, ज्ञानी मुनि लोक के संसर्ग को छोड़ें।

भावार्थ-लौकिक जन की संगति न करे।

नगग्रामादिषु स्वस्य निवासं वेत्त्यनात्मवित्।

सर्वावस्थासु विज्ञानी स्वस्मिन्नेवास्तविभ्रमः।।79।।

जो अनात्मवित् हैं अर्थात् आत्मा को नहीं जानते, वे पर्वत ग्राम आदि में अपना निवास जानते हैं; और जो अस्तविभ्रम (ज्ञानी) हैं, वे समस्त अवस्थाओं में अपने आत्मा में ही अपना निवास स्थान समझते हैं।

भावार्थ-परमार्थ से परके आधेय आधार भाव को नहीं जानते।

शरीर में यह शरीर ही आत्मा है इस प्रकार जानना काय की सन्तान अर्थात् आगामी परिपाटी का कारण है, और अपने आत्मा में ही आत्मा है ऐसा ज्ञान इस शरीर से अन्य शरीर होने के अभाव का कारण है।

आत्माऽऽत्मनां भवं मोक्षमात्मनः कुरुते यतः।

अतो रिपुर्गुरुश्चायमात्मैव स्फुटमात्मनः।।81।।

यह आत्मा अपने ही द्वारा अपने संसार को करता है और अपने द्वारा आप ही अपने लिये मोक्ष करता है; इस कारण आप ही अपना शत्रु है और आप ही अपना गुरु है, यह प्रकटतया जानो। पर तो बाह्य निमित्तमात्र है।

आत्मा को जानने वाला ज्ञानी देह को आत्मा से भिन्न तथा आत्मा को देह से भिन्न देखकर ही निःशंक हो (देह को) त्यागता है। जैसे प्राकृत पुरुष जब वस्त्र मलीन

होकर ग्लानि का स्थान होता है, तब उस वस्त्र को निःशंक हो, छोड़ देता है, उसी प्रकार यह देह भी ग्लानि का स्थान है, इस कारण ज्ञानी को इसके त्यागने में कुछ भी शंका नहीं होती है।

ज्ञानी आत्मा को स्वरूप के अन्तरंग में देखकर और देह को बाह्य में देखकर दोनों के भेद में निष्णात कहिये निःसंदेह ज्ञाता होकर आत्मा के निश्चय में नहीं डिगता अर्थात् निश्चल अन्तरात्मा होकर रहता है।

तर्कयेज्जगदुन्मत्तं प्रागुत्पन्नात्मनिश्चयः।

पश्चाल्लोष्टमिवाचष्टे तद्दृढाभ्यासवासितः।।84।।

जिसको आत्मा का निश्चय हो गया है ऐसा ज्ञानी प्रथम तो इस जगत् को उन्मत्तवत् विचारता है, तत्पश्चात् आत्मा का दृढ़ अभ्यास करके पाषाण के समान देखता है। **भावार्थः** जब ज्ञान उत्पन्न होता है, उस समय यह जगत् बावलासा दिखता है, तत्पश्चात् जब ज्ञानाभ्यास दृढ़ हो जाता है तब वस्तुस्वभाव के विचारसे जैसा है वैसा ही दिखता है अर्थात् उसमें इष्ट अनिष्ट भाव नहीं होता।

शरीराद्भिन्नमात्मानं शृण्वन्नपि वदन्नपि।

तावन्न मुच्यते यावन्न भेदाभ्यासनिष्ठितः।।85।।

यह पुरुष आत्मा को शरीर से भिन्न सुनता हुआ भी तथा कहता हुआ भी जब तक इसके भेदाभ्यास में निष्ठित (परिपक्व) नहीं होता, तब तक इससे छूटता नहीं, क्योंकि निरन्तर भेदज्ञान के अभ्यास से ही इसका ममत्व छूटता है।

व्यतिरिक्तं तनोस्तद्वद्भाव्य आत्माऽऽत्मनाऽऽत्मनि।

स्वप्नेऽप्ययं यथाऽभ्येति पुनर्नाङ्गेन संगतिम्।।86।।

आत्मा को आत्मा ही द्वारा आत्मा में शरीर से भिन्न ऐसा विचारना कि जिससे फिर यह आत्मा स्वप्न में भी शरीर की संगति को प्राप्त न हो, अर्थात् मैं शरीर हूँ ऐसी बुद्धि स्वप्न में भी न हो ऐसा निश्चय करना चाहिये।

यतो व्रताव्रते पुंसां शुभाशुभनिबन्धने।

तदभावात्पुनर्मोक्षो मुमुक्षुस्ते ततस्त्यजेत्।।87।।

तथा व्रत और अव्रत शुभ और अशुभ दो प्रकार के बंधों के कारण हैं, और शुभाशुभ कर्म के अभाव से मोक्ष होता है, इस कारण मुक्ति का इच्छुक मुनि व्रत और

अव्रत दोनों को ही त्यागता है, अर्थात् इनमें करने न करने का अभिमान नहीं करता।

प्रागसंयममुत्सृज्य संयमैकरतो भवेत्।

ततोऽपि विरमेत्प्राप्य सम्यगात्मन्यवस्थितिम्।।88।।

व्रत अव्रत का त्यागना कहा है सो इस प्रकार कि प्रथम तो असंयम को छोड़ संयम में रक्त हो। तत्पश्चात् सम्यक् प्रकार से आत्मा में अवस्थिति को प्राप्त होकर उस संयम में भी विरक्त हो जावे, अर्थात् संयम का ममत्व वा अभिमान न रखे।

जातिलिङ्गमिति द्वन्द्वमङ्गमाश्रित्य वर्त्तते।

अङ्गात्मकश्च संसारस्तस्मात्तद्द्वितयं त्यजेत्।।89।।

जाति (क्षत्रियादिक) और लिंग (मुनि श्रावकादिक का वेष) ये दोनों ही देह के आश्रित हैं तथा इस देहस्वरूप ही संसार है, इसलिए मुनि इन जाति लिंग दोनों को ही त्यागता है, अर्थात् इनका अभिमान नहीं रखता।

अभेदविद्यथा पङ्गोर्वेति चक्षुरचक्षुपि।

अङ्गेऽपि च तथा वेत्ति संयोगाद्दृश्यमात्मनः।।90।।

जिस प्रकार अन्धे के कन्धे पर पांगुला चढ़कर चलता है, उनका भेद न जानने वाला कोई पुरुष पंगु के नेत्रों को अन्धे के नेत्र जानता है, उसी प्रकार आत्मा और देह का संयोग है, सो इनका भेद नहीं जानने वाला अज्ञानी आत्मा के दृश्य को अंग (देह) का ही दृश्य (देखने योग्य) जानता है।

जिस प्रकार पंगु और अंधे के भेद को जानने वाला पुरुष पंगु के नेत्रों को अंधे के नेत्र नहीं जानता, उसी प्रकार आत्मा और देह के भेद को जानने वाला पुरुष आत्मा के दृश्य को देह का दृश्य नहीं जानता, क्योंकि आत्मा चैतन्य ज्ञानवान है, परन्तु देह के बिना चल नहीं सकता, इस कारण वह पंगु के समान है; और देह अचेतन है, इस कारण वह अंधे के समान है इस भेद को जो जानता है, वह देह में आत्मा न जानकर, आत्मा में ही आत्मा को जानता है।

मत्तोन्मत्तादिचेष्टासु यथाज्ञस्य स्वविभ्रमः।

तथा सर्वास्ववस्थासु न क्वचित्तत्त्वदर्शिनः।।92।।

जिस प्रकार अज्ञानी के मत्त उन्मत्त आदि चेष्टाओं में आत्मा का विभ्रम होता है अर्थात् अज्ञानी अपने को भूल जाता है और जब चेत करता है तब अपने को जानता

है; उसी प्रकार तत्त्वदर्शी के सब ही अवस्थाओं में विभ्रम नहीं है अर्थात् सदा ही समस्त अवस्थाओं में आत्मा जानता है, भूलता कभी नहीं है। **भावार्थ**-आत्मज्ञानी सम्यग्दृष्टि के सर्व अवस्थाओं में कर्मों की निर्जरा होती है।

देहात्मदृग्र मुच्येत चेज्जागर्ति पठत्यपि।

सुप्तोन्मत्तोऽपि मुच्येत स्वस्मिन्नुत्पन्ननिश्चयः।।93।।

जिसकी देह में ही आत्मदृष्टि है ऐसा मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा यदि जागता है तथा पढ़ता (वचन उच्चार करता) है तो भी वह कर्मों से नहीं छूटता और जिसका आत्मा में निश्चय हो गया है ऐसा भेदज्ञानी सोता या उन्मत्त रहता हुआ भी कर्मों से मुक्त हो जाता है।

आत्मानं सिद्धमाराध्य प्राप्नोत्यात्मापि सिद्धताम्।

वर्तिः प्रदीपमासाद्य यथाभ्येति प्रदीपताम्।।94।।

जैसे वर्तिका (बत्ती) दीप को प्राप्त होकर दीपक हो जाती है, उसी प्रकार यह आत्मा सिद्ध परमात्मा का आराधन करके सिद्धपने को प्राप्त होता है।

आराध्यात्मानमेवात्मा परमात्मत्वमश्नुते।

यथा भवति वृक्षः स्वं स्वेनोद्धृष्य हुताशनः।।95।।

आत्मा आत्मा को ही आराधकर परमात्मपन को प्राप्त होता है, जैसे वृक्ष अपने को आपसे ही घिसकर अग्नि हो जाता है। **भावार्थ** - जैसे बाँसों के परस्पर घिसने से उनमें अग्नि उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार आत्मा, आत्मा का आराधन करने से परमात्मा हो जाता है।

इत्थं वाग्गोचरातीतं भावयन्परमेष्ठिनम्।

आसादयति तद्यस्मान्न भूयो विनिवर्तते।।96।।

यह आत्मा पूर्वोक्त प्रकार वचन के अगोचर परमेष्ठी को भावता हुआ उस पद को पाता है कि जिस पद से फिर निवृत्ति (लौटना) न हो, अर्थात् जो छूटे नहीं ऐसे सिद्ध पद को प्राप्त होता है।

अयत्नजनितं मन्ये ज्ञानिनां परमं पदम्।

यदात्मन्यात्मविज्ञानमात्रमेव समीहते।।97।।

यदि यह आत्मा आत्मा में ही विज्ञान मात्र को सम्यक् प्रकार चाहता है, तो जानना चाहिये कि ज्ञानियों के परमपद बिना यत्न के ही हो गया। 'मैं ऐसा मानता हूँ' इस प्रकार आचार्य महाराज ने संभावना की है।

जैसे स्वप्न में अपने को नष्ट हुआ देख लेने से आत्मा नष्ट नहीं होता, उसी प्रकार जागते हुए भी विनाश नहीं है किन्तु दोनों जगह विनाश के भ्रम का अविशेष है।

भावार्थ-स्वप्न में अपने को मरा हुआ माने, उसी प्रकार जागने पर भी मरा हुआ माने तो यह भ्रम ही है। आत्मा सदा अमर है; आत्मा का मरण मानना भ्रम है।

अतीन्द्रियमनिर्देश्यममूर्तं कल्पनाच्युतम्।

चिदानन्दमयं विद्धि स्वस्मिन्नात्मानमात्मना।।99।।

हे आत्मन्! तू आत्मा को आत्मा में ही आपसे ही ऐसा जान कि, मैं अतीन्द्रिय हूँ अर्थात् मेरे इन्द्रिय नहीं अथवा मैं इन्द्रियों के गोचर नहीं हूँ, अथवा इन्द्रियों के स्पर्श रस गन्ध वर्ण और शब्द विषय मुझ (आत्मा) में नहीं हैं इस कारण अतीन्द्रिय हूँ, तथा अनिर्देश्य हूँ-वचनों के द्वारा कहने में नहीं आता ऐसा हूँ, तथा अमूर्तिक हूँ अर्थात् स्पशार्दिक से रहित हूँ, तथा कल्पनातीत हूँ, और चैतन्य तथा आनंदमय हूँ।

मुच्येताधीतशास्त्रोऽपि नात्मेति कल्पयन्वपुः।

आत्मन्यात्मानमन्विष्यन् श्रुतशुन्योऽपि मुच्यते।।100।।

शरीर में यह शरीर ही आत्मा है इस प्रकार अभ्यास करता हुआ वा जानता हुआ पुरुष यदि अधीतशास्त्र (पढ़े हैं शास्त्र जिसने ऐसा) है तथापि कर्म से नहीं छूटता है अर्थात् मुक्त नहीं हो सकता है तथा यदि शास्त्र से शून्य है और आत्मा में ही आत्मा को जानता वा मानता है तो कर्म से छूटकर मुक्त हो जाता है।

भावार्थ-शास्त्रज्ञान भी आत्मज्ञान के लिए ही है। यदि आत्मज्ञान नहीं हुआ तो शास्त्र पढ़ने से क्या फल? अर्थात् व्यर्थ ही है।

पराधीनसुखास्वादनिर्वेदविशदस्य ते।

आत्मैवामृततां गच्छन्नविच्छिन्नं स्वमीक्षते।।101।।

हे आत्मन्! पराधीन इन्द्रियजनित सुख के स्वाद में वैराग्य है स्पष्ट जिसके ऐसा जो तू उसका आत्मा ही अमृतपन को प्राप्त हुआ अविच्छेदरूप अपने को देखता

है। **भावार्थ**-इन्द्रिय-सुख का आस्वाद छोड़ने पर ऐसा न जान कि अब सुख नहीं है किन्तु यह तेरा आत्मा ही अमृतमय हो जाता है, और उस अमृत के आस्वाद से जन्म-मरण से रहित अमर होता है।

यदभ्यस्तं सुखाद् ज्ञानं तद्दुःखेनापसर्पति।

दुःखैकशरणस्तस्माद्योगी तत्त्वं निरूपयेत्।।102।।

जो ज्ञान सुख से अभ्यास किया है, वह ज्ञानः प्रायः दुःख आने पर चला जाता है, इस कारण योगी दुःख को ही अंगीकार करके तत्त्व का अनुभव करता है।

भावार्थ : जो तीव्र तप आचरण करता है वह परीषह आ जाने पर डिगता नहीं, अर्थात् दुःख आवें तो भी अपने ज्ञानाभ्यास को नहीं छोड़ता।

निखिलभुवनतत्त्वोद्भासनैकप्रदीपं निरुपधिमधिरूढं निर्भरानन्दकाष्ठाम्।

परममुनिमनीषोद् भेदपर्यन्तभूतं परिकलय विशुद्धं स्वात्मनात्मानमेव।।103।।

हे आत्मन्! तू अपने आत्मा को अपने आत्मा से ही इस प्रकार विशुद्ध (निर्मल) अनुभव कर कि यह आत्मा समस्त लोक के यथार्थ स्वरूप को प्रकट करने वाला अद्वितीय प्रदीप है, तथा अतिशय आनन्द की सीमा को उपाधिरहित प्राप्त हुआ है, तथा परम मुनि की बुद्धि से प्रकट उत्कृष्टता पर्यन्त है स्वरूप जिसका ऐसा है, इस प्रकार आत्मा का अनुभव कर; ऐसा उपदेश है।

इस त्रिभुवन के पूजित सम्यक्रत्नत्रय को द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप सामग्री के अनुसार अंगीकार करके भव्य पुरुष शीघ्र ही कर्मों से छूटता है अर्थात् मुक्त होता है।।21।।

एतत्समयसर्वस्वं मुक्तेश्चैतन्निबन्धनम्।

हितमेतद्धि जीवानामेतदेवाग्मिं पदम्।।22।।

यह रत्नत्रय ही सिद्धान्त का सर्वस्व है और यही मुक्ति का कारण है तथा यही जीवों का हित और प्रधान पद है।

ये याता यान्ति यास्यन्ति यमिनः पदमव्ययम्।

समाराध्यैव ते नूनं रत्नत्रयमखण्डितम्।।23।।

निश्चय करके इस रत्नत्रय को अखंडित (परिपूर्ण) आराधन करके ही संयमी मुनि आज तक पूर्वकाल में मोक्ष गये हैं और वर्तमान में जाते हैं तथा भविष्य में जायेंगे।

साक्षादिदमनासाद्य जन्मकोटिशतैरपि।

दृश्यते न हि केनापि मुक्तिश्रीमुखपङ्कजम्।।24।।

इस रत्नत्रय को प्राप्त न होकर करोड़ों जन्म धारण करने पर भी कोई मुक्तिरूपी लक्ष्मी के मुखरूपी कमल को साक्षात् नहीं देख सकता। अब अध्यात्म भावना करके शुद्ध निश्चयनय की प्रधानता से रत्नत्रय का वर्णन करते हैं-

दृग्बोधचरणान्याहुः स्वमेवाध्यात्मवेदिनः।

यतस्तन्मय एवासौ शरीरी वस्तुतः स्थितः।।25।।

जो अध्यात्म के जानने वाले हैं वे दर्शन ज्ञान और चारित्र तीनों को एक आत्मा ही कहते हैं, क्योंकि परमार्थदृष्टि से देखा जाय तो यह शरीरी आत्मा उन तीनों से तन्मय ही है, कुछ भी पृथक् अर्थात् अन्य नहीं है; यद्यपि भाव-भगवान् के भेद से तीन भेद किये गये हैं, तथापि वास्तव में एक ही हैं।।25।।

निर्णीतेऽस्मिन्स्वयं साक्षान्नापरः कोऽपि मृग्यते।

यतो रत्नत्रयस्यैषः प्रसूतेरग्रिमं पदम्।।26।।

इस आत्मा को स्वयं आपसे ही साक्षात् निर्णय करने से और कोई भी अन्य नहीं पाया जाता; केवल मात्र यह आत्मा ही रत्नत्रय की उत्पत्ति का मुख्य पद है।

जानाति यः स्वयं स्वस्मिन्स्वस्वरूपं गतभ्रमः।

तदेव तस्य विज्ञानं तद्वृत्तं तच्च दर्शनम्।।27।।

जो पुरुष अपने में अपने से ही अपने निजरूप को भ्रमरहित होकर जानता है, वही उसके विज्ञान (विशिष्ट ज्ञान) है और वही सम्यक्चारित्र तथा सम्यग्दर्शन है, अन्य कुछ भी नहीं है।

स्वज्ञानादेव मुक्तिः स्याज्जन्मबन्धस्ततोऽन्यथा।

एतदेव जिनोद्दिष्टं सर्वस्वं बन्धमोक्षयोः।।28।।

अर्थ : आत्मज्ञान से ही मोक्ष होता है, आत्मज्ञान के बिना अन्य प्रकार से संसार का बंध होता है, यही जिनेन्द्र भगवान् कहा हुआ बंध मोक्ष का सर्वस्व है।

आत्मैव मम विज्ञानं दृग्वृत्तं चेति निश्चयः।

मत्तः सर्वेऽप्यमी भावा बाह्याः संयोगलक्षणाः।।29।।

मेरे आत्मा ही विज्ञान है, आत्मा ही दर्शन और चारित्र है ऐसा निश्चय है। इससे अन्य सब ही पदार्थ मुझसे बाह्य और संयोगस्वरूप है। इस प्रकार अनुभव करने से रत्नत्रय में और आत्मा में कुछ भी भेद नहीं रहता।

अयमात्मैव सिद्धात्मा स्वशक्त्याऽपेक्षया स्वयम्।

व्यक्तीभवति सद्ध्यानवह्निनाऽत्यन्तसाधितः।।30।।

यह आत्मा संसार अवस्था में अपनी शक्ति की अपेक्षा से सिद्धस्वरूप है और समीचीन ध्यानरूपी अग्नि से अत्यन्त साधने से व्यक्तरूप सिद्ध होता है अर्थात् अष्टकर्म का नाश होने पर सिद्धस्वरूप व्यक्त (प्रगट) होता है।

एतदेव परं तत्त्वं ज्ञानमेतद्धि शाश्वतम्।

अतोऽन्यो यः श्रुतस्कन्धः स तदर्थं प्रपञ्चितः।।31।।

यह आत्मा ही परम तत्त्व है और यही शाश्वत ज्ञान है अतएव अन्य श्रुत-स्कन्ध द्वादशांग शास्त्ररूप रचना इस आत्मा को ही जानने के लिए विस्तृत हुआ है।

अपास्य कल्पनाजालं चिदानन्दमये स्वयम्।

यः स्वरूपे लयं प्राप्तः स स्याद्रत्नत्रयास्पदम्।।32।।

जो मुनि कल्पना के जाल को दूर करके अपने चैतन्य और आनन्दमय स्वरूप में लय को प्राप्त हो, वही निश्चय रत्नत्रय का स्थान (पात्र) होता है।

सुप्तेष्वक्षेषु जागर्ति पश्यत्यात्मानमात्मनि।

वीतविश्वविकल्पोऽसौ सः स्वदर्शी बुधैर्मतः।।33।।

जो मुनि इन्द्रियों के सोते हुए तो जागता है तथा आत्मा में ही आत्मा को देखता है और समस्त विकल्पों से रहित है वही विद्वानों के द्वारा आत्मदर्शी माना गया है।

निःशेषक्लेशनिर्मुक्तममूर्त्तं परमाक्षरम्।

निष्प्रपञ्चं व्यतीताक्षं पश्य स्वं स्वात्मनि स्थितम्।।34।।

हे आत्मन्! तू अपने आत्मा में ही रहता हुआ अपने को समस्त क्लेशों से रहित, अमूर्तिक, परम उत्कृष्ट अविनाशी, विकल्पों से और इन्द्रियों से रहित अर्थात् अतीन्द्रिय स्वरूप देख।

नित्यानन्दमयं शुद्धं चित्स्वरूपं सनातनम्।

पश्यात्मनि परं ज्योतिरद्वितीयमनव्ययम्।।35।।

अर्थ : फिर भी कहते हैं कि तू अपने आत्मा में ही अपने को इस प्रकार टिका हुआ देख कि मैं नित्य आनन्दमय हूँ, शुद्ध हूँ, चैतन्यस्वरूप हूँ और सनातन हूँ, अविनश्वर हूँ, परमज्योतिज्ञानप्रकाश रूप हूँ, अद्वितीय हूँ और अनव्यय कहिये व्यय बिना नहीं हूँ अर्थात् पूर्वपर्याय के व्यय सहित हूँ।

यस्यां निशि जगत्सुप्तं तस्यां जागर्ति संयमी।

निष्पन्नं कल्पनातीतं स वेत्त्यात्मानमात्मनि।।36।।

जिस रात्रि में जगत् सोता है उस रात्रि में संयमी मुनि जागता है और अपने आत्मा में ही अपने को निष्पन्न, स्वयंसिद्ध तथा कल्पना रहित जानता है।**भावार्थ**- जगत् अज्ञानरूपी रात्रि में सोता है और संयमी ज्ञानरूप सूर्य के उदय होने से जागता है।

या निशा सर्वभूतेषु तस्यां जागर्त्ति संयमी।

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।।37।।

जो समस्त प्राणियों में रात्रि मानी जाती है उसमें तो संयमी जागता है और जिस रात्रि में समस्त प्राणी जागते हैं वह अपने स्वरूपावलोकन करने वाले मुनि की रात्रि है। **भावार्थ**-जगत् के जीवों को अपने स्वरूप का प्रतिभास नहीं है इस कारण इनको यही रात्रि है, इसमें सब जीव सोते हुए हैं और संयमी मुनिजनों को अपने स्वरूप का प्रतिभास है, इस कारण वे इसमें जागते हैं और जगत् के प्राणी अज्ञान में जागते हैं, यह अज्ञान ही मुनि की रात्रि है, तात्पर्य यह कि मुनियों के अज्ञान है ही नहीं।

यस्य हेयं न वाऽऽदेयं निःशेषं भुवनत्रयम्।

उन्मीलयति विज्ञानं तस्य स्वान्यप्रकाशकम्।।38।।

जिस मुनि के समस्त त्रिभुवन हेय अथवा आदेय नहीं है उस मुनि के स्वपरप्रकाशक ज्ञान का उदय होता है, क्योंकि जब तक हेय उपादेय बुद्धि में रहें तब तक ज्ञान निर्मलता से नहीं फैलता (बढ़ता)।

दृश्यन्ते भुवि किं न तेऽल्पमतयः संख्याव्यतीताश्चिरम्

ये लीलां परमेष्ठिनो निजनिजैस्तन्वन्ति वाग्भिः परम्।

तं साक्षादनुभूय नित्यपरमानन्दाम्बुराशिं पुन-
र्ये जन्मभ्रममुत्सृजन्ति सहसा धन्यास्तु ते दुर्लभाः।।39।।

जो पुरुष अपने वचनों से केवल परमेष्ठी की बहुत काल पर्यन्त लीला-गुणानुवाद का विस्तार करते हैं, ऐसे अल्पमती संसार में क्या प्रायः संख्या रहित देखने में नहीं आते? अर्थात् ऐसे जीव असंख्य हैं; परन्तु जो पुरुष नित्य परमानन्द के समुद्र को साक्षात् अनुभवगोचर करके संसार के भ्रम को तत्काल ही दूर कर देते हैं, वे महाभाग्य इस पृथ्वी पर दुर्लभ हैं। यहाँ तात्पर्य ऐसा है कि जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र को निश्चय व्यवहाररूप भले प्रकार जान कर अंगीकार करता है उसके ही मोक्ष के कारण अपने स्वरूप के ध्यान की सिद्धि होती है; अन्यमती अन्यथा अनेक प्रकार से ध्यान का तथा ध्यान की सामग्री का स्वरूप स्थापन करते हैं; उनके किंचिन्मात्र लौकिक चमत्कार की सिद्धि कदाचित् हो तो सकती है, किन्तु मोक्षमार्ग वा मोक्ष की सिद्धि कदापि नहीं हो सकती।

श्रेष्ठ बनने का है ये सफर

आप किसी भी प्रोफेशनल में क्यों न हो, आपके स्वयं के लिए निकाले गए कुछ खास पल आपके विचारों में व आपके जीवन में नई ऊर्जा लाने का प्रयास करेंगे और जब किसी के जीवन की उम्मीदों को जब उत्साह और नए विचारों की धीमी-धीमी हवा मिलती रहेगी, तो उनके जीवन रूपी मशाल सदैव चमकने का ही काम करती रहेगी। हर दिन कुछ नया सीखे। समय प्रबंधन करके रोज कोई किताब, रिसर्च पेपर, आर्टिकल या आपके कार्य से सम्बन्धित बिजनेस मैन्युअल भी पढ़ सकते हैं।

ठहराव लाओ

रोजमर्रा की जिन्दगी से अपने लिए कुछ ब्रेक लें। व्यस्त जीवन में से कुछ दिन सिर्फ अपने लिए निकालें। पुराने मित्रों से, जिनके साथ आपके जीवन की किताब के सुनहरे पन्ने लिखे गए थे, उनसे मिलें और उनके साथ थोड़ा-बहुत वक्त बिताएँ। एक अच्छे श्रोता का परिचय देते इस बार ज्यादा उनकी सुनें और खुद कम बोलें। इसी के साथ यदि आप चाहें तो प्रकृति के बीच जाकर भी एकांत में अपना कुछ समय व्यतीत कर सकते हैं। इस बीच जो भी आपके दिमाग में नवीन विचार आएँ, उन्हें किसी कागज पर उकेरने का प्रयास करें। इसके बाद फिर उनका एक-एक करके अवलोकन

करें व संभव हो तो विस्तार से विश्लेषण करें। आपको अच्छा लगे तो इन विचारों को मूर्त रूप देने का प्रयास करें।

रोज कुछ नया सीखें

कहते हैं कि दिमाग को सही तरह से इस्तेमाल करो, वर्ना खाली दिमाग शैतान का घर होता है। दिमाग में नित्य नए विचार लेकर आएँ, रोज कुछ न कुछ सीखने का प्रयास करें। जिस दिन आपने सीखना खत्म किया तो मतलब उस दिन से आपने जीवन को जीना खत्म कर दिया। कभी भी सीखना बंद मत करिए, क्योंकि यह जिन्दगी आपको कभी सिखाना बन्द नहीं करेगी और यदि आपमें सदैव कुछ न कुछ सीखने की ललक रहेगी तो आप जीवन पर्यन्त स्टूडेंट की भाँति सीखने को आतुर रहेंगे। याद रखिए कि एक ही स्थान पर रुके हुए पानी में से भी कुछ समय बाद सड़ांध आने लगती है। इसलिए रोज कुछ नया सीखें। नया सीखने पर कोई भी आपको जीवन में मात नहीं दे पाएगा।

अगर आप सामान्य से श्रेष्ठ बनने का सफर पूरा करना चाहते हैं तो आपको अपने जीवन में कुछ आदतों को शामिल करना होगा

अक्सर हममें से कई लोग ऐसे हैं जो एक सामान्य सा जीवन जी रहे हैं। यदि आपमें किसी कार्य को करने की क्षमता और सच्ची लगन है तो अपने लक्ष्य की प्राप्ति की ओर बढ़ते ही रहेंगे और एक न एक दिन ऐसा आएगा, जब आप उसे पाकर रहेंगे। जिस दिन आप यह तय कर लेते हैं कि आपको अपने जीवन में क्या करना है और वह क्यों करना है, तो फिर आप चाहे जिदंगी के किसी भी पड़ाव पर क्यों न हो, आप किसी भी उम्र के क्यों न हो व उस उम्र की किसी भी पड़ाव पर क्यों न हो, आप किसी भी उम्र के क्यों न हो व उस उम्र की किसी भी स्टेज में क्या न हों, आपके अंदर निरंतर रूप से उत्साह का संचार होता रहेगा और सफलता मिलने की संभावना बढ़ेगी।

कम्फर्ट-जोन से निकलें बाहर

जब आप यह सोचेंगे कि आप उच्च स्तर का जीवन बिताना चाहते हैं तो आप अपने सामान्य से जीवन के चोगे को उतार फेंकेने में कटिबद्ध होंगे। आपको अपनी जिदंगी का एक मकसद मिल जाएगा और लगेगा कि हर दिन उस मकसद को जीने का एक और मौका है। आपकी सोच में और आपकी जिंदगी में एक बदलाव

आएगा और आप अपने कम्फर्ट-जोन से बाहर निकल एक नए जोश और उमंग के साथ कुछ नया करने का प्रयास करेंगे। जब आप अपने कम्फर्ट-जोन से बाहर आकर नया करने का प्रयास करते हैं, तो आप समस्याओं के अंदर से भी छिपे हुए नए अवसरों की तलाश कर पाते हैं। यही वह दिन होता है जब आप श्रेष्ठ जीवन की ओर अग्रसर होते है। **-डॉ.शेखर कपूर, मोटिवेशनल स्पीकर**

अब आप रहेंगे हमेशा खुश

आपके खुश रहने या न रहने के पीछे कुछ छोटी-छोटी बातें बहुत मायने रखती है। यदि आपने अपने दिमाग को यही नहीं बताया कि क्या करना है तो वह वो सब करवाएगा जो नहीं करना है। इसलिए अपने आपको उन बातों की आदत डालें, जो करनी है, न कि उनकी जो आपने आप हो जाती है। जब ये छोटी-छोटी आदतें आप अपनाने लगते हैं तो आपकी सभी खुशियां आपके खुद के हाथों में होती है। आपको अपने जीवन में सबकी मदद करनी होगी और खुद को महत्व देना होगा। इसके बाद आपकी जिंदगी में बदलाव नजर आने लगेंगे। इन बदलावों के चलते आप हमेशा खुश रहेंगे।

मदद करना शुरू करें

जब हमें लगने लगे कि हमारी जिंदगी में कुछ अच्छा नहीं हो रहा तो यह सही वक्त है आगे बढ़कर दूसरों की मदद करने का। अपने आपको तनाव या उदासीनता से निकालने के लिए अपने आस-पास देखें कि आप किसकी मदद कर सकते हैं। यह मदद आप अपने परिवार में, अपने साथियों में या आस-पास के लोगों में या अनजान लोगों को भी दे सकते है। इसके लिए आप को सिर्फ यह पूछना है कि मैं आपकी क्या मदद करूँ? क्या मैं आपके कुछ काम आ सकता हूँ? यकीन करें, जब हम दूसरों की मदद करते हैं तो अच्छा महसूस करते हैं। यदि यह आदत रोजाना की जिंदगी का हिस्सा बन जाए तो समझ लीजिए हमारे पास रोज खुश रहने के कई कारण हैं।

स्वयं को महत्व दें

किसी को भी इतना गंभीर मत लो कि आप स्वयं गंभीर हो जाओ यानी आपके लिए आप स्वयं सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है और यदि आपको खुश रहना है तो दूसरों की नकारात्मक बातों, आलोचनाओं और आपके बारे में विचारों को सुनना तो है

लेकिन वह आपके लिए सिर्फ एक सूचना है, इसलिए उसको सिर्फ एक सूचना तरह ही उपयोग में लेना है। यदि आपको उपयोगी लगे तो उसको रखें, अन्यथा भूल जाएँ। आप अपने बारे में क्या सोचते है, यह ज्यादा महत्वपूर्ण है न कि अन्य क्या सोचते हैं। जब आप स्वयं का इतना सम्मान करेंगे तो आपको किसी भी तरह के परिणाम, परिस्थिति या वातावरण से प्रभाव नहीं पड़ेगा। इस तरह आप अपनी मानसिक अवस्था को जब समझने लगते हैं तो उस पर बाहरी कारणों का कम प्रभाव होने देते हैं। जब आप खुद को बेहतर तरीके से समझने लगेंगे तो बेहतर निर्णय लेंगे और सफलता भी मिलेगी। आपको दूसरों के दबाव में आने की जरूरत नहीं है। आप खुद के मन की करनी चाहिए।

स्व आत्मा का विश्वरूप दर्शन
(भौतिक विश्व से भी अधिक गुण व शक्ति मुझ में हैं।)

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल : 1.आत्मशक्ति..., 2.क्या मिलिए...)

मुझ में ही मेरे अनन्त गुण हैं उनका दर्शन ही मेरा आत्मदर्शन।
उनका ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है उन्हें प्राप्ति हेतु मेरा आचरण।।
इसी हेतु ही मैं करूँ सभी भाव-व्यवहार अन्यथा होंगे सभी प्रदर्शन।
प्रदर्शन तो नट-नटी-खिलाडी (से ले) करते व्यापारी से मंत्री नेतागण।। (1)
इन्हें न मिलती कोई महान् उपलब्धि जो आत्मा को बनावे परमात्मा।
परमात्मा बनना ही महान् उपलब्धि इस हेतु ही मेरी सभी साधना।।
यथा शुद्ध परमाणु में होती अनन्तशक्ति अशुद्ध दशा में न संभव।
विज्ञान के क्वांटम से भी अधिक शक्ति व अधिक चमत्कार मुझ में स्थित।। (2)
मम शुद्ध आत्मा में अनन्तशक्ति अशुद्ध दशा में न संभव।
क्वांटम में तो केवल भौतिकमय मैं तो अनन्तगुणी चैतन्यचमत्कार युक्त।।
किसी भी धर्म जाति पंथमत मंत्र यंत्र व टोना टोटका में जो प्रचलित।
उससे भी अनन्त चमत्कार मुझ में स्थित जो कल्पना योग्य मुझ में स्थित।। (3)
गणित विज्ञान व मनोविज्ञान से भी ज्ञात-अज्ञात शक्तियाँ मुझ में स्थित।

सर्वज्ञ अतिरिक्त कोई भी दार्शनिक वैज्ञानिक तार्किक से भी मैं न पूर्णज्ञात।।
तीन लोक तीनकाल के सम्पूर्ण भौतिक शक्ति भी मुझे न कर सकती उत्पन्न।
नहीं नाशकर सकती नहीं मेरी शक्ति के समान वे सभी शक्ति सम्पन्न।। (4)
चार्वाक से ले भौतिक वैज्ञानिक तक मुझे न जानते एक अंश प्रमाण।
मेरे अनन्तानन्त अक्षय गुणों को जानने मापने में वे पूर्णतः अक्षम।।
विज्ञान ज्ञात अनेक विश्व के विस्तार से भी मेरी इयत्ता अति विस्तृत।
लोकालोक के अनुभाग प्रतिच्छेद से भी मेरा केवलज्ञान अति विस्तृत।। (5)
प्रकाश से अधिक गतिशक्ति है सूक्ष्म-दूरदर्शी से भी अधिक ज्ञानशक्ति।
परमाणु बम भी मुझे नाश न सके ऐसा अक्षय मेरा अस्तित्व।।
विज्ञान से ज्ञात समस्त शक्तियाँ केवल भौतिकमय व सीमित है।
केवल आत्मविशुद्धि व आत्मध्यान द्वारा आत्मशक्ति को मुझे पाना है।। (6)
इस हेतु ही मैं समस्त रागद्वेषमोह संकल्प-विकल्प त्याग रहा हूँ।
एकान्त मौन में समता शान्ति से आत्मशक्तियों को जगा रहा हूँ।।
इससे मुझे अनुभव हो रहा है मुझमें है अनन्तगुण व शक्ति।
स्वशक्ति की पूर्ण प्राप्ति से ''सूरी कनक'' भोगेगा अनन्त उपलब्धि।। (7)

भीलूडा दि-26.3.2019 रात्रि 10.28

सन्दर्भ-

अयमात्मा स्वयं साक्षाद्गुणरत्नमहार्णवः।
सर्वज्ञः सर्वदृक् सार्वः परमेष्ठी निरञ्जनः।।1।। ज्ञानार्णव

यह आत्मा स्वंय साक्षात् गुणरूपी रत्नों का भरा हुआ समुद्र है तथा यही आत्मा सर्वज्ञ है, सर्वदर्शी है, सबके हितरूप है, समस्त पदार्थों में व्याप्त है, परमेष्ठी (परम पद में स्थित) है और निरंजन है अर्थात् जिसके किसी प्रकार की कालिमा नहीं है। शुद्ध नय का विषयभूत आत्मा ऐसा ही है।

तत्स्वरूपमजानानो जनोऽयं विधिवञ्चितः।
विषयेषु सुखं वेत्ति यत्स्यात्पाके विषान्नवत्।।2।।

उस आत्मा के स्वरूप को नहीं जानता हुआ यह मनुष्य कर्मो से वंचित हो इन्द्रियों के विषयों में सुख जानता है सो बड़ी भूल है क्योंकि इन्द्रियों का विषय

विपाकसमय में विषमिश्रित अन्न के समान होता है।

यत्सुखं वीतरागस्य मुनेः प्रशमपूर्वकम्।
न तस्यानन्तभागोऽपि प्राप्यते त्रिदशेश्वरैः।।3।।

जो सुख वीतराग मुनि के प्रशमरूप (मंदकषायरूप) विशुद्धतापूर्वक है उसका अनन्तवाँ भाग भी इन्द्र को प्राप्त नहीं है।

अनन्तबोधवीर्यादिनिर्मला गुणिभिर्गुणाः।
स्वस्मिन्नेव स्वयं मृग्या अपास्य करणान्तरम्।।4।।

अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्यादि गुण गुणी पुरुषों के द्वारा अपने आत्मा में ही अन्य इन्द्रियादि की सहायता को छोड़ अपने आप ही खोजते चाहिए।

अहो अनन्तवीर्योऽयमात्मा विश्वप्रकाशकः।
त्रैलोक्यं चालयत्येव ध्यानशक्तिप्रभावतः।।5।।

अहो देखो, यह आत्मा अनन्त वीर्यवान् है तथा समस्त वस्तुओं के प्रकाशित करनेवाला है तथा ध्यानशक्ति के प्रभाव से तीनों लोकों को भी चलायमान कर सकता है।

भावार्थ-मुनि जब ध्यान करते हैं तब तीनों लोको के इन्द्रों के आसन कम्पायमान होते हैं अथवा ध्यान के फल से जो कोई जीव तीर्थंकरपद प्राप्त करता है उसका जन्म होने के समय तीनों लोकों में क्षोभ होता है।

अस्य वीर्यमहं मन्ये योगिनामप्यगोचरम्।
यत्समाधिप्रयोगेण स्फुरत्यव्याहतं क्षणे।।6।।

आचार्य कहते हैं कि इस आत्मा की शक्ति मैं ऐसा समझता हूँ कि वह योगियों के भी अगोचर है, क्योंकि वह समाधि ध्यान में लय स्वरूप के प्रयोग से क्षणमात्र अव्याहत प्रकाश होती है। **भावार्थ-**अनन्त पदार्थों के देखने जानने की शक्ति प्रकट होती है।

अयमात्मा स्वयं साक्षात्परमात्मेति निश्चयः।
विशुद्धध्याननिर्धूत-कर्मेन्धनसमुत्करः।।7।।

जिस समय विशुद्ध ध्यान के बल से कर्मरूपी ईन्धनों को भस्म कर देता है उस समय यह आत्मा ही स्वयं साक्षात्परमात्मा हो जाता है; यह निश्चय है।

ध्यानादेव गुणग्राममस्याशेषं स्फुटी भवेत्।

क्षीयते च तथानादिसंभवा कर्मसन्ततिः।।8।।

इस आत्मा के गुणों का समस्त समूह ध्यान से ही प्रगट होता है तथा ध्यान से ही अनादिकाल की संचित की हुई कर्मसन्तति नष्ट होती है।

शिवोऽयं वैनतेयश्च स्मरश्चात्मैव कीर्त्तितः।
अणिमादिगुणानर्घ्यरत्नवार्धिर्बुधैमेतः।।9।।

विद्वानों ने इस आत्मा को ही शिव, गरुड और काम कहा है, क्योंकि यह आत्मा ही अणिमा महिमादि अनर्घ्य (अमूल्य) गुणरूपी रत्नों का समुद्र है।

भावार्थ-शिवतत्त्व, गरुडतत्त्व और कामतत्त्व जो अन्यमती ध्यान के लिये स्थापन करते हैं सो आचार्य कहते हैं कि यह आत्मा की ही चेष्टा है, आत्मा से भिन्न अन्य कोई पदार्थ नहीं है।

''आत्यन्तिकस्वभावोत्थानन्तज्ञानसुखः पुमान्।
परमात्मा विपः कन्तुरहो माहात्म्यमात्मनः।।1।।

अहो! आत्मा का माहात्म्य कैसा है कि आत्यन्तिक कहिये अन्तरहित अविनश्वर स्वभाव से उत्पन्न हुए अनन्त ज्ञान सुखवाला ऐसा परमात्मस्वरूप शिव तथा गरुड और काम यह आत्मा ही है। अकाशगोचर ही है मूर्ति जिनकी ऐसे जय विजय नामके दो सर्प है भूषण जिसके, तथा अनन्ताकृति परमविभु अर्थात् आकाश की आकृतिस्वरूप सर्वव्यापक, तथा आकाशमंडल में लीन है पृथ्वी वरुण वह्नि वायुनामा समस्त तत्त्व जिसमें, तथा समस्त वात पित्तश्लेष्म उत्पन्न ज्वर आदि रोग, अनेक जाति के सर्प आदि विषधर जीव, महाभय, डाकिनी, कुत्सित (खोटे) मंत्रकर्तृक ग्रह पिशाच, यक्ष, भैरवादि, किन्नर, अश्वमुख व्यंतर, नरेन्द्र (राजा), शत्रु, महामारी, तथा परके किये यन्त्र, तन्त्र, मुद्रामंडल तथा अग्नि, सिंह, शरभ-अष्टापद, शार्दूल, व्याघ्र, हस्ती, दैत्य व्यन्तरादिक दुष्ट-दुर्जनादिक सबके किये हुए उपसर्ग को निर्मूलन करनेवाला है सामर्थ्य जिसका ऐसा, तथा रचा है समस्त गारुड मुद्रामंडल का आडंबर जिसने ऐसा, तथा पृथ्वी आदि तत्त्वस्वरूप हुआ है आत्मा जिसका ऐसा, गारुडगी के नाम को अवगाहन करनेवाला गारुड ऐसा नाम आत्मा ही पाता है।

भावार्थ-पहिले चार तत्त्वों के रूप कहे सो गरुडतत्त्व के विशेषणरूप कहे गये, उन चारों तत्त्वों सहित यह गरुडतत्त्व है सो यह आत्मा की ही सामर्थ्य का वर्णन

हैं। यह आत्मा ध्यान के बल से अनेक सामर्थ्यसहित होता है। उसमें देहका रूप है वह तो सब पुद्गल का रूप है और आत्मा है सो अमूर्तिक ज्ञान आदि गुणों की शक्ति स्वरूप है, उसके ध्यान के प्रभाव से अनेक व्यक्तिरूप चेष्टा होती है, इस प्रकार जानना। यह विपतत्त्व अर्थात् गरुडतत्त्व का स्वरूप कहा गया है।

उक्त प्रकार की तीन तत्त्वरूपी समस्त चेष्टायें इस आत्मा की ही हैं।

तदेवं यदिह जगति शरीरविशेषसमवेतं किमपि सामर्थ्यमुपलभामहे तत्सकलमात्मन एवेति विनिश्चयः। आत्मप्रवृत्तिपरंपरोत्पादितत्त्वाद्विग्रहणस्येति।।

आचार्य कहते हैं कि-इस कारण से पूर्वोक्त प्रकार शिवतत्त्व-गरुडतत्त्व-कामतत्त्व में इस जगत् में शरीरविशेष से मिली हुई जो कुछ सामर्थ्य हम देखते हैं सो सब आत्मा की ही है। यह हमको भले प्रकार निश्चय है। क्योंकि, शरीर के ग्रहण करने में आत्मा की प्रवृत्ति की परंपरा (परिभाटी) को उत्पत्तिहेतुता है।

भावार्थ-यह आत्मा जैसी शुभ तथा अशुभ तथा अशुद्ध ध्यानादिरूप प्रवृत्ति करता है वैसे ही विचित्ररूप शरीर धारण करता है और वैसी ही अपने सामर्थ्यरूप अनेक चेष्टायें करना उसका फल होता है।

''आचार्यैरिह शुद्धतत्त्वमतिभिः श्रीसिंहनन्द्याह्वयैः सम्प्रार्थ्य श्रुतसागरं कृतिवरं भाष्यं शुभं कारितम्। गद्यानां गुणवत्प्रियं विनयतो ज्ञानार्णवस्यांतरे विद्यानन्दिगुरुप्रसादजनितं देयादमेयं सुखम्।।

बुद्धिमान शुद्ध तत्त्व जानने वाले आचार्य श्रीसिंहनन्दिजी ने 'श्रुतसागर' की प्रार्थना को मान देकर गद्यात्मक विभाग का यह ज्ञानार्णव का भाष्य सर्व गुणसम्पन्न रचा है जो कि 'विद्यानंदि' गुरु के प्रसाद से तैयार हुआ है वह सभी को असीमित सुख देवो।

दृग्बोधयनः सोऽयमज्ञानतिमिराहतः।
जानन्नपि न जानाति पश्यन्नपि न पश्यति।।23।।

यह आत्मा दर्शन ज्ञान नेत्रवाला है, परंतु अज्ञानरूपी अंधकार से व्याप्त हो रहा है; इस कारण जानता हुआ भी नहीं जानता और देखता हुआ भी कुछ नहीं देखता।

अविद्योद्भूतरागादिगरव्यग्रीकृताशयः।
पतत्यनन्तदुःखाग्निप्रदीप्ते जन्मदुर्गमे।।24।।

अविद्या (मोह) से उत्पन्न रागादिकरूपी विषय विकार से व्यग्रचित्त होने यह आत्मा दुःखरूपी अग्नि से जलते हुए दुर्गम संसार में पडता है।

जैसे धतूरा खाया उन्मत्त पुरुष पत्थरादिक में सुवर्णबुद्धि से प्रवृत्ति करता है उसी प्रकार यह आत्मा अज्ञान से अपने स्वरूप से भिन्न पदार्थों में स्वेच्छाचाररूप प्रवृत्ति करता है। **भावार्थ**-उनसे रागद्वेष मोह करता है।

वासनाजनितान्येव सुखदुःखानि देहिनाम्।

अनिष्टमपि येनायमिष्टमित्याभिमन्यते।।26।।

जीवों के जो सुखदुःख हैं वे अनादि अविद्या की वासना से उत्पन्न हुए हैं इसी कारण यह आत्मा अज्ञान से अनिष्ट भी इष्ट मानता है। **भावार्थ**-संसारसंबंधी सुख दुःख है, वे कर्मजनित होने के कारण अनिष्ट ही हैं तथापि यह आत्मा उनको इष्ट मानता है।

अविश्रान्तमसौ जीवो यथा कामार्थलालसः।

विद्यतेऽत्र यदि स्वार्थे तथा किं न विमुच्यते।।27।।

यह आत्मा जिस प्रकार काम और अर्थ के लिये अविश्रान्त परिश्रम करता है उस प्रकार यदि अपने स्वार्थ अर्थात् मोक्ष व मोक्षमार्ग में लालसासहित प्रवृत्ति करे तो क्या यह कर्मों से मुक्त न होगा? अवश्य ही होगा।

इस प्रकार इस त्रितत्त्व के प्रकरण में तात्पर्य यह है कि इन तीन तत्त्वों की जो चेष्टा कही गई सो सब इस आत्मा की ही चेष्टा और वे सब ध्याने करने से प्रगट होती हैं। इस कारण आत्मा के ध्यान करने का विधान है। सो ऐसा ही करना चाहिये। मिथ्याकल्पना किसलिये करनी? मिथ्याकल्पनाओं से कुछ लौकिक चमत्कार हो तो हो सकता है परंतु उससे मोक्ष का साधन नहीं होता। इस कारण ऐसा ध्यान ही करना उत्तम कि जिससे मोक्ष और सांसारिक अभ्युदय प्रगटे। इस प्रकार उपदेश है।

निर्मोही (सुज्ञानी) V/S मोही (कुज्ञानी)

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल : 1. छोटी-छोटी गैया...2.आत्मशक्ति...3.हे राम!...4.क्या मिलिए...5.देहाची तिजोरी (मराठी)....

निर्मोही होते हैं आत्मविश्वासी...मोही होते अहंकारी-ममकारी...

निर्मोही करते हैं आत्मदर्शन...मोही करते हैं दम्भ-प्रदर्शन...
निर्मोही करते हैं आत्मा का ज्ञान...मोही करते हैं अनात्मज्ञान...
निर्मोही करते हैं आत्म-परीक्षण...मोही करते हैं पर-परीक्षण...(1)
निर्मोही करते हैं आत्मालोचना...मोही करते हैं परालोचना...
निर्मोही करते हैं स्व-दोष निन्दा...मोही करते हैं पर की निन्दा...
निर्मोही करते है आत्म-सुधार...मोही करते हैं आत्म मलिन...
निर्मोही करते हैं आत्म-उत्थान...मोही करते हैं आत्म-पतन...(2)
निर्मोही करते हैं आत्म-चिन्तन...मोही कतरे हैं पर की चिन्ता...
निर्मोही करते हैं आत्म गौरव...मोही करते हैं अनात्म-गौरव...
निर्मोही करते स्व-आत्मबुद्धि...मोही करते है देहात्मबुद्धि...
निर्मोही होते हैं स्व-आत्मध्यानी...मोही होते हैं पर कुध्यानी...(3)
निर्मोही होते हैं आत्म सन्तोषी...मोही होते हैं विघ्न सन्तोषी...
निर्मोही होते हैं गुण-प्रशंसक...मोही होते हैं गुण-निन्दक...
निर्मोही होते हैं निर्मलभावी...मोही होते हैं दूषितभावी...
निर्मोही त्यागते पर परिणति...मोही ग्रहण करते पर परिणति...(4)
निर्मोही होते वीतराग विज्ञानी...मोही होते रागी-द्वेषी-मानी...
निर्मोही होते स्वात्मानुरागी...मोही होते अनात्मानुरागी...
निर्मोही होते श्रद्धा-प्रज्ञाधारी...मोही होते हैं इच्छा-संज्ञा (ईर्ष्या) धारी...
निर्मोही होते सत्य-समता प्रेम...मोही होते मिथ्या-विषमताकारी...(5)
निर्मोही होते शुभ-शद्ध आकांक्षी...मोही होते भोगाकांक्षा धारी...
निर्मोही होते ज्ञान-वैराग्य धारी...मोही होते आर्त-रौद्र ध्यानी...
निर्मोही होते आत्मा में जागृत...मोही होते स्वात्मा में सुप्त...
निर्मोही होते हिताहित विवेकी...मोही होते हिताहित विमुखी...(6)...
निर्मोही होते ज्ञाता-दृष्टा स्वभावी...मोही होते परकर्त्ता-भोक्ता स्वभावी...
निर्मोही माने आत्म वैभव मेरा...मोही माने पर-परिग्रह ही मेरा...
निर्मोही भावे 'सोऽहं' से 'अहं' भावना...मोही भावे 'मोह' मद की भावना...
निर्मोही चाहे स्व-आत्मा की उपलब्धि...मोही चाहे पर पदार्थ की उपलब्धि...(7)...

निर्मोही भावे शुद्ध-बुद्ध-आनन्द...मोही भावे पाप-दुःख व द्वन्द्व...
निर्मोही चाहे स्वयं को स्वयं द्वारा...मोही चाहे विभाव को विभाव द्वारा...
निर्मोही आत्म वैभव को स्व माने...मोही परिग्रहों को स्व माने...
दोनों के भाव परस्पर विरोधी...निर्मोही के सत्य, असत्य मोही...(8)...
संक्षेप रूचि मन्दबुद्धि निमित्त...काव्य की रचना किया 'कनक'
इससे भव्य भगवान् तू बन...स्व शुद्ध स्वरूप भगवान् सम...(9)...

भीलूड़ा, दि-28.3.2019, मध्याह्न 12.45 व 2.06

शुद्धात्मा वाचक है ''अहं'' (मैं)

(मैं (''अहं'') न शरीर न हि अहंकार/(घमण्ड) है!)

(विश्व में सवोच्च श्रेष्ठ-ज्येष्ठ-पावन-ग्राह्य है ''अहं'' (मैं)!)

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल : 1. आत्मशक्ति...2.क्या मिलिए...3.सायोनारा...)

निरञ्जन बुद्ध आत्मा का...वाचक होता है 'अहं' (मैं)...
द्रव्य कर्म भावकर्म नोकर्म...रहित होता है शुद्ध ''अहं''....
अतएव शुद्ध 'अहं' (मैं) होता है...वाचक शुद्ध परमात्मा का...
''सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया'' से...अशुद्ध आत्मा का...(1)...
जो शरीर को मैं (अहं) मानता...वह होता मिथ्यादृष्टि...
मिथ्यादृष्टि से अनुसार...''अहं'' (मैं) होता है अहंकार (घमण्ड)...
सम्यग्दृष्टि शुद्धात्मा को ही...मानता है स्व-स्वरूप...
सम्यक्त्वी के अनुसार...अहं (मैं) न होता है अहंकार...(2)...

जस्स ण कोहो माणो माया लोहो य सल्ल लेस्साओ।
जाइ जरा मरणं चिय णिरंजणो सो 'अहं' भणिओ।। (19) (तत्त्वसार)

जिसके न क्रोध मान माया लोभ...शल्य न लेश्या है...
जन्म जरा मरण शून्य...सो निरञ्जन आत्मा (अहं/मैं) कहा है...(3)...

फास रस रूव गंधा सद्दादीया य जस्स णत्थि पुणो।

सुद्धो चेयण भावो णिरंजणो सो ''अहं'' भणिओ।। (21) तत्त्व.

स्पर्श रस गन्ध रूप...शब्दादि भी जिसके नहीं है...
वह शुद्ध चेतन भावरूप...''मैं'' निरञ्जन कहा गया हूँ...(4)...

णोकम्म कम्मरहिओ केवलणाणाइ गुणसमिद्धो जो।
''सोऽहं'' सिद्धो णिच्चो सुद्धो एक्को णिरालंबो।। (27) तत्त्व.

शरीर रूपी नोकर्म व कर्म रिक्त...केवलज्ञानादि गुणों से समृद्ध...
वही मैं सिद्ध शुद्ध नित्य एक...निरालम्ब रूप हूँ 'मैं' स्वरूप...(5)...

सिद्धोहं सुद्धोहं अणंतणाणाइ समिद्धो 'हं'।
देहपमाणो णिच्चो असंखदेसो अमुत्तो य।। (28) तत्त्वसार

मैं हूँ सिद्ध मैं हूँ शुद्ध...अनन्तज्ञानादि से समृद्ध हूँ...
शरीर प्रमाण मैं हूँ नित्य...असंख्य प्रदेशी अमूर्त हूँ...
भले अनादिकाल से संसारी...जीव चौरासी लक्षयोनि धरे...
तथापि शुद्ध निश्चयनय से...संसारी जीव मूर्तिक रूप न बने...(6)...

मग्गण गुणठाणेहि य चउदसहि हवंति तह असुद्धणया...
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया।।। (13) द्र.सं.

मार्गणा गुणस्थानों से चौदह...प्रकार होते अशुद्धनय से...
वे है संसारी जीव किन्तु...सभी ही शुद्ध है शुद्धनय से...
ये हैं सापेक्ष कथन जीवों के...सर्वज्ञ देव ने जो कहा...
किन्तु उपयोगमय ही है जीव...'कनक सूरी' ने भी यह गाया...(7)

ण लहइ भव्वो मोक्खं जावय परदव्ववावडो चित्तो।
उग्ग तवं पि कुणंतो सुद्धे भावे लहुं लहइ।। (33) तत्त्वसार

जब तक परद्रव्यों में व्यापार युक्त चित्त...तब तक भव्य न पाता मोक्ष...
उग्र तप भी करता हुआ किन्तु...शुद्ध भाव लीन शीघ्र पाता मोक्ष...(9)

परदव्वं देहाई कुणइ ममत्तिं च जाय तेसुवारिं।
पर समय रदो तावं बज्झदि कम्मेहिं विविहेहिं।। (34) तत्त्वसार

देहादि परद्रव्य में जो ममत्व करता...जब तक उनके ऊपर...
तब तक परमसमय रत है वह...अतःबन्धता नानाविध कर्मों से...(10)...

संदर्भ-

तम्हा अब्भसऊ सया मोत्तूणं राय दोस वा मोहो।

झायउ णिय अप्पाणं जइ इच्छह सासयं सोक्खं।।16।। तत्त्वसार

इसलिये यदि शाश्वत सुख को चाहते हो तो राग, द्वेष और मोह को छोड़कर सदा ध्यान का अभ्यास करो और अपनी आत्मा का ध्यान करो।

दंसण-णाण पहाणो असंखदेसो हु मुत्ति परिहीणो।

सगहिय देह पमाणो णायव्वो एरिसो अप्पा।।17।।

निश्चय नय से आत्मा, दर्शन और ज्ञान गुण प्रधान है, असंख्यात प्रदेशी है, मूर्तित्व से रहित है, अपने द्वारा गृहीत देह प्रमाण है। ऐसे स्वरूप वाला आत्मा जानना चाहिए।

रागादिया विभावा बहिरंतर-उहयवियप्पं मोत्तूणं।

एयग्गमणो झायउ णिरंजणं णियय-अप्पाणं।।18।।

रागादि विभावों को, तथा बाहरी दोनों प्रकार के विकल्पों को छोड़कर एकाग्र चित्त होकर कर्मरूप अंजन से रहित शुद्ध अपने आत्मा का ध्यान रखना चाहिए।

जस्स ण कोहो माणो लोहो य सल्ल लेस्साओ।

जाइ जरा मरणं चिय णिरंजणो सो अहं भणिओ।।19।।

जिसके न क्रोध है, न मान है, न माया है, न लोभ है, न शल्य है, न कोई लेश्या है और न जन्म, जरा और मरण भी है, वही निरंजन मैं कहा गया हूँ।

णत्थि कलासंठाणं मग्गण गुणठाण जीवठाणाइं।

ण य लद्धि बंधठाणा णोदय ठाणाइया केई।।20।।

निरंजन आत्मा के कोई कला नहीं है, कोई संस्थान नहीं है, कोई मार्गणास्थान नहीं है, कोई गुणस्थान नहीं है, और न कोई जीव स्थान है, न कोई लब्धिस्थान है, न कोई बंधस्थान और न कोई उदयस्थान आदि हैं।

फास रस रूव गंधा सद्दादीया य जस्स णत्थि पुणो।

सुद्धो चेयणाभावो णिरंजणो सो अहं भणिओ।।21।।

और जिसके स्पर्श, रस, गंध, रूप और शब्द आदिक नहीं है वह शुद्ध चेतन भाव रूप मैं चेतन भाव रूप मैं निरंजन कहा गया हूँ।

अत्थिति पुणो भणियास णएण ववहारिएण ए सव्वे।

णोकम्म-कम्मणादी पज्जाया विविह भेयगया।।22।।

पुनः व्यवहारिक नय से अनेक भेद गति ये सर्व नोकर्म और कर्म जनित पर्याय जीव के हैं, ऐसा कहा गया है।

संबंधो एदेसिं णायव्वो खीर-णीर णाएण।

एकत्तो मिलियाणं णिय-णिय सब्भावजुत्ताणं।।23।।

अपने अपने सद्भाव से युक्त किन्तु एकत्व को प्राप्त इन जीव और कर्म का संबंध दूध और पानी के न्याय से जानना चाहिए।

जह कुणइ को विभेयं पाणिय-दुद्धाण तक्क जोएणं।

णाणी वि तहा भेयं करेइ वर झाणजोएणं।।24।।

जैसे कोई पुरुष तर्क के योगी से पानी और दूध का भेद करता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष भी उत्तम ध्यान के योग से चेतन और अचेतन स्व-पर का भेद करता है।

झाणेण कुणउ भेयं पुग्गल जीवाण तह य कम्माणं।

घेत्तव्वो णिय अप्पा सिद्धसरूवो परो बंभो।।25।।

ध्यान से पुद्गल और जीव का और उसी प्रकार कर्म और जीव का भेद करना चाहिए। तत्पश्चात् सिद्ध स्वरूप परम ब्रह्मरूप अपनी आत्मा ग्रहण करना चाहिए।

मलरहिओ णाणमओ णिवसइ सिद्धीए जारिसो सिद्धो।

तारिसओ देहत्थो परमो बंभो मुणेयव्वो।।26।।

जैसा कर्म-मल से रहित, ज्ञानमय, सिद्धात्मा सिद्धलोक में निवास करता है, वैसा ही परम ब्रह्मस्वरूप अपना आत्मा देह में स्थित जानना चाहिए।

णोकम्म कम्मरहिओ, केवलणाणाइ गुणसमिद्धो जो।

सो हं सिद्धो सुद्धो णिच्चो एक्को णिरालंबो।।27।।

जो सिद्ध जीव, शरीरादि नोकर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म तथा राग द्वेषादि भावकर्म से रहित है, केवलज्ञानादि अनंत गुणों से समृद्ध है, वही मैं सिद्ध हूँ, शुद्ध हूँ,

नित्य हूँ, एक स्वरूप हूँ और निरालंब हूँ।

सिद्धोहं सुद्धोहं अणंतणाणाइ समिद्धो हं।

देहपमाणो णिच्चो असंखदेसो अमुत्तो य।।28।।

मैं सिद्ध हूँ, मैं शुद्ध हूँ, मैं अनंतज्ञानादि से समृद्ध हूँ मैं शरीर प्रमाण हूँ मैं नित्य हूँ, मैं असंख्य प्रदेशी हूँ और अमूर्त हूँ।

थक्के मणसंकप्पे रुद्धे अक्खान विसयवावारे।

पयडइ बंभसरूवं अप्पास झाणेण जोईणं।।29।।

मन के संकल्पों के बंद हो जाने पर और इन्द्रियों के विषय व्यापार के रुक जाने पर योगियों के ध्यान के द्वारा शुद्ध ब्रह्मस्वरूप आत्मा प्रकट होता है।

जह जह मणसंचारा इंदियविसया वि उवसमं जंति।

तह तह पयडइ अप्पा अप्पाणं जह णहे सूरो।।30।।

जैसे जैसे मन का संचार और इन्द्रियों के विषय भी उपशमभाव को प्राप्त होते हैं, वैसे वैसे ही आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप को प्रकट करती है, जैसे आकाश में सूर्य।

मण-वयण-कायजोया, जइणो जइ जंति णिव्वियारत्तं।

तो पयडइ अप्पाणं अप्पा परमप्पय सरूवं।।31।।

योगी के यदि मन वचन और काय योग निर्विकारता को प्राप्त हो जाते हैं तो आत्मा अपने परमात्मस्वरूप को प्रकट करती है।

मण-वयण-काय रोहे रुज्झइ कम्माण आसवो णूणं।

चिर-बद्धं गलइ संय फलरहियं जाइ जोईणं।।32।।

मन, वचन, काय की चंचलता रुकने पर कर्मों का आस्रव निश्चय से रुक जाता है। तब चिरकालीन बंधा हुआ कर्म योगियों के स्वयं गल जाता है और फल रहित हो जाता है।